प्राचीन एवं भक्तिकालीन काव्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय एवं उससे सम्बद्ध महाविद्यालयों के कला संकाय के सर्टिफिट कोर्स हेतु बी0ए0 प्रथम सेमेस्टर के लिये स्वीकृत पाठयक्रम

लेखक

डॉ0 श्रवण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय चौबट्टाखाल

पौडी, गढवाल

प्रकाशक

अनु बुक्स

O दिल्ली O मेरठ O ग्लासगो (यू०के०)

वेबसाइट: www.anubooks.com

प्राचीन एवं भक्तिकालीन काव्य

First Published: 2026
ISBN: 978-93-7847-307-4
Book Code: AB359-A26
Price: Rs. 350.00

© Author

All rights including copyrights and rights of translation etc. are reserved and vested exclusively with the author. No part of this publication shall be reproduced or transmitted in any form or by any means, including electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise or stored in any retrieval system of any nature without the express permission of the author.

Published by:
Mr. Vishal Mithal
Anu Books
Publishers & Distributors
H.O. GF -1, Navkar Kunj, Saket, Meerut (UP) 0121 -7964594, 8800688996
Branch: Green Park Extension, New Delhi-110016, 9997847837
Glasgow (UK)+447586513591
E-mail: infoanubooks@gmail.com
Printed, Design & Published in India

आमुख

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (**NEP**) 2020 के आलोक में उच्च शिक्षा की संरचना, दृष्टि और उद्देश्यों में व्यापक परिवर्तन किए गए हैं। इस नीति का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों में समग्र विकास, आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति जागरूकता का संवर्धन करना है। श्रीदेव सुमन उत्तराखंड विश्वविद्यालय द्वारा इसी दृष्टि को साकार करने हेतु स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक "प्राचीन एवं भक्तिकालीन काव्य" बी.ए. प्रथम वर्ष के प्रथम सेमेस्टर हिंदी साहित्य के छात्र–छात्राओं के लिए तैयार की गई है, जो नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों और मानकों के अनुरूप है।

हिंदी साहित्य का प्राचीन एवं भक्तिकालीन काव्य भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक चेतना का सशक्त दर्पण है। इस काल की काव्यधारा में जहाँ एक ओर वीरगाथा परंपरा, धार्मिक आस्था और लोकजीवन के विविध आयामों का चित्रण मिलता है, वहीं दूसरी ओर भक्ति आंदोलन के माध्यम से समता, मानवता और प्रेम का सार्वभौमिक संदेश भी प्रतिपादित होता है। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रैदास आदि संत कवियों की वाणी आज भी समाज को नैतिकता, सहिष्णुता और आध्यात्मिक उन्नति की दिशा प्रदान करती है।

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य केवल काव्य–पाठ कराना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों में साहित्यिक संवेदनशीलता, आलोचनात्मक दृष्टि और सांस्कृतिक समझ का विकास करना भी है। इस पुस्तक में चयनित काव्यांशों के माध्यम से विद्यार्थियों को उस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना और दार्शनिक विचारधाराओं से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। साथ ही, प्रत्येक अध्याय में सरल एवं स्पष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है ताकि विद्यार्थी सहज रूप से विषयवस्तु को समझ सकें। नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार इस पुस्तक में बहुआयामी शिक्षण–पद्धति को ध्यान में रखा गया है। अध्यायों के अंत में दिए गए अभ्यास प्रश्न, लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न, परियोजना कार्य तथा चिंतनपरक गतिविधियाँ विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में सहायक सिद्ध होंगी। इसके अतिरिक्त, महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या, सारांश तथा संदर्भ सामग्री भी दी गई है, जिससे विद्यार्थियों को स्वाध्ययन में सुविधा प्राप्त हो।

इस पुस्तक के निर्माण में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि विषयवस्तु क्रमबद्ध, संतुलित तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप हो। ज्ञात से अज्ञात तथा सरल से जटिल की ओर अग्रसर होने वाली पद्धति का अनुसरण करते हुए पाठों का चयन किया गया है। साथ ही, उत्तराखंड की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और भारतीय परंपरा के समन्वय को भी यथासंभव समाहित करने का प्रयास किया गया है।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक विद्यार्थियों को न केवल परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगी, बल्कि उनके व्यक्तित्व के समग्र विकास में भी सहायक बनेगी। यह उन्हें भारतीय साहित्यिक विरासत से जोड़ते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना में भी योगदान देगी।

अंत में, इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग देने वाले सभी विद्वानों, शिक्षकों और संबंधित व्यक्तियों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही, विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों से अपेक्षा है कि वे अपने सुझावों द्वारा इस प्रयास को और अधिक उपयोगी बनाने में सहयोग प्रदान करेंगे।

डॉ0 श्रवण कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय चौबट्टाखाल
पौड़ी, गढ़वाल

अनुक्रमणिका

अध्याय–1 प्राचीन हिन्दी काव्यः परिचय एवं इतिहास 1–18

1.1 हिन्दी भाषा की व्युत्पत्ति और विकास

1.2 हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

1.3 सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि

1.4 लोक और शास्त्रीय परम्परा

1.5 भाषा और शैली का विकास

1.6 निष्कर्ष

अध्याय–2 प्राचीन हिन्दी काव्य की विशेषताएं 19–21

अध्याय–3 प्राचीनकाल के प्रमुख कवि 22–24

अध्याय–4 भक्तिकालीन हिन्दी काव्य 26–45

4.1 भक्ति आंदोलन

4.2 भक्ति आंदोलन के प्रमुख सिद्धान्त

4.3 निर्गुण काव्य (ज्ञान मार्ग व प्रेम मार्ग)

4.4 सगुण काव्य (रामभक्ति व कृष्णभक्ति)

अध्याय–5 वीरता का अमर गायक चन्दबरदाई और उनका काव्य 46–67

5.1 परिचय

5.2 प्रमुख कृति – पृथ्वीराज रासो

5.3 पृथ्वीराज रासो – प्रेम व शौर्य का संगम

5.4 पृथ्वीराज रासो महाकाव्य की विशेषताएं

5.5 पृथ्वीराज रासो महाकाव्य का महत्व

5.6 पृथ्वीराज रासो के पदमावत समय से चयनित छन्द

अध्याय–6 समाज सुधारक कबीर और उनका काव्य 68–93

6.1 कबीर का जीवन परिचय

6.2 कबीर का व्यक्तित्व

6.3 कबीर की रचनाएँ

6.4 कबीर काव्य की भाषा और शैली

6.5 कबीर काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

6.6 कबीर ''साखी'' से चयनित दोहे एवं पद

अध्याय–7 मलिक मुहम्मद जायसी व उनका काव्य 94–115

7.1 प्रस्तावना

7.2 जायसी का जीवन परिचय

7.3 जायसी काव्य की भाषा शैली

7.4 जायसी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

7.5 जायसी ''मानसरोदक खण्ड'' से चयनित कडवक संख्या–4.1–4.8

अध्याय–8 सूरदास और उनका काव्य 116–149

8.1 सूरदास का जीवन परिचय

8.2 सूरदास की रचनाएँ

8.3 सूरदास काव्य की भाषा शैली

8.4 सूरदास काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

8.5 सूरदास के काव्य से चयनित पद

अध्याय–9 तुलसीदास और उनका काव्य 150–177

9.1 तुलसीदास का जीवन परिचय

9.2 तुलसीदास की रचनाएँ

9.3 तुलसीदास काव्य की भाषा

9.4 तुलसीदास काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

9.5 तुलसीदास के रामचरितमानस महाकाव्य से चयनित दोहे एवं पद

अध्याय – 1

प्राचीन हिन्दी काव्य : परिचय एवं इतिहास

प्राचीन हिंदी काव्य हिंदी साहित्य का शुरुआती और महत्वपूर्ण भाग है। इसमें हमारे पुराने समय के समाज, संस्कृति, धर्म और जीवन के तरीके का सुंदर वर्णन मिलता है। यह काव्य हमें यह समझने में मदद करता है कि पहले लोग कैसे रहते थे, क्या सोचते थे और किन मूल्यों को मानते थे।

प्राचीन हिंदी काव्य की शुरुआत अपभ्रंश भाषा से हुई और धीरे–धीरे यह ब्रजभाषा, अवधी जैसी भाषाओं में विकसित हुआ। इस समय के कवियों ने सरल और सहज भाषा का उपयोग किया, ताकि आम लोग भी उसे समझ सकें।

इस काल के काव्य में मुख्य रूप से वीरता और धर्म से जुड़ी बातें मिलती हैं। वीरगाथा काव्य में राजाओं और वीरों के शौर्य और पराक्रम का वर्णन किया गया है, जैसे पृथ्वीराज रासो। इसके साथ ही, लोगों के मन में भक्ति और ईश्वर के प्रति आस्था भी धीरे–धीरे बढ़ने लगी, जो आगे चलकर भक्तिकाल में विकसित हुई।

प्राचीन हिंदी काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लोकजीवन से जुड़ा हुआ है। इसमें उस समय के रीति–रिवाज, परंपराएं और समाज का चित्र साफ दिखाई देता है। यह काव्य पहले मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता था, इसलिए इसमें लोकभाषा और लोकशैली का प्रभाव अधिक है।

संक्षेप में, प्राचीन हिंदी काव्य हिंदी साहित्य की नींव है। इसके अध्ययन से हमें अपने इतिहास, संस्कृति और साहित्य के विकास को समझने में मदद मिलती है।

1.1 हिन्दी भाषा की व्युत्पत्ति और विकास

प्रस्तावना

हिंदी भाषा भारत की प्रमुख भाषाओं में से एक है, जो न केवल देश की राजभाषा है, बल्कि करोड़ों लोगों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है। हिंदी का वर्तमान स्वरूप एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें अनेक भाषाई, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी का विकास प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से हो कर आधुनिक खड़ी बोली तक पहुंचा है। इस अध्याय में हिंदी भाषा की उत्पत्ति, विकास के विभिन्न चरणों तथा उसके स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

(1) **हिन्द शब्द की व्युत्पत्ति** हिन्दी शब्द हिन्दी में 'ईक्' प्रत्यय के योग से बना है। 500 ई० पूर्व के आसपास दारा प्रथम के समय में सिन्धु नदी की समीपवर्ती सम्पूर्ण भारतीय भूमि ईरानी शासकों के अधिकार में थी। अतः प्राचीन सम्बन्ध के कारण ही भारतीय सिन्धु एवं सप्तसिन्धवः शब्द ईरान पहुँचे तथा ईरानी भाषा की यह विशेषता है कि वहाँ 'स' ध्वनि 'ह' में परिवर्तित हो जाती है। जैसे, संस्कृत सप्त का अवेस्ता में हफ्त, संस्कृत असुर का अवेस्ता में अहुर आदि होना। इसी आधार पर अवेस्ता में सप्त सिन्धवः तथा सिन्धु का हिन्दु हो गया। उस समय तो ईरानी लोगों के समीप भारत का वही भू–भाग था, जो सिन्धु नदी के समीपवर्ती था। अतः वे इस भूभाग को 'हिन्द' या 'हिन्द प्रदेश' कहते थे। परन्तु कालान्तर में वहाँ ये नाम सम्पूर्ण भारत के लिए प्रयुक्त होने लगा। इसी हिन्द शब्द में 'ईक' प्रत्यय का योग होने पर 'हिन्दी' शब्द बना है जिसका अर्थ ईरानी भाषा में 'हिन्द का' या 'भारत की' होता है। इस प्रकार हिन्दी शब्द का प्राचीन अर्थ भारत का निवासी, भारत की वस्तु, भारत के पदार्थ आदि होता था। हिन्दी शब्द भारत के निवासियों, पदार्थों आदि के लिए व्यवहृत होने लगा और हिन्दू शब्द इस्लाम से भिन्न वैदिक धर्म को मानने वालों के लिए प्रयुक्त होने लगा। दसवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दी या हिन्दवी शब्द किसी निश्चित भाषा के अर्थ में प्रयोग नहीं किया जाता था। परन्तु जब मुसलमानों ने साम्राज्य विस्तार किया तो उन्होंने शासित–वर्ग से अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दिल्ली के आस–पास बोली जाने वाली भाषा को अपना लिया, जिसे मुसलमान शासक हिन्दी या हिन्दवी कहने लगे। यह शब्द इतना व्यापक हो गया कि कालान्तर में हिन्दुओं ने भी इसे स्वीकार कर लिया।

दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' शब्द किसी एक निश्चित भाषा के लिए प्रयुक्त नहीं होता था। यह एक सामान्य संज्ञा थी, जो भारत की विभिन्न बोलियों और भाषाओं के लिए प्रयुक्त होती थी। परन्तु जब मुसलमान शासकों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया, तब उन्होंने जनसाधारण से संपर्क स्थापित करने के लिए दिल्ली और उसके आसपास बोली जाने वाली भाषा को अपनाया।

इस भाषा को उन्होंने 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' कहा। धीरे–धीरे यह शब्द इतना प्रचलित हो गया कि हिन्दू समाज ने भी इसे स्वीकार कर लिया और यह एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी।

समय के साथ 'हिन्दी' शब्द का अर्थ संकुचित होकर एक विशेष भाषा के रूप में स्थिर हो गया, जो आज आधुनिक भारत की प्रमुख राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।

हिन्दी के विकास से पूर्व भारत में प्रचलित भाषाएँ

हिन्दी भाषा का विकास एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। यह किसी एक दिन में उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि अनेक प्राचीन भाषाओं के क्रमिक

परिवर्तन, सरलीकरण एवं लोक–प्रयोग के फलस्वरूप विकसित हुई। हिन्दी के विकास से पूर्व भारत में मुख्यतः निम्नलिखित भाषाएँ प्रचलित थीं

1. वैदिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत भारतीय भाषाओं की सबसे प्राचीन अवस्था मानी जाती है। इसका काल लगभग 1500 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व तक माना जाता है।

विशेषताएँ –

1. यह भाषा वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) की भाषा है।
2. इसमें उच्चारण, स्वर, छन्द और व्याकरण की अत्यंत जटिल व्यवस्था मिलती है।
3. इसमें स्वराघात का विशेष महत्व था।
4. शब्द–रचना और वाक्य–विन्यास अत्यंत परिष्कृत एवं जटिल था।
5. यह मुख्यतः धार्मिक एवं यज्ञीय भाषा थी, सामान्य जनजीवन की भाषा नहीं थी।

महत्त्व– वैदिक संस्कृत भारतीय आर्य भाषाओं की मूल आधारशिला है। हिन्दी सहित अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं की जड़ें इसी में निहित हैं।

2. लौकिक (शास्त्रीय) संस्कृत

वैदिक संस्कृत के बाद विकसित रूप को लौकिक या शास्त्रीय संस्कृत कहा जाता है। इसका काल लगभग 600 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी तक माना जाता है।

विशेषताएँ–

1. यह भाषा पाणिनि के व्याकरण द्वारा सुव्यवस्थित एवं मानकीकृत हुई।
2. इसमें वैदिक संस्कृत की अपेक्षा सरलता आई, परन्तु यह अभी भी विद्वानों की भाषा बनी रही।
3. यह साहित्य, दर्शन, काव्य, नाटक और शास्त्रों की प्रमुख भाषा थी।
4. कालिदास, भास, अश्वघोष आदि महान रचनाकारों ने इसी भाषा में काव्य और नाटक लिखे।

महत्त्व– लौकिक संस्कृत ने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया और आगे की भाषाओं (प्राकृत,अपभ्रंश आदि) के विकास में आधार प्रदान किया।

3. प्राकृत भाषाएँ–

संस्कृत के लोक–प्रयोग से विकसित सरल रूपों को प्राकृत कहा जाता है।'प्राकृत' का अर्थ है 'प्राकृतिक' या 'जनभाषा'। यह काल लगभग 500 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक माना जाता है।

प्रमुख प्राकृत भाषाएँ –

- पाली
- शौरसेनी

- मागधी
- अर्द्धमागधी
- महाराष्ट्री
- पैशाची

विशेषताएँ –

1. ये भाषाएँ संस्कृत की तुलना में अधिक सरल और बोलचाल के निकट थीं।
2. व्याकरण की जटिलता कम हो गई थी।
3. ध्वनियों में परिवर्तन और सरलीकरण हुआ।
4. संस्कृत 'स' का 'ह' या लोप।
5. संयुक्त व्यंजनों का टूटना।
6. बौद्ध और जैन धर्म के प्रचार–प्रसार में इनका व्यापक उपयोग हुआ।

महत्त्व– प्राकृत भाषाएँ जनसाधारण की भाषा थीं और इन्होंने हिन्दी के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण सेतु का कार्य किया।

4. अपभ्रंश भाषा–

प्राकृत के बाद विकसित भाषा को अपभ्रंश कहा जाता है। 'अपभ्रंश' का अर्थ है 'भ्रष्ट या परिवर्तित रूप, परन्तु भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यह एक स्वतंत्र विकासशील अवस्था है। यह काल लगभग 500 ईस्वी से 1000 ईस्वी तक माना जाता रहा है।

विशेषताएँ–

1. यह प्राकृत से अधिक सरल और लोकजीवन के अधिक निकट थी।
2. इसमें आधुनिक भारतीय भाषाओं के अनेक रूप स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं।
3. शब्दों का रूप और वाक्य संरचना हिन्दी के बहुत करीब हो गई थी।
4. इसमें काव्य–रचना भी हुई, विशेषकर जैन आचार्यों द्वारा।

उदाहरण –

'राम' → 'राउ'

'कर्म' → 'कम'

महत्त्व– अपभ्रंश हिन्दी की प्रत्यक्ष जननी मानी जाती है। आधुनिक हिन्दी का उद्‌भव इसी से हुआ है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार हिन्दी भाषा का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है–

वैदिक संस्कृत → लौकिक संस्कृत → प्राकृत → अपभ्रंश → हिन्दी

इन सभी भाषाओं ने अपने–अपने स्तर पर हिन्दी को समृद्ध किया है।जहाँ संस्कृत ने आधार दिया, वहीं प्राकृत और अपभ्रंश ने उसे लोकजीवन से जोड़कर सरल और व्यवहारिक बनाया। इसी दीर्घ विकास यात्रा के परिणामस्वरूप आज की आधुनिक हिन्दी भाषा का निर्माण हुआ।

भारतीय आर्यभाषा परिवार और हिन्दी

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से हुआ है। अपभ्रंश से अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न भाषाएँ विकसित हुईं, जिन्हें हम आज आधुनिक भाषाओं और उपभाषाओं के रूप में जानते हैं।

अपभ्रंश से विकसित आधुनिक भाषाएँ

अपभ्रंश के प्रमुख रूपों से निम्नलिखित भाषाएँ विकसित हुई–

1. शौरसेनी अपभ्रंश→पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती।
2. पैशाची अपभ्रंश→लहँदा, पंजाबी।
3. ब्राचड़ अपभ्रंश→सिंधी
4. महाराष्ट्री अपभ्रंश→मराठी
5. मागधी अपभ्रंष→बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया
6. अर्धमागधी अपभ्रंश→पूर्वी हिन्दी

हिन्दी की उपभाषाएँ और बोलियाँ

'हिन्दी' शब्द अपने व्यापक अर्थ में हिन्दी प्रदेश में बोली जाने वाली अनेक उपभाषाओं और बोलियों का समूह है।

प्रमुख उपभाषाएँ एवं उनकी बोलियाँ

1. पश्चिमी हिन्दी–खड़ी बोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी
2. पूर्वी हिन्दी– अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी
3. राजस्थानी– मारवाड़ी, मेवाती, मालवी, जयपुरी
4. पहाड़ी– कुमाऊँनी, गढ़वाली
5. बिहारी– भोजपुरी, मगही, मैथिली

हिन्दी शब्द का साहित्यिक प्रयोग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इन सभी उपभाषाओं और बोलियों के सामूहिक अर्थ में किया जाता रहा है। इसी कारण ब्रज, अवधी, मैथिली, खड़ी बोली आदि सभी में रचित साहित्य को हिन्दी साहित्य के अंतर्गत रखा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हिन्दी भाषा का विकास किसी एक क्षेत्र या रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विभिन्न अपभ्रंश रूपों से विकसित होकर अनेक उपभाषाओं और बोलियों के माध्यम से समृद्ध हुई है।

हिन्दी भाषा का विकासक्रम

भारत में शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी भाषा का विकास हुआ। इस विकास का स्पष्ट संकेत लगभग 1000 ईस्वी के आसपास मिलने लगता है। दसवीं शताब्दी से ही हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक रूप दिखाई देने लगते हैं।

हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप का उल्लेख हमें सर्वप्रथम हेमचन्द्र के 'शब्दानुशासन'

में मिलता है। इसके बाद हिन्दी भाषा निरन्तर विकसित होती गई। सुविधा की दृष्टि से हिन्दी भाषा के विकास को तीन कालों में विभाजित किया जाता है–

1. आदिकाल (1000 ई० से 1500 ई०)
2. मध्यकाल (1500 ई० से 1800 ई०)
3. आधुनिक काल (1800 ई० से वर्तमान)

(क) आदिकाल (1000 ई० – 1500 ई०)

यह हिन्दी भाषा का प्रारम्भिक विकास काल माना जाता है। इस समय हिन्दी पर अपभ्रंश भाषा का अत्यधिक प्रभाव था।

प्रमुख विशेषताएँ–

1. हिन्दी भाषा अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई थी।
2. विभिन्न बोलियों और उपभाषाओं का मिश्रित रूप मिलता है।
3. तद्भव शब्दों की प्रधानता थी, परन्तु तत्सम शब्द भी प्रयुक्त होने लगे थे।
4. विदेशी (विशेषकर फारसी और अरबी) शब्दों का भी प्रवेश आरम्भ हो गया था।
5. देशज शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

भाषा का स्वरूप

इस काल की हिन्दी में निम्नलिखित बोलियों का मिश्रण देखा जाता है–

1. डिंगल
2. मैथिली
3. ब्रजभाषा
4. खड़ी बोली
5. पंजाबी
6. अवधी
7. दक्खिनी

आसान शब्दों में कहे तो यह काल भाषा के संक्रमण और निर्माण का काल था।
इस काल के प्रमुख रचनाकारों मे

1. गोरखनाथ
2. चंदबरदाई
3. नरपति नाल्ह
4. विद्यापति
5. अमीर खुसरो
6. ख्वाजा बंदा नवाज
7. शाह मीरां जी

आदिकाल हिन्दी भाषा के निर्माण की आधारशिला है। इस समय भाषा अपने विभिन्न रूपों में विकसित हो रही थी और आगे चलकर यही रूप मध्यकालीन एवं आधुनिक हिन्दी का आधार बना।

(ख) मध्यकाल (1500 ई० से 1800 ई०)

यह हिन्दी भाषा के विकास का उत्कर्ष काल माना जाता है। इस काल में हिन्दी भाषा अधिक परिपक्व, सशक्त और साहित्यिक रूप से समृद्ध हो गई।

प्रमुख विशेषताएँ –

1. हिन्दी भाषा का स्वरूप अधिक स्पष्ट और स्थिर हो गया।
2. इस काल में भक्ति आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा, जिससे हिन्दी का अत्यधिक विकास हुआ।
3. भाषा सरल, सरस और जनसामान्य के अनुकूल हो गई।
4. ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख साहित्यिक भाषाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुईं।
5. फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग बढ़ा, विषेशकर दरबारी साहित्य में।
6. काव्य–रचना की प्रधानता रही।

भाषा का स्वरूप –

1. अवधी में रामकाव्य और भक्ति साहित्य की रचना हुई।
2. ब्रजभाषा में कृष्णभक्ति एवं श्रृंगार काव्य का विकास हुआ।
3. भाषा भावात्मक, काव्यात्मक और लोकजीवन से जुड़ी हुई थी।

प्रमुख साहित्यिक धाराएँ–

क. भक्तिकाल

1. निर्गुण भक्ति (कबीर, रैदास)
2. सगुण भक्ति (तुलसीदास, सूरदास, मीरा)

ख. रीतिकाल

1. श्रृंगार और अलंकार प्रधान काव्य
2. नायिका–भेद, रस–अलंकार का वर्णन

प्रमुख साहित्यकार –

1. कबीरदास
2. तुलसीदास
3. सूरदास
4. मीरा बाई
5. रहीम
6. रसखान
7. केशवदास
8. बिहारी

(ग) आधुनिक काल (1800 ई० से वर्तमान)

यह हिन्दी भाषा का विकास और परिष्कार का काल है। इस समय हिन्दी ने आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया और राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

प्रमुख विशेषताएँ–

1. खड़ी बोली हिन्दी का विकास और मानकीकरण हुआ।
2. गद्य साहित्य का तीव्र विकास हुआ।
3. भाषा में सरलता, स्पष्टता और व्यावहारिकता आई।
4. हिन्दी का प्रयोग शिक्षा, प्रशासन, पत्रकारिता और साहित्य में व्यापक रूप से होने लगा।
5. विदेशी शब्दों के साथ–साथ संस्कृतनिष्ठ शब्दों का भी प्रयोग बढ़ा।

भाषा का स्वरूप –

1. खड़ी बोली आधुनिक हिन्दी की आधारभूत भाषा बनी।
2. व्याकरण और वर्तनी का मानकीकरण हुआ।
3. हिन्दी का प्रयोग राष्ट्रव्यापी स्तर पर होने लगा।
4. गद्य का विकास
5. विदेशी शब्दों का समावेश
6. सरल, सहज और जनभाषा
7. वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का विकास
8. पत्रकारिता और मीडिया का प्रभाव

आधुनिक युग के प्रमुख साहित्यिक चरण भारतेंदु युग→द्विवेदी युग→छायावाद युग→प्रगतिवाद युग→प्रयोगवाद युग→नई कविता युग→समकालीन हिन्दी कविता युग→आधुनिकतावाद युग→उत्तर आधुनिकतावाद युग→विमर्शवाद युग→स्त्री विमर्श→दलित विमर्श→आदिवासी विमर्श→पर्यावरण विमर्श→उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श

1.2 हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

हिंदी साहित्य का इतिहास भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और जीवन मूल्यों का दर्पण है। यह समय के साथ बदलते विचारों, भावनाओं और सामाजिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करता है। हिंदी साहित्य को मुख्यतः चार कालों में विभाजित किया गया है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल।

1. आदिकाल (सं० 1050 से 1375)
2. मध्यकाल (सं० 1375 से 1900)

(क) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल सं० 1375 से 1700)

(ख) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल सं० 1700 से 1900)

3. आधुनिककाल (सं० 1900 से अब तक)

1. आदिकाल (सं० 1050 से 1375)

आदिकाल के प्रमुख नामकरण –

हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल (सं० 1050 से 1375) को विभिन्न विद्वानों ने इसकी विशेषताओं के आधार पर अलग–अलग नाम दिए हैं–

काल	नामकरण
1. वीरगाथा काल	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. चारण काल	जॉर्ज ग्रियर्सन
3. प्रारंभिक काल	मिश्रबंधु
4. अपभ्रंश काल	धीरेन्द्र वर्मा व चंद्रधर शर्मा गुलेरी
5. आदिकाल	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

आदिकाल को विभिन्न नामों से जाना जाता है, लेकिन आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया नामकरण "वीरगाथा काल" सबसे अधिक प्रचलित और स्वीकार्य नाम है क्योंकि यह उस समय की साहित्यिक प्रवृत्ति को सबसे सही रूप में दर्शाता है।

परिचय–

आदिकाल हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल है। इस समय देश में राजपूत राजाओं का शासन था और युद्धों का वातावरण था, इसलिए साहित्य में वीरता का वर्णन प्रमुख रहा।

मुख्य विशेषताएँ –

1. वीर रस की प्रधानता
2. राजाओं की प्रशंसा (प्रशस्ति काव्य)
3. युद्ध और पराक्रम का वर्णन
4. भाषा, अपभ्रंश से विकसित प्रारंभिक हिंदी
5. इतिहास और कल्पना का मिश्रण

प्रमुख काव्य रूप–

1. रासो काव्य
2. वीरगाथाएँ

प्रमुख रचनाएँ व कवि–

1. पृथ्वीराज रासो – चंदबरदाई
2. आल्हाखंड – जगनिक

महत्त्व– यह काल हिंदी साहित्य की नींव रखने वाला काल है, जिसमें भाषा और काव्य की प्रारंभिक संरचना विकसित हुई।

2. मध्यकाल

(क) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल सं० 1375 से1700)

यह हिंदी साहित्य का सबसे समृद्ध काल माना जाता है। इस समय सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण भक्ति आंदोलन का उदय हुआ।

भक्तिकाल के प्रमुख नामकरण –

भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700) को विभिन्न विद्वानों ने उसकी विशेषताओं के आधार पर अलग–अलग नाम दिए हैं–

1. भक्तिकाल – आचार्य रामचंद्र शुक्ल (यह सबसे प्रचलित और मान्य नाम है)
2. पूर्व मध्यकाल – आचार्य रामचंद्र शुक्ल (काल आदिकाल और रीतिकाल का मध्य भाग) इसलिए इसे कालक्रम के आधार पर "पूर्व मध्यकाल" कहा गया।
3. स्वर्णकाल – जॉर्ज ग्रियर्सन
4. स्वर्णयुग – श्यामसुंदर दास
5. लोक जागरण काल – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

मुख्य विशेषताएँ–

1. ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण
2. जाति–पांति और आडंबर का विरोध
3. सरल और जनभाषा का प्रयोग
4. समाज सुधार की भावना
5. गुरु का महत्व

धाराएँ–

1. निर्गुण भक्ति धारा (संतकाव्य धारा व सूफीकाव्य धारा)

कवि –कबीरदास, रैदास, दादूदयाल, मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन

2. सगुण भक्ति धारा

(क) रामभक्ति शाखा – तुलसीदास (रामचरितमानस)

(ख) कृष्णभक्ति षाखा –सूरदास (सूरसागर) मीराबाई (पदावली)

(ख) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल सं० 1700 से 1900)

यह काल काव्यशास्त्र और श्रृंगार का युग है। इस समय कवि राजदरबारों से जुड़े थे।

रीतिकाल के प्रमुख नामकरण –

1. रीतिकाल – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. अलंकृत काल –मिश्र बंधु (गणेश,बिहारी,श्याम बिहारी,सुखदेव बिहारी मिश्र)
3. श्रृंगार काल – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. कला काल – रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'

मुख्य विशेषताएँ–

1. श्रृंगार रस की प्रधानता
2. नायिका भेद का वर्णन
3. अलंकारों का अधिक प्रयोग

4. दरबारी संस्कृति

प्रमुख काव्य रूप–

1. सवैया
2. कवित्त

प्रमुख कवि –

1. बिहारी – बिहारी सतसई
2. केशवदास – रसिकप्रिया
3. देव – रसविलास, भावविलास
4. पद्माकर – जगद्विनोद

इस काल में काव्यशास्त्र और अलंकारों का विकास हुआ तो वहीं दूसरी ओर भाषा को परिष्कृत रूप मिला।

3. आधुनिक काल (सं० 1900 से अब तक)

यह काल जागरूकता, राष्ट्रवाद और आधुनिक विचारों का युग है। इस समय हिंदी साहित्य में गद्य का अत्यधिक विकास हुआ।

मुख्य विशेषताएँ–

1. राष्ट्रभक्ति और स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव।
2. सामाजिक समस्याओं का चित्रण।
3. यथार्थवाद और प्रगतिशीलता।
4. नई विधाओं का विकास (उपन्यास, कहानी, नाटक)

उपकाल

1. **भारतेंदु युग (ई०1850 से 1900)** आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र प्रमुख
2. **द्विवेदी युग (ई०1900 से 1918)** भाषा का परिष्कार, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
3. **छायावाद (ई०1918 से 1936)** भावुकता, प्रकृति प्रेम आत्मानुभूति, कवि– जयशंकर प्रसाद सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, निराला
4. **प्रगतिवाद (ई०1936 से 1943)** सामाजिक यथार्थ और मजदूर वर्ग लेखक–प्रेमचंद
5. **प्रयोगवाद (ई०1943 से 1954)** प्रवर्तक अज्ञेय, नई शैली, व्यक्तिगत अनुभव, प्रयोगशीलता
6. **नई कविता (ई०1954 से 1960)** आधुनिक जीवन की जटिलताएँ, अस्तित्ववाद कवि अज्ञेय, धर्मवीर भारती

7. **समकालीन हिन्दी कविता (ई०1960 से 1980)** यथार्थ, मनोवैज्ञानिकता, सामाजिक विडंबना प्रमुख कवि– धूमिल, केदारनाथ, मंगलेश डबराल,राजेश जोशी
8. **आधुनिकतावाद (ई०1980 से 1990)** यथार्थ, मनोवैज्ञानिकता, सामाजिक विडंबना– केदारनाथ, नामवर सिंह, मंगलेश डबराल, अरुण कमल
9. **उत्तर आधुनिकवाद (ई०1990 से 2000)** यथार्थ, मनोवैज्ञानिकता, सामाजिक विडंबना– मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उदय प्रकाश, श्रीलाल शुक्ल
10. **विमर्शवाद (ई० 2000 से अब तक)** "विमर्श" का अर्थ है किसी विषय पर गहन विचार, चर्चा और विश्लेषण।

विमर्शवाद साहित्य की वह प्रवृत्ति है जिसमें समाज के हाशिए पर रहे वर्गों (जैसे स्त्री, दलित, आदिवासी आदि) की आवाज, अनुभव और समस्याओं को केंद्र में रखा जाता है।

मुख्य विशेषताएँ–

1. उपेक्षित वर्गों की आवाज को प्रमुखता
2. समानता और अधिकार की मांग
3. परंपरागत सोच और सत्ता संरचना का विरोध
4. यथार्थ और संघर्ष का चित्रण
5. सामाजिक न्याय पर बल

प्रमुख विमर्श–

1. स्त्री विमर्श–महिलाओं की स्थिति, अधिकार और स्वतंत्रता पर केंद्रित पितृसत्तात्मक समाज का विरोध (लेखक मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, महादेवी वर्मा, अनामिका

2. दलित विमर्श –दलित समाज के शोषण, भेदभाव और संघर्ष का चित्रण सामाजिक समानता की मांग (लेखक–ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसीराम, सूरजपाल चौहान)

3. आदिवासी विमर्श –आदिवासी जीवन, संस्कृति और समस्याएँ विस्थापन, शोषण और पहचान का मुद्दा (रमणिका गुप्ता,हरिराम मीणा,नंदलाल मेहता)

4. उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श–अंग्रेजी शासन के प्रभाव और उसके बाद की समस्याएँ सांस्कृतिक पहचान की खोज(श्रीलाल शुक्ल,राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती)

5. पर्यावरण विमर्श –प्रकृति, पर्यावरण संरक्षण और मानव–प्रकृति संबंध महत्त्व समाज के हर वर्ग को साहित्य में स्थान मिला समानता और न्याय की भावना मजबूत हुई साहित्य अधिक यथार्थवादी और व्यापक बना। (मंगलेश डबराल, नरेश सक्सेना, विनोद कुमार शुक्ल)

विमर्शवाद हिंदी साहित्य की आधुनिक प्रवृत्ति है, जो समाज के उपेक्षित वर्गों की समस्याओं को उजागर कर उन्हें आवाज देता है और एक न्यायपूर्ण समाज की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है।

भारतेंदु युग➔द्विवेदी युग➔छायावाद युग➔प्रगतिवाद युग➔प्रयोगवाद युग➔नई कविता युग➔समकालीन हिन्दी कविता युग➔आधुनिकतावाद युग➔

उत्तर आधुनिकतावाद युग→विमर्शवाद युग→स्त्री विमर्श→दलित विमर्श→आदिवासी विमर्श→पर्यावरण विमर्श→उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श

1.3 प्राचीनकाल की सामाजिक – राजनीतिक पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य का प्राचीनकाल, जिसे सामान्यतः आदिकाल (संवत् 1050 से 1375)या वीरगाथा काल कहा जाता है, भारतीय इतिहास के एक ऐसे दौर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ साहित्य, समाज और राजनीति एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए थे। इस काल का साहित्य केवल काव्य–सृजन नहीं है, बल्कि यह उस समय की राजनीतिक उथल–पुथल, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों और जनजीवन का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करता है।

सामाजिक पृष्ठभूमि–

आदिकालीन समाज गहराई से वर्ग–विभाजित और परंपरागत था। इसमें सामंती ढांचे का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

1. वर्ग और जाति व्यवस्था–

- समाज में ऊँच–नीच और जाति भेद स्पष्ट रूप से मौजूद था
- शासक वर्ग (राजा, सामंत) और सामान्य जनता के बीच गहरा अंतर था
- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की परंपरागत संरचना कायम थी

2. नारी की स्थिति – नारी को सम्मानित तो माना जाता था, परंतु उसकी स्थिति स्वतंत्र नहीं थी वह प्रायः पुरुष–प्रधान व्यवस्था के अधीन थी युद्धकाल में जौहर प्रथा जैसी घटनाएँ स्त्री की असुरक्षित स्थिति को दर्शाती हैं।

3. धर्म और आस्था– समाज में धार्मिक आस्था और कर्मकांड का प्रभाव गहरा था धर्म और वीरता का आपस में संबंध स्थापित किया जाता था राजा को धर्मरक्षक माना जाता था।

4. लोकजीवन– सामान्य जनता का जीवन कठिन और संघर्षपूर्ण था कृषि और पशुपालन मुख्य आजीविका के साधन थे लोकगीत, लोककथाएँ और वीरगाथाएँ जनजीवन का हिस्सा।

राजनीतिक पृष्ठभूमि–

आदिकाल की राजनीतिक स्थिति अत्यंत अस्थिर और संघर्षपूर्ण थी। भारत इस समय छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित था, जिन पर विभिन्न राजपूत वंशों का शासन था। इनमें चौहान, परमार, चंदेल, सोलंकी आदि प्रमुख थे।

1. **सामंती व्यवस्था का प्रभुत्व –** राजनीतिक संरचना मुख्यतः सामंतवाद पर आधारित थी, जिसमें राजा के अधीन अनेक सामंत (जागीरदार) होते थे। ये सामंत अपने–अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से शासन करते थे, जिससे केंद्रीकरण का अभाव था।

2. **निरंतर युद्ध और संघर्ष–**राज्यों के बीच सत्ता विस्तार के लिए युद्ध होते रहते थे विदेशी आक्रमण (विशेषतः मुस्लिम आक्रमण) ने स्थिति को और जटिल बना

दिया युद्ध और वीरता समाज के प्रमुख मूल्य बन गए

3. **वीरता का महिमामंडन**–राजनीतिक परिस्थितियों के कारण साहित्य में वीरता, शौर्य और बलिदान का अत्यधिक महत्व रहा। चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान की वीरता और युद्ध कौशल का विस्तृत वर्णन मिलता है जगनिक कृत आल्हाखंड में आल्हा–ऊदल के युद्ध और पराक्रम का सजीव चित्रण है। इन रचनाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं था, बल्कि राजाओं की कीर्ति का प्रचार और जनता में उत्साह उत्पन्न करना भी था।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि–

आदिकाल की संस्कृति पर राजपूती परंपराओं का गहरा प्रभाव था। इस समय के समाज में सम्मान, स्वाभिमान, वचन–पालन और वीरता को सर्वोच्च आदर्श माना जाता था।

1. **राजपूती संस्कृति**–शौर्य और बलिदान को जीवन का उद्देश्य माना गया "प्राण जाए पर वचन न जाए" जैसी मान्यताएँ प्रचलित थीं।

2. **लोकसंस्कृति का प्रभाव**–लोकगीत, कथाएँ और वीरगाथाएँ जनसाधारण में लोकप्रिय थीं साहित्य का आधार भी इन्हीं लोक परंपराओं से जुड़ा हुआ था।

साहित्यिक परंपरा–चारण और भाट कवि दरबारों में रहकर राजाओं का गुणगान करते थे काव्य मौखिक परंपरा से भी प्रसारित होता था।

प्राचीनकाल (आदिकाल) की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि ने हिंदी साहित्य को गहराई से प्रभावित किया। इस काल में सामंती व्यवस्था, निरंतर युद्ध, राजपूती संस्कृति और धार्मिक आस्था ने मिलकर एक ऐसा साहित्य रचा, जिसमें वीरता और गौरव का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।

आदिकाल का साहित्य केवल अतीत का वर्णन नहीं करता, बल्कि वह उस समय के समाज की मानसिकता, संघर्ष और मूल्यों को भी अभिव्यक्त करता है। इसलिए यह काल हिंदी साहित्य के इतिहास में आधारशिला के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.4 प्राचीनकाल की लोक और शास्त्रीय परम्परा

हिंदी साहित्य का प्राचीनकाल (आदिकाल) केवल वीरगाथाओं का युग नहीं है, बल्कि यह उस समय की जीवंत सांस्कृतिक परंपराओं का भी प्रतिनिधित्व करता है। इस काल में साहित्य दो प्रमुख धाराओं में विकसित हुआ–

1. **लोक परम्परा**
2. **शास्त्रीय परम्परा।**

ये दोनों परम्पराएँ एक–दूसरे से अलग होते हुए भी परस्पर जुड़ी हुई थीं। जहाँ लोक परंपरा आम जनता के जीवन से निकली थी, वहीं शास्त्रीय परंपरा विद्वानों और दरबारों में विकसित हुई। दोनों ने मिलकर हिंदी साहित्य की मजबूत नींव रखी।

1. **लोक परम्परा**–लोक परम्परा उस साहित्यिक धारा को कहते हैं जो

जनता के बीच स्वतः विकसित होती है। यह किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होती, बल्कि समूह की सामूहिक चेतना का परिणाम होती है।

मुख्य विशेषताएँ–

(1) **मौखिक परंपरा**–लोक साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि यह लिखित नहीं बल्कि मौखिक रूप में प्रचलित था। लोग इसे गाकर, सुनाकर और याद करके आगे बढ़ाते थे पीढ़ी दर पीढ़ी यह परंपरा चलती रही।

(2) **सरल और लोकभाषा का प्रयोग**–लोक साहित्य में अवधी, ब्रज, बुंदेली, राजस्थानी जैसी भाषाओं का प्रयोग हुआ भाषा बहुत सरल, सहज और जनसाधारण की समझ में आने वाली होती थी।

(3) **जनजीवन का चित्रण** –लोक परंपरा में आम लोगों के जीवन की झलक मिलती है। उनके सुख–दुख, प्रेम, संघर्ष, युद्ध त्योहार, रीति–रिवाज, सामाजिक परंपराएँ।

(4) **वीरगाथाएँ और लोकगीत**– इस काल में वीरगाथाएँ अत्यंत लोकप्रिय थीं। उदाहरण आल्हाखंड (जगनिक)→इसमें आल्हा–ऊदल की वीरता का लोक शैली में वर्णन है यह आज भी उत्तर भारत में गाया जाता है

(5) **सामूहिकता**–लोक साहित्य का कोई निश्चित लेखक नहीं होता यह पूरे समाज की रचना होती है। लोक परम्परा का महत्त्व यह समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखती है साहित्य को जीवन से जोड़ती है।

2. शास्त्रीय परम्परा–शास्त्रीय परंपरा वह है जो नियमों और सिद्धांतों (शास्त्रों) के आधार पर विकसित होती है। यह मुख्यतः विद्वानों, कवियों और दरबारों से जुड़ी होती है।

मुख्य विशेषताएँ–

(1) **नियमबद्धता**–शास्त्रीय साहित्य में रस, अलंकार, छंद आदि का पालन किया जाता था काव्य एक निश्चित ढाँचे में रचा जाता था।

(2) **संस्कृत का प्रभाव**– भाषा पर संस्कृत और अपभ्रंश का गहरा प्रभावशब्दावली अपेक्षाकृत कठिन और परिष्कृत।

(3) **दरबारी संस्कृति**–यह साहित्य मुख्यतः राजाओं और दरबारों में रचा जाता था राजाओं की प्रशंसा (प्रशस्ति काव्य) इसका प्रमुख उद्देश्य था।

(4) **लिखित परंपरा**–लोक साहित्य के विपरीत, शास्त्रीय साहित्य लिखित रूप में सुरक्षित था इसे पढ़े–लिखे लोग ही समझ सकते थे।

(5) **व्यक्तिगत रचना**–इसका एक निश्चित रचनाकार होता था। पृथ्वीराज रासो (चंदबरदाई) इसमें वीरता के साथ काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन भी मिलता है।

साहित्य को व्यवस्थित और परिष्कृत रूप देती है भाषा और काव्य की गुणवत्ता को ऊँचा उठाती है साहित्य को स्थायित्व प्रदान करती है। प्राचीनकाल में

लोक और शास्त्रीय परम्पराएँ हिंदी साहित्य की दो महत्वपूर्ण आधारशिलाएँ हैं। जहाँ लोक परंपरा जनता की भावनाओं, जीवन और संस्कृति को व्यक्त करती है, वहीं शास्त्रीय परंपरा साहित्य को नियम, रूप और परिष्कार प्रदान करती है।

दोनों के समन्वय से ही आदिकाल का साहित्य इतना समृद्ध, प्रभावशाली और जीवंत बन सका। यह परंपरा आगे के कालों (भक्तिकाल, रीतिकाल) में भी विकसित होती रही।

1.5 प्राचीन काव्य में भाषा और शैली का विकास

हिंदी साहित्य का प्राचीनकाल (आदिकाल) भाषा और शैली के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। यह वह समय था जब हिंदी अपनी प्रारंभिक अवस्था में थी और अपभ्रंश, प्राकृत तथा संस्कृत से विकसित होकर एक स्वतंत्र भाषा के रूप में आकार ले रही थी। इस काल का काव्य मुख्यतः वीरगाथा परंपरा, धार्मिक भावनाओं और लोकजीवन से जुड़ा हुआ था।

प्राचीन काव्य में भाषा और शैली का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया थी, जिसमें लोकभाषा की सरलता और शास्त्रीय परंपरा की गरिमा दोनों का समन्वय देखने को मिलता है।

1. **भाषा का विकास–**

(1) **अपभ्रंश से हिंदी की ओर** संक्रमण प्राचीन काव्य की भाषा का मूल आधार अपभ्रंश भाषा थी। धीरे–धीरे यही भाषा विकसित होकर प्रारंभिक हिंदी (अवहट्ट) के रूप में सामने आई। अपभ्रंश→अवहट्ट→प्रारंभिक हिंदी इस परिवर्तन में ध्वनि, शब्द और वाक्य संरचना में सरलता आई। अपभ्रंश के कठिन शब्दों की जगह सरल लोकप्रचलित शब्दों का प्रयोग होने लगा

(2) **लोकभाषाओं का प्रभाव** –प्राचीन काव्य में भाषा का स्वरूप एकरूप नहीं था, बल्कि क्षेत्रीय प्रभावों से प्रभावित था। मुख्य भाषाएँ–राजस्थानी (डिंगल–पिंगल) ब्रजभाषा, अवधी। पृथ्वीराज रासो में राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(3) **संस्कृत और प्राकृत का प्रभाव–** हालाँकि भाषा लोकधर्मी थी, फिर भी संस्कृत का प्रभाव बना रहा। तत्सम शब्दों का प्रयोग धार्मिक और वीर विषयों में संस्कृतनिष्ठ भाषा इससे भाषा में गंभीरता और गरिमा आई।

(4) **सरलता और संप्रेषणीयता–** प्राचीन काव्य की भाषा का मुख्य उद्देश्य था जनसामान्य तक भाव पहुँचाना इसलिए भाषा अपेक्षाकृत सरल कथात्मक शैली सीधे और प्रभावी शब्दमयी थी।

(5) **मौखिक परंपरा का प्रभाव–** क्योंकि अधिकांश काव्य गाया और सुनाया जाता था, इसलिए भाषा में लयात्मकता, पुनरावृत्ति, स्मरणीयता का विशेष ध्यान रखा गया।

2. शैली का विकास–

(1) वीरगाथात्मक शैली –आदिकाल की प्रमुख शैली वीरगाथात्मक थी। जैसे– युद्ध और वीरता का वर्णन, अतिशयोक्ति, नायक की महिमा का वर्णन पृथ्वीराज रासो (चंदबरदाई) इस शैली का मुख्य उदाहरण है।

(2) वर्णनात्मक शैली– प्राचीन काव्य में घटनाओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। जैसे–युद्ध के दृश्य, राजाओं की सभा, प्राकृतिक चित्रण यह शैली कथा को जीवंत बनाती है।

(3) अलंकारिक शैली –यद्यपि यह पूर्ण रूप से शास्त्रीय नहीं था, फिर भी उपमा रूपक, अनुप्रास जैसे अलंकारों का प्रयोग मिलता है।

(4) लोकधर्मी शैली– लोक परंपरा के प्रभाव से शैली में सहजता, भावुकता, जनजीवन का चित्रण प्रमुख रहा है।

(5) संवादात्मक शैली–कई स्थानों पर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।जिसका प्रमुख उदेश्य पात्रों के बीच वार्तालाप, घटनाओं को रोचक बनाना होता है।

(6) छंद और लय–प्राचीन काव्य में छंदों का विशेष महत्व था। दोहा, चौपाई छप्पय इन छंदों के कारण काव्य में संगीतात्मकता और लय बनी रहती थी।

3. भाषा और शैली का समन्वय

प्राचीन काव्य में भाषा और शैली एक–दूसरे के पूरक थे। भाषा–शैली सरल, लोकधर्मी, कथात्मक, वीरगाथात्मक संस्कृतनिष्ठ– शब्द, अलंकारिकता, क्षेत्रीय प्रभाव विविध शैली रूप के इस समन्वय ने काव्य को प्रभावशाली, रोचक, स्मरणीय बनाया।

प्रमुख कृतियों में भाषा–शैली–

(1) पृथ्वीराज रासो–भाषा राजस्थानी, मिश्रित,शैली वीरगाथात्मक, वर्णनात्मक

(2) आल्हाखंड–भाषा लोकभाषा, शैली लोकधर्मी, गेय

प्राचीन काव्य में भाषा और शैली का विकास हिंदी साहित्य की नींव के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस काल में भाषा ने जहाँ एक ओर सरलता और जनसंपर्क को अपनाया, वहीं शैली ने वीरता, सौंदर्य और प्रभावशीलता को विकसित किया।

लोक और शास्त्रीय परंपराओं के समन्वय से यह काव्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध हुआ, बल्कि समाज और संस्कृति का सजीव चित्र भी प्रस्तुत करने में सफल रहा।

इसी आधार पर आगे चलकर हिंदी साहित्य के अन्य कालों जैसे भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल का विकास संभव हो सका।

निष्कर्ष रुप में प्राचीन एवं भक्तिकालीन काव्य–

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्राचीन (आदिकाल) और भक्तिकाल दोनों ही ऐसे महत्वपूर्ण चरण हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय सांस्कृतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। प्राचीनकाल जहाँ हिंदी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था

का प्रतिनिधित्व करता है, वहीं भक्तिकाल उसकी भावनात्मक, आध्यात्मिक और सामाजिक परिपक्वता का युग है।

प्राचीनकालीन काव्य में मुख्यतः वीरगाथा परंपरा का विकास हुआ, जिसमें राजाओं की वीरता, युद्धों का वर्णन और सामंती जीवन की झलक मिलती है। इस काल की भाषा अपभ्रंश से विकसित होती हुई प्रारंभिक हिंदी के रूप में सामने आई और शैली ओजपूर्ण, वर्णनात्मक तथा कथात्मक रही। लोक और शास्त्रीय परंपराओं के समन्वय ने इस काव्य को जनजीवन से जोड़ते हुए साहित्य की आधारशिला तैयार की।

इसके पश्चात भक्तिकाल का आगमन हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। यह काल केवल धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि सामाजिक जागरण का भी युग था। इस समय के कवियों ने भक्ति के माध्यम से जाति–पांति, ऊँच–नीच और सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया तथा मानवता, प्रेम और समानता का संदेश दिया। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रैदास जैसे संत कवियों ने अपनी सरल, लोकभाषा में रचित वाणी के माध्यम से साहित्य को जन–जन तक पहुँचाया।

भक्तिकाल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इसने साहित्य को दरबारों से निकालकर जनता के बीच स्थापित किया। निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के माध्यम से भक्ति के विविध रूप सामने आए, जिससे हिंदी साहित्य में विषय–वस्तु और अभिव्यक्ति की व्यापकता बढ़ी। भाषा की दृष्टि से यह काल अत्यंत समृद्ध रहा, क्योंकि इसमें ब्रजभाषा, अवधी जैसी लोकभाषाओं का सुंदर और प्रभावी प्रयोग हुआ। यदि समग्र दृष्टि से देखा जाए, तो प्राचीन और भक्तिकालीन काव्य हिंदी साहित्य के विकास की दो परस्पर पूरक कड़ियाँ हैं। प्राचीनकाल ने जहाँ साहित्य की संरचना, भाषा और शैली की नींव रखी, वहीं भक्तिकाल ने उसमें भावनात्मक गहराई, सामाजिक चेतना और आध्यात्मिक ऊँचाई का समावेश किया।

अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का यह प्रारंभिक और मध्य चरण केवल साहित्यिक विकास का इतिहास नहीं, बल्कि भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और मानवीय मूल्यों के उत्कर्ष का भी दर्पण है। इन दोनों कालों की परंपरा ने आगे आने वाले साहित्यिक युगों को दिशा प्रदान की और हिंदी को एक सशक्त, समृद्ध तथा जनोन्मुख भाषा के रूप में स्थापित किया।

अध्याय – 2

प्राचीन हिन्दी काव्य की विशेषताएं

हिंदी साहित्य का प्राचीनकाल, जिसे आदिकाल के नाम से जाना जाता है, हिंदी काव्य परंपरा का प्रारंभिक एवं आधारभूत चरण है। यह वह समय था जब हिंदी भाषा अपभ्रंश और प्राकृत के रूपों से विकसित होकर अपने स्वतंत्र स्वरूप की ओर अग्रसर हो रही थी। इस युग का साहित्य तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों का सजीव प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

प्राचीन हिंदी काव्य मुख्यतः राजाश्रित एवं वीरगाथात्मक प्रकृति का रहा है। इस काल में कवियों ने राजाओं और वीर योद्धाओं के पराक्रम, युद्धों और गौरवगाथाओं का अत्यंत ओजपूर्ण और प्रभावशाली चित्रण किया। साथ ही, इस साहित्य में लोकजीवन की झलक, सामाजिक संरचना और परंपराओं का भी वर्णन मिलता है, जिससे यह काव्य केवल मनोरंजन का साधन न रहकर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दस्तावेज भी बन जाता है।

इस काल की भाषा संक्रमण अवस्था में थी, जिसमें अपभ्रंश, अवहट्ट तथा प्रारंभिक हिंदी के रूपों का मिश्रण देखने को मिलता है। क्षेत्रीय बोलियां–जैसे राजस्थानी, ब्रजभाषा और अवधी–का प्रभाव भी इसकी भाषा को समृद्ध और विविधतापूर्ण बनाता है। शैली की दृष्टि से यह काव्य ओजपूर्ण, कथात्मक तथा वर्णनात्मक है, जिसमें वीर रस की प्रधानता के साथ–साथ अलंकारों और छंदों का भी समुचित प्रयोग किया गया है।

लोक और शास्त्रीय परंपराओं के समन्वय ने प्राचीन हिंदी काव्य को विशेष रूप से समृद्ध बनाया है। एक ओर इसमें लोकगीतों की सरलता और भावात्मकता है, तो दूसरी ओर काव्यशास्त्रीय तत्वों की कलात्मकता भी विद्यमान है। यही कारण है कि यह साहित्य जनसामान्य के निकट होने के साथ–साथ साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

अतः प्राचीन हिंदी काव्य की विशेषताओं को समझने से पहले उसके ऐतिहासिक विकास, भाषा–शैली और सामाजिक संदर्भों का ज्ञान आवश्यक है। इन्हीं आधारों पर इसकी प्रमुख विशेषताओं का विवेचन किया जाता है, जो हिंदी साहित्य के इस प्रारंभिक काल की विशिष्ट पहचान को स्पष्ट करती हैं।

1. वीरगाथात्मक प्रधानता– प्राचीन हिंदी काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता वीरगाथाओं का वर्णन है। इस काल के कवियों ने राजाओं और योद्धाओं के युद्ध, पराक्रम, त्याग और शौर्य का विस्तार से चित्रण किया। पृथ्वीराज रासो और आल्हाखंड जैसी रचनाएँ इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वीर रस की प्रधानता के कारण काव्य में उत्साह और ओज का विशेष प्रभाव दिखाई देता है।

2. राजाश्रय की प्रवृत्ति– इस काल के अधिकांश कवि राजदरबारों से जुड़े हुए थे। वे राजाओं के आश्रित होते थे, इसलिए अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करना उनका प्रमुख उद्देश्य होता था। इससे काव्य में स्तुतिपरकता और राजाओं के गुणों का अतिरंजित वर्णन मिलता है।

3. ऐतिहासिकता का आंशिक स्वरूप– प्राचीन काव्य में ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों का उल्लेख मिलता है, परंतु ये पूरी तरह तथ्यपरक नहीं होते। कवि अपनी कल्पना और काव्यात्मक स्वतंत्रता के कारण घटनाओं को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे इतिहास और कल्पना का मिश्रण बन जाता है।

4. लोक और शास्त्रीय परंपराओं का समन्वय– इस काल में लोक परंपरा (जनजीवन, लोकगीत) और शास्त्रीय परंपरा (अलंकार, छंद) का सुंदर मिश्रण देखने को मिलता है। इससे काव्य में एक ओर सरलता और दूसरी ओर कलात्मकता का संतुलन बना रहता है।

5. अपभ्रंश से हिंदी का विकास– प्राचीन काव्य की भाषा अपभ्रंश से विकसित होकर प्रारंभिक हिंदी (अवहट्ट) के रूप में सामने आती है। यह भाषा परिवर्तन का संक्रमण काल था, जिसमें हिंदी अपनी स्वतंत्र पहचान बना रही थी।

6. क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव– इस काल की भाषा पर विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव स्पष्ट है। जैसे राजस्थानी (डिंगल–पिंगल), ब्रजभाषा, अवधी आदि। इससे भाषा विविधतापूर्ण और जीवंत बनती है।

7. ओजपूर्ण भाषा शैली– प्राचीन काव्य की भाषा में ओज (ऊर्जा और उत्साह) की प्रधानता होती है। युद्ध, वीरता और पराक्रम के वर्णन के कारण भाषा प्रभावशाली और प्रेरणादायक बन जाती है।

8. अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग– वीरों की महिमा को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करने के लिए अतिशयोक्ति अलंकार का व्यापक प्रयोग किया गया है। इससे काव्य में भव्यता और प्रभाव उत्पन्न होता है।

9. कथात्मकता– प्राचीन काव्य मुख्यतः कथात्मक होता है। इसमें घटनाओं को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, जिससे काव्य कहानी जैसा प्रतीत होता है और पाठक–श्रोता की रुचि बनी रहती है।

10. मौखिक परंपरा का प्रभाव– इस काल में काव्य का प्रसार लिखित रूप में कम और मौखिक रूप में अधिक था। कवि अपनी रचनाएँ गाकर या सुनाकर प्रस्तुत करते थे, इसलिए काव्य में लय, पुनरावृत्ति और सरलता का विशेष ध्यान रखा जाता था।

11. छंदों का प्रयोग– प्राचीन हिंदी काव्य में छंदों का महत्वपूर्ण स्थान है। दोहा, चौपाई, छप्पय आदि छंदों का प्रयोग किया गया, जिससे काव्य में संगीतात्मकता और लय बनी रहती है।

12. धार्मिक तत्वों की उपस्थिति– यद्यपि वीरता प्रमुख विषय है, फिर भी काव्य में धार्मिक आस्था और विश्वास के तत्व भी मिलते हैं। देवताओं का स्मरण, धर्म की रक्षा और आस्था का चित्रण भी दिखाई देता है।

13. नारी का सीमित चित्रण– इस काल में नारी का चित्रण अपेक्षाकृत सीमित है। उसे मुख्यतः प्रेरणा देने वाली, पतिव्रता या सहायक के रूप में दिखाया गया है। स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में उसका चित्रण कम मिलता है।

14. सामंती समाज का चित्रण– प्राचीन काव्य में उस समय की सामंती व्यवस्था का स्पष्ट चित्रण मिलता है। राजा, सामंत, युद्ध, वफादारी और सम्मान जैसे तत्व प्रमुख हैं, जो उस युग की सामाजिक संरचना को दर्शाते हैं।

15. प्रकृति वर्णन– युद्ध, यात्रा और जीवन के प्रसंगों में प्रकृति का भी सुंदर चित्रण किया गया है। प्रकृति को कभी सहायक, तो कभी वातावरण निर्माण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

16. लोकजीवन की झलक– लोकगीतों और कथाओं के माध्यम से आम जनता के जीवन, रीति–रिवाज, परंपराओं और भावनाओं का चित्रण मिलता है। इससे काव्य अधिक जीवंत और यथार्थपरक बनता है।

17. भाव की अपेक्षा घटना प्रधानता– इस काल में भावनात्मक गहराई की अपेक्षा घटनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया है। युद्ध, पराक्रम और घटनाएँ काव्य के केंद्र में रहती हैं, जबकि भावनाएँ गौण होती हैं।

निष्कर्ष– प्राचीन हिंदी काव्य की विशेषताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि यह काल हिंदी साहित्य की आधारशिला है। इसमें भाषा का विकास, शैली की ओजस्विता, वीरता का गौरव और लोकजीवन का सजीव चित्रण एक साथ मिलता है। यह काव्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि उस समय के समाज, संस्कृति और जीवन का भी सच्चा दर्पण है।

अध्याय – 3

प्राचीनकाल के प्रमुख कवि

हिंदी साहित्य का प्राचीनकाल, जिसे आदिकाल के नाम से जाना जाता है, हिंदी काव्य परंपरा का प्रारंभिक और आधारभूत चरण है। इस काल में हिंदी भाषा अपभ्रंश से विकसित होकर अपने स्वतंत्र स्वरूप की ओर अग्रसर हो रही थी। यह युग मुख्यतः वीरगाथा काव्य, राजाश्रय, तथा धार्मिक एवं लोक परंपराओं के प्रभाव से निर्मित हुआ।

इस काल के कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता, युद्ध कौशल और गौरवगाथाओं का वर्णन किया, साथ ही धार्मिक और नैतिक मूल्यों को भी अपने काव्य में स्थान दिया। प्राचीनकालीन कवियों की रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को समझने का भी महत्वपूर्ण साधन हैं।

इस अध्याय में प्राचीनकाल के प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं का विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. चंदबरदाई– चंदबरदाई प्राचीन हिंदी साहित्य के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं। वे अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान के राजकवि थे। उनकी प्रमुख रचना पृथ्वीराज रासो है, जिसमें पृथ्वीराज के जीवन, युद्धों और प्रेम प्रसंगों का वर्णन मिलता है।

इस काव्य में वीर रस की प्रधानता है तथा भाषा में ओज और प्रभावशीलता दिखाई देती है। चंदबरदाई ने अतिशयोक्ति और अलंकारों का प्रयोग कर अपने नायक को महान और आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।

2. जगनिक– जगनिक प्राचीनकाल के प्रसिद्ध लोककवि थे, जिनका संबंध बुंदेलखंड से माना जाता है। उनकी प्रमुख रचना आल्हाखंड है, जिसमें आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन मिलता है।

यह काव्य लोकभाषा में रचा गया है और आज भी लोकगायन परंपरा में जीवित है। इसकी शैली सरल, प्रभावशाली और जनसामान्य के निकट है।

3. नरपति नाल्ह– नरपति नाल्ह राजदरबारी कवि थे। उनकी प्रमुख रचना बीसलदेव रासो है, जिसमें अजमेर के राजा बीसलदेव की वीरता का वर्णन किया

गया है। इस काव्य में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। भाषा ओजपूर्ण और शैली वीरगाथात्मक है।

4. दलपति विजय– दलपति विजय प्राचीनकाल के प्रमुख कवि थे। उनकी रचना खुमाण रासो में मेवाड़ के शासक खुमाण की वीरता और पराक्रम का वर्णन मिलता है। इस काव्य में युद्ध, साहस और शौर्य का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

5. सारंगधर–सारंगधर एक विद्वान कवि थे, जिनकी रचना सारंगधर पद्धति प्रसिद्ध है। यह केवल काव्य ही नहीं, बल्कि एक ज्ञानवर्धक ग्रंथ भी है, जिसमें नीति, धर्म और जीवन से संबंधित शिक्षाएँ दी गई हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकालीन साहित्य केवल वीरता तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें ज्ञान और नीति का भी समावेश था।

6. विद्यापति– विद्यापति को आदिकाल और भक्तिकाल के मध्य का सेतु माना जाता है। वे मिथिला के निवासी थे। उनकी पदावली अत्यंत प्रसिद्ध है। उनकी रचनाओं में श्रृंगार और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। भाषा मधुर, भावपूर्ण और सरल है, जिससे उनकी लोकप्रियता आज भी बनी हुई है।

7. अब्दुर्रहमान– अब्दुर्रहमान प्रारंभिक हिंदी (हिंदवी) के महत्वपूर्ण कवि थे। उनकी रचना संदेश रासक प्रसिद्ध है। इस काव्य में प्रेम, विरह और संदेश की भावना व्यक्त की गई है, जो प्राचीन काव्य में भावात्मक विस्तार को दर्शाता है।

8. अमीर खुसरो– अमीर खुसरो दिल्ली सल्तनत काल के प्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ थे। उन्होंने फारसी के साथ–साथ हिंदी (हिंदवी) में भी रचनाएँ कीं। उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ और लोकगीत आज भी लोकप्रिय हैं। उन्होंने हिंदी और फारसी संस्कृति के समन्वय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

9. शालिभद्र सूरी– शालिभद्र सूरी जैन परंपरा के प्रमुख कवि थे। उनकी रचना भरतेश्वर बाहुबली रास प्रसिद्ध है। इसमें धार्मिक कथाओं और आदर्शों का वर्णन मिलता है, जो उस समय की धार्मिक चेतना को दर्शाता है।

10. धनपाल– धनपाल जैन साहित्यकार थे। उनकी रचना पैयलच्छी नाममाला महत्वपूर्ण है। यह काव्य भाषा और शब्दों के अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है और उस समय की भाषिक संरचना को समझने में सहायक है।

11. पुष्पदंत– पुष्पदंत जैन धर्म के प्रमुख कवि थे। उनकी रचनाएँ महापुराण और नयकुमार चरित प्रसिद्ध हैं। इन रचनाओं में धार्मिक कथाओं, नैतिक मूल्यों और आदर्श जीवन का वर्णन किया गया है।

12. स्वयंभू– स्वयंभू अपभ्रंश के प्रमुख कवि थे। उनकी रचना (रामकथा पर आधारित) प्रसिद्ध है। उन्होंने अपभ्रंश भाषा के माध्यम से हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्राचीनकालीन कवियों की सामान्य विशेषताएँ–

1. अधिकांश कवि राजाश्रित या धार्मिक परंपरा से जुड़े थे।
2. काव्य में वीरता, धर्म और लोकजीवन का समावेश।
3. भाषा में अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिंदी का प्रयोग।
4. रासो काव्य परंपरा का विकास।
5. मौखिक और लिखित परंपराओं का समन्वय।

प्राचीनकाल के इन प्रमुख कवियों ने हिंदी साहित्य की नींव को सुदृढ़ किया। इनकी रचनाओं में वीरता, धर्म, नीति और लोकजीवन का समन्वय मिलता है, जो उस समय के समाज और संस्कृति का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

इन कवियों की कृतियाँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान हैं। प्राचीनकालीन साहित्य ने आगे आने वाले भक्तिकाल और अन्य साहित्यिक युगों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

अध्याय – 4

भक्तिकालीन हिन्दी काव्य

हिंदी साहित्य का इतिहास अनेक कालखंडों में विभाजित है, जिनमें भक्तिकाल को अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली युग माना जाता है। यह काल लगभग 14वीं से 17वीं शताब्दी तक विस्तृत है और भारतीय समाज, संस्कृति तथा साहित्य में व्यापक परिवर्तन का साक्षी रहा। इस युग में रचित काव्य न केवल आध्यात्मिक चेतना का वाहक है, बल्कि सामाजिक समरसता, मानवीय मूल्यों और लोकजीवन की सहज अभिव्यक्ति का भी प्रतीक है।

भक्तिकालीन हिंदी काव्य का मूल आधार भक्ति भावना है, जिसमें ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण और आस्था को केंद्र में रखा गया है। इस काल के कवियों ने जटिल धार्मिक कर्मकांडों और बाह्य आडंबरों का विरोध करते हुए सरल, सहज और हृदयग्राही भाषा में अपने विचार व्यक्त किए। परिणामस्वरूप, हिंदी काव्य जनसामान्य के अधिक निकट आया और लोकभाषाओं के अवधी, ब्रजभाषा, राजस्थानी आदि में इसकी समृद्ध परंपरा विकसित हुई।

इस काल की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें दो मुख्य धाराएँ विकसित हुईं, निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। निर्गुण धारा के कवियों जैसे कबीर, रैदास और दादूदयाल ने निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना का प्रतिपादन किया, वहीं सगुण धारा के कवियों जैसे तुलसीदास, सूरदास और मीराबाई ने साकार ईश्वर, राम और कृष्ण की प्रेममयी भक्ति का चित्रण किया। इन दोनों धाराओं ने मिलकर भारतीय भक्ति आंदोलन को व्यापक और सशक्त स्वरूप प्रदान किया।

भक्तिकालीन हिंदी काव्य केवल धार्मिक भावनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक सुधार, समानता, मानवता और प्रेम जैसे सार्वभौमिक मूल्यों का भी गहन प्रतिपादन हुआ है। इस काल के कवियों ने जाति–पांति, ऊँच–नीच और धार्मिक भेदभाव का विरोध करते हुए समाज को एकता और समरसता का संदेश दिया।

इस प्रकार, भक्तिकालीन हिंदी काव्य भारतीय साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है, जिसने न केवल हिंदी भाषा को समृद्ध किया, बल्कि समाज को एक नई दिशा भी प्रदान की। इसकी सरलता, भावनात्मक गहराई और लोकहितकारी दृष्टि आज भी प्रासंगिक है और साहित्य प्रेमियों को प्रेरणा प्रदान करती है।

1.1 भक्ति आंदोलन

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आंदोलन एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक क्रांति के रूप में उभरता है। यह केवल धार्मिक जागरण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने समाज में समानता, प्रेम, भाईचारे तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।मध्यकालीन भारत में जब सामाजिक विषमता, जातिगत ऊँच–नीच, कर्मकांड और बाह्य आडंबर अपने चरम पर थे, तब भक्ति आंदोलन ने सरल, सहज और सर्वसुलभ ईश्वर–प्राप्ति का मार्ग प्रस्तुत किया।

भक्ति आंदोलन का स्वरूप–

भक्ति आंदोलन मूलतः ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा और पूर्ण समर्पण की भावना पर आधारित था। इसमें व्यक्ति और ईश्वर के बीच किसी मध्यस्थ (पुरोहित, कर्मकांड) की आवश्यकता को नकारते हुए प्रत्यक्ष संबंध की स्थापना पर बल दिया गया।

हिन्दी साहित्य में भक्ति के दो प्रमुख स्वरूप माने गए–

1. निर्गुण भक्ति काव्य धारा (संतकाव्य धारा व सूफीकाव्य धारा)

कवि –कबीरदास, रैदास, दादूदयाल, मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन

(क) रामभक्ति शाखा – तुलसीदास (रामचरितमानस)

(ख) कृष्णभक्ति शाखा –सूरदास (सूरसागर) मीराबाई (पदावली)

भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति और पृष्ठभूमि

भक्ति आंदोलन की शुरुआत दक्षिण भारत के आलवार और नयनार संतों से मानी जाती है (6ठी–9वीं शताब्दी)। इसके पश्चात यह उत्तर भारत में 13वीं से 17वीं शताब्दी के बीच व्यापक रूप से फैल गया।

भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति के प्रमुख कारण–

1.सामाजिक विषमता और जातिवाद – मध्यकालीन भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था अत्यंत कठोर हो चुकी थी। निम्न वर्गों को धार्मिक अधिकारों से वंचित किया जाता था। भक्ति आंदोलन ने इस असमानता के विरुद्ध आवाज उठाई।

2. कर्मकांड और धार्मिक जटिलता – धर्म अत्यधिक आडंबरपूर्ण और जटिल हो गया था। आम व्यक्ति के लिए ईश्वर तक पहुँचना कठिन था। भक्ति आंदोलन ने सरल भक्ति मार्ग प्रस्तुत किया।

3. दक्षिण भारत की भक्ति परंपरा – आलवार और नयनार संतों ने भक्ति की जो धारा प्रारंभ की, वही आगे चलकर पूरे भारत में फैल गई। यह आंदोलन मुस्लिम शासन से पहले ही शुरू हो चुका था।

4. इस्लामी प्रभाव और सांस्कृतिक संपर्क– यह सही है कि मध्यकाल में इस्लामी शासन और सूफी परंपरा के संपर्क ने भक्ति आंदोलन को प्रभावित और समृद्ध किया। सूफी संतों की तरह भक्ति संतों ने भी प्रेम, ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध और

आंतरिक साधना पर बल दिया। इससे हिंदू–मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय को बढ़ावा मिला। लेकिन इसे "गुलाम मानसिकता" कहना उचित नहीं, बल्कि इसे सांस्कृतिक अंतःक्रिया कहना अधिक सही है।

5. **जनसामान्य की आध्यात्मिक आवश्यकता–** लोग एक ऐसे मार्ग की तलाश में थे जो सरल, सुलभ और व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हो। भक्ति आंदोलन ने यह मार्ग प्रदान किया।
6. **इतिहासकारों का दृष्टिकोण–** रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति आंदोलन को जनमानस की पीड़ा और सामाजिक विषमता की प्रतिक्रिया माना। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे भारतीय संस्कृति की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया और संत परंपरा का विस्तार बताया। आधुनिक इतिहासकार इसे सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन के रूप में देखते हैं।

भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषताएं–

1. **ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण–** भक्ति आंदोलन में ज्ञान और कर्म की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व दिया गया।
2. **जाति–पांति का विरोध–** संतों ने समाज में व्याप्त ऊँच–नीच को अस्वीकार किया। 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान'– कबीर
3. **सरल भाषा का प्रयोग–** संतों ने संस्कृत के स्थान पर लोकभाषाओं (अवधी, ब्रज, भोजपुरी आदि) में काव्य रचना की, जिससे आम जनता तक संदेश पहुँचा।
4. **आडंबर और पाखंड का विरोध–** भक्ति संतों ने मंदिर–मस्जिद, तीर्थ, व्रत आदि के बाह्य प्रदर्शन की आलोचना की।
5. **गुरु का महत्व–** गुरु को ईश्वर से भी उच्च स्थान दिया गया जैसे –'गुरु गोविंद दोऊ खड़े' – कबीर
6. **समन्वयवादी दृष्टिकोण**– भक्ति आंदोलन में हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल दिया गया और मानवता को सर्वोपरि माना गया।
7. **व्यक्तिगत ईश्वर–सम्बंध–** भक्त और भगवान के बीच सीधा संबंध स्थापित किया गया, किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं मानी गई।
8. **सामाजिक समानता का समर्थन–** सभी मनुष्यों को समान मानने की भावना को प्रोत्साहित किया गया।
9. **सरल और सहज मार्ग–** भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल और सुलभ मार्ग बताया गया।
10. **लोकभाषाओं का प्रयोग–** संस्कृत के स्थान पर अवधी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी आदि लोकभाषाओं में रचनाएं हुईं।
11. **निर्गुण और सगुण भक्ति का विकास–** भक्ति आंदोलन में निराकार और साकार दोनों रूपों की उपासना को स्थान मिला।
12. **धार्मिक समन्वय–** हिंदू और मुस्लिम धर्मों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास।

13. **मानवतावाद का प्रचार–** मानव सेवा को ही सच्ची भक्ति माना गया।
14. **आंतरिक शुद्धता पर बल–** बाहरी पूजा के बजाय मन की पवित्रता को अधिक महत्व दिया गया।
15. **संगीत और कीर्तन की परंपरा–** भजन, कीर्तन और संकीर्तन के माध्यम से भक्ति का प्रचार–प्रसार हुआ।
16. **स्त्रियों की भागीदारी–** मीरा बाई जैसी संत कवयित्रियों ने भक्ति आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया।
17. **जनआंदोलन का स्वरूप–** यह आंदोलन केवल विद्वानों तक सीमित न रहकर जनसाधारण तक फैला।
18. **मोक्ष की प्राप्ति का सरल मार्ग–** ज्ञान और तपस्या की अपेक्षा भक्ति को मोक्ष का सरल साधन माना गया।
19. **नैतिक मूल्यों का प्रचार–** सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि मूल्यों को बढ़ावा दिया गया।
20. **रूढ़ियों का विरोध–** धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती दी गई।
21. **साहित्यिक समृद्धि–** भक्ति काल में हिंदी साहित्य का व्यापक विकास हुआ।
22. **आध्यात्मिक लोकतंत्र–** हर व्यक्ति को ईश्वर की भक्ति का समान अधिकार प्रदान किया गया।
23. **लोकजीवन से जुड़ाव–** भक्ति साहित्य में जनजीवन, लोकसंस्कृति और परंपराओं का चित्रण मिलता है।
24. **भावप्रधानता–** भक्ति काव्य में तर्क की अपेक्षा भावनाओं और अनुभूति को अधिक महत्व दिया गया।
25. **प्रेम को सर्वोच्च साधन मानना–** ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग प्रेम को बताया गया।
26. **अहंकार का त्याग–** भक्ति में विनम्रता और अहंकार–शून्यता पर बल दिया गया।
27. **सार्वभौमिकता–** भक्ति आंदोलन का संदेश सभी धर्मों और समाजों के लिए समान रूप से लागू होता है।

भक्ति आंदोलन/ काल की प्रमुख धाराएं–

1. निर्गुण भक्ति धारा–

(क) ज्ञानमार्गी (संत) शाखा – कबीर, रैदास, दादू आदि।

(ख) प्रेममार्गी (सूफी) शाखा – जायसी, मंझन, कुतुबन आदि।

2. सगुण भक्ति धारा–

(क) रामभक्ति शाखा– प्रमुख कवि तुलसीदास, ग्रंथ–रामचरितमानस

(ख) कृष्ण काव्य शाखा– प्रमुख कवि सूरदास, मीरा, नंददास

भक्ति आंदोलन में संत एवं सूफी काव्य का योगदान

भक्ति आंदोलन भारतीय समाज में आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक

परिवर्तन का एक व्यापक जनांदोलन था। इस आंदोलन को जन–जन तक पहुँचाने में संत काव्य (निर्गुण धारा) और सूफी काव्य (प्रेममार्गी धारा) का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन दोनों परंपराओं ने भक्ति को केवल धार्मिक क्रिया न बनाकर जीवन–दर्शन और मानवता का आधार बनाया।

क. संत काव्य का योगदान– संत काव्य मुख्यतः निर्गुण भक्ति धारा से संबंधित है, जिसमें ईश्वर को निराकार और सर्वव्यापी माना गया।

1. **सामाजिक कुरीतियों का विरोध–** संत कवियों जैसे कबीर, रैदास, दादू आदि ने जाति–पांति, छुआछूत और धार्मिक पाखंड का तीखा विरोध किया। कबीर ने कहा "पोथी पढ़ि – पढ़ि जग मुआ"
2. **समानता और मानवतावाद का प्रचार–** संतों ने सभी मनुष्यों को समान बताया और मानवता को सर्वोपरि माना।
3. **ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष संबंध–** संत काव्य ने व्यक्ति और ईश्वर के बीच सीधे संबंध पर बल दिया, मध्यस्थता को अस्वीकार किया।
4. **लोकभाषा में काव्य रचना–** संतों ने सरल भाषा (साखी, सबद) में काव्य रचा, जिससे आम जनता भी समझ सकी।
5. **आंतरिक साधना पर बल–** बाह्य आडंबर के बजाय मन की शुद्धता और आत्मचिंतन को महत्व दिया गया।
6. **गुरु की महत्ता–** संत परंपरा में गुरु को ईश्वर से भी उच्च स्थान दिया गया।
7. **निर्गुण भक्ति का प्रसार –** संत काव्य ने निर्गुण, निराकार ईश्वर की उपासना को लोकप्रिय बनाया।

ख. सूफी काव्य का योगदान– सूफी काव्य इस्लामी रहस्यवाद (सूफीमत) से प्रेरित है, जिसमें ईश्वर को प्रेम के माध्यम से प्राप्त करने की भावना प्रमुख है।

1. **प्रेम को भक्ति का आधार बनाना–** सूफी कवियों जैसे जायसी, मंझन, कुतुबन आदि ने ईश्वर–प्राप्ति के लिए प्रेम को सर्वोपरि माना।
2. **रूपक और प्रतीकात्मक शैली –** सूफी काव्य में प्रेमकथाओं (जैसे पद्मावत) के माध्यम से आध्यात्मिक संदेश दिए गए।
3. **हिंदू–मुस्लिम समन्वय –** सूफी काव्य ने दोनों धर्मों के बीच सांस्कृतिक सेतु का कार्य किया।
4. **आध्यात्मिक प्रेम (इश्क–हकीकी)–** सांसारिक प्रेम (इश्क–मजाजी) के माध्यम से ईश्वर के प्रति प्रेम का संकेत दिया गया।
5. **लोकभाषा का प्रयोग–** सूफी कवियों ने भी अवधी आदि भाषाओं में रचनाएं कीं, जिससे संदेश व्यापक हुआ।
6. **सहिष्णुता और उदारता–** सूफी विचारधारा ने प्रेम, सहिष्णुता और भाईचारे को बढ़ावा दिया।

भक्ति आंदोलन में संत और सूफी काव्य का संयुक्त योगदान

1. **भक्ति आंदोलन को जनआंदोलन बनाना–** दोनों धाराओं ने भक्ति को जनसाधारण तक पहुँचाया।
2. **धार्मिक समन्वय की स्थापना–** हिंदू और मुस्लिम विचारधाराओं के बीच पुल का कार्य किया।
3. **सामाजिक सुधार–** जातिवाद, अंधविश्वास और पाखंड के विरुद्ध जागरूकता फैलाई।
4. **लोकभाषाओं का विकास–** हिंदी और उसकी उपभाषाओं को साहित्यिक प्रतिष्ठा मिली।
5. **मानवीय मूल्यों का प्रसार–** प्रेम, करुणा, समानता और भाईचारे को बढ़ावा मिला।
6. **साहित्यिक समृद्धि–** भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग बनाने में योगदान।

प्रमुख संत एवं सूफी कवि

संत कवि		**योगदान**
1. कबीर	–	सामाजिक आलोचना
2. रैदास	–	समानता और मानवता का संदेश
3. दादू	–	प्रेम और सरल भक्ति मार्ग
4. गुरु नानक	–	एकेश्वरवाद और सेवा

सूफी कवि		**योगदान**
1. मलिक मुहम्मद जायसी	–	प्रेम के माध्यम से भक्ति
2. मंझन	–	मधुमालती
3. कुतुबन	–	मृगावती

संत एवं सूफी काव्य ने भक्ति आंदोलन को गहराई, व्यापकता और जनसंपर्क प्रदान किया। संतों ने जहां सामाजिक सुधार और निर्गुण भक्ति को बढ़ावा दिया, वहीं सूफी कवियों ने प्रेम और समन्वय के माध्यम से भक्ति को भावनात्मक और सार्वभौमिक बनाया। इस प्रकार दोनों धाराओं का योगदान भक्ति आंदोलन को एक सशक्त और व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

भक्ति आंदोलन में रामकाव्य एवं कृष्ण काव्य का योगदान

भक्ति आंदोलन की सगुण धारा में राम काव्य और कृष्ण काव्य दो प्रमुख शाखाएँ हैं, जिन्होंने भारतीय समाज, धर्म और साहित्य को गहराई से प्रभावित किया। जहाँ राम काव्य ने आदर्श, मर्यादा और धर्म का संदेश दिया, वहीं कृष्ण काव्य ने प्रेम, माधुर्य और भावनात्मक भक्ति को सशक्त बनाया। दोनों धाराओं ने मिलकर भक्ति आंदोलन को व्यापक, लोकप्रिय और प्रभावशाली बनाया।

क. राम काव्य का योगदान– राम काव्य मुख्यतः रामभक्ति शाखा से संबंधित है, जिसमें भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम और आदर्श नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया।

1. **आदर्श जीवन मूल्यों का प्रचार–** राम काव्य ने सत्य, धर्म, कर्तव्य, त्याग और मर्यादा जैसे मूल्यों को स्थापित किया। रामचरितमानस में राम को आदर्श पुत्र, राजा और मानव के रूप में दिखाया गया।
2. **समाज में नैतिकता की स्थापना–** मध्यकालीन सामाजिक अव्यवस्था के बीच राम काव्य ने नैतिक अनुशासन और मर्यादा का मार्ग दिखाया।
3. **भक्ति का लोकव्यापीकरण–** तुलसीदास ने अवधी भाषा में काव्य रचना कर भक्ति को जनसाधारण तक पहुँचाया।
4. **धार्मिक समन्वय–** राम काव्य में भक्ति और ज्ञान का समन्वय देखने को मिलता है।
5. **सामाजिक एकता–** राम कथा के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया गया।
6. **काव्य और भाषा का विकास–** राम काव्य ने अवधी भाषा को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की।

ख. कृष्ण काव्य का योगदान– कृष्ण काव्य कृष्णभक्ति शाखा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें कृष्ण को प्रेम, लीला और माधुर्य के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया।

1. **प्रेम और माधुर्य भाव का विकास–** कृष्ण काव्य में राधा–कृष्ण के प्रेम के माध्यम से भक्ति को भावनात्मक रूप दिया गया।
2. **भक्त और भगवान का घनिष्ठ संबंध–** कृष्ण को सखा, प्रियतम, बालक आदि रूपों में देखा गया, जिससे भक्ति अत्यंत निकट और व्यक्तिगत बनी।
3. **भावप्रधान काव्य परंपरा–** तर्क की अपेक्षा भाव, रस और अनुभूति को अधिक महत्व मिला।
4. **संगीत और कला का विकास–** कृष्ण भक्ति के साथ भजन, रासलीला, नृत्य और संगीत की परंपराएँ विकसित हुईं।
5. **स्त्री संवेदना की अभिव्यक्ति–** मीरा बाई ने अपने काव्य में स्त्री की भावनाओं और समर्पण को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया।
6. **लोकभाषा का विस्तार–** ब्रजभाषा में रचित कृष्ण काव्य अत्यंत लोकप्रिय हुआ।
7. **प्रमुख कवि–** सूरदास– सूरसागर, मीरा बाई – पदावली, नंददास, रसखान आदि

राम काव्य और कृष्ण काव्य का संयुक्त योगदान–

1. **भक्ति आंदोलन का व्यापक प्रसार–** दोनों धाराओं ने भक्ति को घर–घर तक पहुँचाया।
2. **सगुण भक्ति का सुदृढ़ीकरण–** ईश्वर के साकार रूप की उपासना को लोकप्रिय बनाया।
3. **लोकभाषाओं का विकास–** अवधी (राम काव्य) और ब्रजभाषा (कृष्ण काव्य) को समृद्ध किया।
4. **सामाजिक और सांस्कृतिक एकता–** दोनों काव्यों ने भारतीय समाज को एक सांस्कृतिक सूत्र में बाँधा।

5. **साहित्यिक समृद्धि–** भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
6. **मानवीय मूल्यों का प्रचार–** राम काव्य ने मर्यादा और नीति को, जबकि कृष्ण काव्य ने प्रेम और करुणा को बढ़ावा दिया।

तुलनात्मक दृष्टि

आधार	राम काव्य	कृष्ण काव्य
प्रमुख भाव	मर्यादा, धम	प्रेम, माधुर्य
भाषा	अवधी	ब्रजभाषा
प्रमुख कवि	तुलसीदास	सूरदास, मीरा
स्वरूप	आदर्शवादी	भावनात्मक
ईश्वर रूप	मर्यादा पुरुषोत्तम	लीलापुरुषोत्तम

इस प्रकार भक्ति आंदोलन में राम काव्य और कृष्ण काव्य दोनों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और परस्पर पूरक है। राम काव्य ने जहाँ समाज को नैतिकता और मर्यादा का मार्ग दिखाया, वहीं कृष्ण काव्य ने भक्ति को प्रेम और भावनात्मक ऊँचाई प्रदान की। इन दोनों धाराओं ने मिलकर भक्ति आंदोलन को एक सशक्त, व्यापक और लोकजीवन से जुड़ा हुआ आंदोलन बनाया।

समकालीन संदर्भ में भक्ति आंदोलन

आज के समय में भक्ति आंदोलन के मूल मूल्यकृसमानता, प्रेम, सहिष्णुता और मानवता, अत्यंत प्रासंगिक हैं। सामाजिक तनाव, धार्मिक कट्टरता और भेदभाव के बीच भक्ति आंदोलन का संदेश एक समन्वयकारी शक्ति के रूप में कार्य कर सकता है।

इसलिए यह कहना अधिक उचित होगा कि भक्ति आंदोलन भारतीय समाज की अंतःप्रेरणा और बाह्य प्रभावों के समन्वय से उत्पन्न एक व्यापक सामाजिक–धार्मिक क्रांति था, न कि किसी एक समुदाय या "गुलाम मानसिकता" का परिणाम।

4.2 भक्ति आंदोलन के प्रमुख सिद्धान्त

भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन रहा है, जिसने मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त जटिलताओं, रूढ़ियों, आडंबरों तथा सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक धारा प्रस्तुत की। इस आंदोलन का मूल उद्देश्य ईश्वर के प्रति सरल, सहज तथा सर्वसुलभ भक्ति मार्ग को प्रतिष्ठित करना था।

भक्ति आंदोलन ने न केवल धार्मिक चेतना को नया आयाम प्रदान किया, बल्कि सामाजिक समरसता, नैतिकता तथा मानवतावादी दृष्टिकोण को भी सुदृढ़ किया। इसके अंतर्गत प्रतिपादित सिद्धांत व्यक्ति के आंतरिक विकास के साथ–साथ समाज के समग्र उत्थान में सहायक सिद्ध हुए।

भक्ति आंदोलन के प्रमुख सिद्धांत–

1. **एकेश्वरवाद–** भक्ति आंदोलन का आधारभूत सिद्धांत एकेश्वरवाद है। संतों ने स्पष्ट किया कि ईश्वर एक ही है, चाहे उसे विभिन्न नामों—राम, कृष्ण, अल्लाह, हरि या गोविंद से पुकारा जाए। यह विचार धार्मिक विभाजन को समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण था।
2. **प्रेम–प्रधान भक्ति–** भक्ति में प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया गया। यह प्रेम लौकिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक एवं निष्काम होता है, जो भक्त और भगवान के बीच आत्मीय संबंध स्थापित करता है।
3. **शरणागति (पूर्ण आत्मसमर्पण)–** भक्ति का मूल भाव ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण है। जब भक्त अपने अहंकार, स्वार्थ और इच्छाओं का त्याग कर देता है, तभी वह ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त कर सकता है।
4. **गुरु की महत्ता–** भक्ति परंपरा में गुरु को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गुरु ही वह माध्यम है, जो अज्ञान के अंधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश प्रदान करता है।
5. **आंतरिक शुद्धता–** भक्ति संतों ने बाहरी आडंबरों की अपेक्षा मन की पवित्रता, सच्चाई और निष्कपटता को अधिक महत्व दिया। उनके अनुसार, शुद्ध हृदय ही सच्ची भक्ति का आधार है।
6. **कर्मकांड का विरोध–** भक्ति आंदोलन ने यज्ञ, व्रत, तीर्थयात्रा आदि कर्मकांडों के अत्यधिक महत्व का विरोध किया और सच्ची भक्ति को ही ईश्वर–प्राप्ति का मार्ग बताया।
7. **समानता का सिद्धांत–** इस आंदोलन ने जाति, वर्ग, धर्म और लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव का विरोध किया तथा सभी मनुष्यों को समान माना।
8. **व्यक्तिगत ईश्वर संबंध–** भक्ति आंदोलन ने ईश्वर और भक्त के बीच प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत संबंध की स्थापना की, जिसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं मानी गई।
9. **सरल भक्ति मार्ग–** भक्ति को अत्यंत सरल एवं सहज बताया गया, जिससे सामान्य जन भी ईश्वर की उपासना कर सके।
10. **निर्गुण और सगुण भक्ति–** भक्ति आंदोलन में ईश्वर के दोनों रूपों के निर्गुण (निराकार) और सगुण (साकार) को स्वीकार किया गया, जिससे विविध आध्यात्मिक दृष्टिकोणों का विकास हुआ।
11. **नाम–स्मरण–** ईश्वर के नाम का जप भक्ति का प्रमुख साधन माना गया। नाम–स्मरण से मन की शुद्धि और ईश्वर से निकटता बढ़ती है।
12. **सत्संग का महत्व–** संतों की संगति (सत्संग) को आध्यात्मिक उन्नति का प्रभावी साधन माना गया, जिससे व्यक्ति के विचार और आचरण शुद्ध होते हैं।
13. **प्रेम और करुणा–** भक्ति आंदोलन ने सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, दया और करुणा को आवश्यक गुण माना।

14. **अहंकार का त्याग–** अहंकार को भक्ति का सबसे बड़ा बाधक माना गया। विनम्रता और सरलता को सच्चे भक्त के गुणों में शामिल किया गया।

15. **सेवा भाव–** मानव सेवा को ईश्वर सेवा के समान माना गया। इस प्रकार भक्ति को सामाजिक सेवा से जोड़ा गया।

16. **लोकभाषा का उपयोग–** भक्ति संतों ने संस्कृत के स्थान पर लोकभाषाओं के अवधी, ब्रज, भोजपुरी, पंजाबी आदि का प्रयोग किया, जिससे उनका संदेश जन–जन तक पहुँचा।

17. **समन्वयवादी दृष्टिकोण–** भक्ति आंदोलन ने विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया, जिससे सांप्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा मिला।

18. **नैतिक जीवन पर बल–** सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, संयम जैसे नैतिक मूल्यों को भक्ति का अनिवार्य अंग माना गया।

19. **भावप्रधानता–** भक्ति में तर्क और शास्त्रार्थ की अपेक्षा भाव, अनुभूति और आंतरिक अनुभव को अधिक महत्व दिया गया।

20. **मोक्ष का सरल मार्ग–** भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का सहज और सर्वसुलभ मार्ग बताया गया, जो सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध है।

21. **सार्वभौमिकता–** भक्ति आंदोलन के सिद्धांत किसी एक धर्म या समुदाय तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ये सार्वभौमिक एवं मानवतावादी हैं।

22. **लोकमंगल की भावना–** भक्ति केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के कल्याण और मानवता की सेवा से भी जुड़ी है।

23. **आडंबर–विरोधी दृष्टि–** भक्ति आंदोलन ने बाहरी दिखावे, पाखंड और धार्मिक प्रदर्शन का विरोध किया।

24. **आध्यात्मिक लोकतंत्र–** हर व्यक्ति को ईश्वर–भक्ति और मोक्ष प्राप्ति का समान अधिकार है,यह विचार भक्ति आंदोलन की विशेष देन है।

25. **जीवन–सापेक्षता–** भक्ति को केवल साधना नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक पद्धति के रूप में देखा गया, जो व्यक्ति के आचरण, व्यवहार और दृष्टिकोण को प्रभावित करती है।

भक्ति आंदोलन के प्रमुख सिद्धांतों की समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

आधुनिक युग में, जब समाज विभिन्न प्रकार के तनाव, असमानता और धार्मिक कट्टरता से जूझ रहा है, भक्ति आंदोलन के सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। समानता, प्रेम, सहिष्णुता और मानवता जैसे मूल्य सामाजिक समरसता स्थापित करने में सहायक हो सकते हैं।

भक्ति आंदोलन के प्रमुख सिद्धांतों ने भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की। इन्होंने धर्म को सरल, सहज और मानवीय बनाया, सामाजिक समता को

प्रोत्साहित किया तथा व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर किया। इस प्रकार, भक्ति आंदोलन केवल एक धार्मिक धारा नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का माध्यम सिद्ध हुआ।

4.3 निर्गुण काव्य (ज्ञान मार्ग व प्रेम मार्ग)

मध्यकालीन हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस आंदोलन के अंतर्गत दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुई, सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति। निर्गुण भक्ति काव्य धारा में ईश्वर को निराकार, निर्गुण और सर्वव्यापी माना गया। इस धारा के कवियों ने मूर्तिपूजा, कर्मकांड और बाह्य आडंबरों का विरोध करते हुए आंतरिक साधना, नाम–स्मरण और गुरु–भक्ति पर बल दिया।

निर्गुण भक्ति काव्य को मुख्यतः दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है–

1. संत काव्य धारा
2. सूफी काव्य धारा

दोनों धाराओं का लक्ष्य एक ही था ईश्वर की प्राप्ति, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति, प्रतीक और साधना–पद्धति में कुछ भिन्नताएँ भी दृष्टिगत होती हैं।

निर्गुण भक्ति काव्य धारा की उत्पत्ति के प्रमुख कारण–

1. धार्मिक आडंबर और कर्मकांडों का विरोध
2. जाति–पांति और सामाजिक भेदभाव से असंतोष
3. ईश्वर की सरल एवं सहज भक्ति की आवश्यकता
4. सूफी मत और इस्लामी विचारधारा का प्रभाव
5. समाज में व्याप्त अज्ञान और अंधविश्वास को दूर करने की इच्छा

निर्गुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

1. ईश्वर का निराकार और निर्गुण स्वरूप
2. नाम–स्मरण का महत्व
3. गुरु की अनिवार्यता
4. आडंबर एवं कर्मकांड का विरोध
5. सामाजिक समानता और जाति–विरोध
6. लोकभाषा का प्रयोग
7. आंतरिक साधना पर बल
8. मानवतावादी दृष्टिकोण
9. प्रेम और अनुभव की प्रधानता
10. रहस्यवादी भावना
11. समन्वयवादी दृष्टिकोण
12. सहजता और सरलता

भक्तिकाल के निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख कवि एवं उनकी कृतियां–

कवि का नाम	**प्रमुख कृतियाँ**
1. कबीरदास	बीजक, साखी, सबद, रमैनी
2. गुरु नानक देव	जपुजी साहिब, आदि ग्रंथ
3. दादूदयाल	दादू वाणी, दादू ग्रंथावली
4. रैदास (रविदास)	पदावली, साखियाँ
5. मलूकदास	मलूकदास की वाणी
6. सुंदरदास	सुंदर विलास, ज्ञान समुद्र
7. धर्मदास	धर्मदास की वाणी
8. सहजोबाई	सहजो वाणी
9. दयाबाई	दया बानी
10. बुल्ले शाह	काफियाँ
11. शेख फरीद	फरीद की बाणी
12. पलटूदास	पलटू वाणी

1. संत काव्य धारा– संत काव्य धारा हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण ज्ञानाश्रयी, निर्गुण भक्ति की प्रमुख शाखा है, जिसमें संतों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ईश्वर की व्याख्या की।यह धारा सामाजिक सुधार, आध्यात्मिक जागरण और धार्मिक समन्वय का माध्यम बनी।

संत काव्य धारा की मुख्य विशेषताएँ–

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना।
2. गुरु–भक्ति का महत्व।
3. जाति–पांति का विरोध।
4. सरल और लोकभाषा में अभिव्यक्ति।
5. रहस्यवाद एवं अनुभवात्मक ज्ञान।
6. गुरु की अनिवार्यता
7. आडंबर एवं कर्मकांड का विरोध
8. सामाजिक समानता और जाति–विरोध
9. लोकभाषा का प्रयोग
10. आंतरिक साधना पर बल
11. मानवतावादी दृष्टिकोण
12. प्रेम और अनुभव की प्रधानता
13. समन्वयवादी दृष्टिकोण
14. सहजता और सरलता
15. ज्ञानमार्गी

संत काव्य धारा के प्रमुख संत कवि एवं उनकी कृतियाँ–

1. कबीरदास– निर्गुण भक्ति काव्य के संत काव्य में सर्वाधिक प्रभावशाली कवि कबीरदास माने जाते हैं। उन्होंने हिंदू–मुस्लिम दोनों धर्मों की कुरीतियों की आलोचना की।

प्रमुख कृतियाँ–बीजक (साखी, सबद, रमैनी) साखी संग्रह

2. **रैदास (रविदास)–** रैदास एक महान संत कवि थे, जिन्होंने समानता और मानवता का संदेश दिया।

प्रमुख कृतियाँ– पदावली (उनके पद गुरु ग्रंथ साहिब में भी संकलित हैं)

3. गुरु नानकदेव– सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक ने निर्गुण भक्ति को नई दिशा दी।

प्रमुख कृतियाँ– जापजी साहिब आदि ग्रंथ (गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित वाणी)

4. दादूदयाल– दादू ने निर्गुण भक्ति को व्यापक रूप दिया और दादू पंथ की स्थापना की।

प्रमुख कृतियाँ– दादू वाणी

5. सुंदरदास– दादू के प्रमुख शिष्य सुंदरदास एक विद्वान संत कवि थे।

प्रमुख कृतियाँ– सुंदर विलास, ज्ञान समुद्र

6. मलूकदास– मलूकदास ने सरल भक्ति और नैतिक जीवन पर बल दिया।

प्रमुख कृतियाँ– मलूक वाणी

7. पीपा, सेना, साधना आदि

2. सूफी काव्य धारा– सूफी काव्य धारा इस्लामी रहस्यवाद (सूफीवाद) से प्रभावित है। इसमें ईश्वर को प्रेमी (माशूक) और आत्मा को प्रेमी (आशिक) के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सूफी काव्य धारा की मुख्य विशेषताएँ–

1. ईश्वर के प्रति प्रेम (इश्क–ए–हकीकी)
2. मानव–प्रेम और सार्वभौमिक भाईचारा
3. गुरु (मुरशिद) का महत्व
4. आत्मा और परमात्मा का मिलन
5. रहस्यवाद
6. आंतरिक साधना पर बल
7. अहंकार (नफ्स) का त्याग
8. प्रतीकात्मक एवं रूपकात्मक शैली
9. विरह एवं मिलन की भावना
10. लोकभाषा का प्रयोग
11. संगीत और काव्य का समन्वय (कव्वाली परंपरा)
12. धार्मिक सहिष्णुता और समन्वयवाद
13. सरल एवं सरस अभिव्यक्ति

14. प्रेम को साधना का माध्यम मानना
15. सांसारिक मोह–माया से विरक्ति
16. मानव जीवन की नश्वरता का बोध
17. आध्यात्मिक अनुभूति की प्रधानता

प्रमुख सूफी कवि एवं उनकी कृतियाँ–

1. मलिक मोहम्मद जायसी– सूफी काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।
प्रमुख कृति– पद्मावत

2. कुतुबन– कुतुबन ने प्रेमाख्यानक परंपरा को आगे बढ़ाया।
प्रमुख कृति– मृगावती

3. मंझन– इन्होंने भी सूफी प्रेम काव्य को समृद्ध किया।
प्रमुख कृति – मंझन, मधुमालती

4. उस्मान– सूफी परंपरा के महत्वपूर्ण कवि।
प्रमुख कृति– चंदायन

5. नूर मोहम्मद– सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा के कवि।
प्रमुख कृति– इंद्रावती

भक्ति काव्य धारा में निर्गुण भक्ति काव्य, ज्ञानश्रयी, प्रेमाश्रयी (संत व सूफी) का महत्व–

1. धार्मिक सुधार और जागृति
2. सामाजिक समता का प्रसार
3. जाति–पांति का विरोध
4. मानवतावाद की स्थापना
5. ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति का प्रचार
6. आडंबर एवं रूढ़ियों का खंडन
7. लोकभाषा का विकास
8. सांस्कृतिक समन्वय को बढ़ावा
9. हिंदू–मुस्लिम एकता का संदेश
10. नैतिक मूल्यों का प्रसार
11. आध्यात्मिक चेतना का विकास
12. प्रेम और भाईचारे की भावना
13. सरल और जनसुलभ साहित्य का निर्माण
14. सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार
15. जनमानस को जागरूक करना

अतः निश्चित ही कहा जा सकता है कि निर्गुण भक्ति काव्य धारा भारतीय साहित्य और समाज दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। संतों और सूफी कवियों

ने अपने काव्य के माध्यम से ईश्वर की एक नई अवधारणा प्रस्तुत की, जो सरल, मानवीय और सर्वसुलभ थी।

इस धारा ने न केवल धार्मिक आडंबरों का विरोध किया, बल्कि सामाजिक समरसता, समानता और प्रेम का संदेश भी दिया। आज भी यह काव्य धारा अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है और मानवता को एकता तथा सहिष्णुता का मार्ग दिखाती है।

निर्गुण भक्ति काव्य धारा भारतीय भक्ति आंदोलन की एक सशक्त और प्रभावशाली धारा है। संत और सूफी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से ईश्वर की एकता, प्रेम, समानता और आंतरिक साधना का संदेश दिया। इनकी रचनाएँ आज भी समाज को मार्गदर्शन प्रदान करती हैं और मानवता के उच्च आदर्शों की प्रेरणा देती हैं।

4.4 सगुण काव्य (रामभक्ति व कृष्णभक्ति)

सगुण भक्ति काव्य उस काव्यधारा को कहा जाता है जिसमें ईश्वर को साकार (रूपवान), गुणों से युक्त और सगुण रूप में स्वीकार किया जाता है। इस धारा में भगवान को किसी विशेष रूप जैसे राम, कृष्ण, देवी–देवता के रूप में मानकर उनकी भक्ति, लीला, गुण, रूप और चरित्र का काव्यात्मक वर्णन किया जाता है।

इस काव्य में भक्त और भगवान के बीच स्नेह, प्रेम, दास्य, वात्सल्य, सखा आदि भावों के माध्यम से संबंध स्थापित किया जाता है। सगुण भक्ति काव्य मुख्यतः रामभक्ति (रामकाव्य) और कृष्णभक्ति (कृष्णकाव्य) के रूप में विकसित हुआ।

सगुण भक्ति का स्वरूप–

सगुण भक्ति में ईश्वर को साकार रूप में देखा जाता है। भक्त भगवान को अपने आराध्य के रूप में मानकर उनसे प्रेम करता है और उनके साथ विभिन्न भावों दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य में संबंध स्थापित करता है।

सगुण भक्ति काव्य को मुख्यतः दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है–

1. रामभक्ति काव्य धारा
2. कृष्णभक्ति काव्य धारा

सगुण भक्ति काव्य धारा की उत्पत्ति के प्रमुख कारण–

1. समाज में व्याप्त धार्मिक जटिलताओं और कर्मकांडों से मुक्ति की आवश्यकता
2. भक्ति के सरल और सुलभ मार्ग की खोज
3. दक्षिण भारत के आलवार और नयनार संतों का प्रभाव
4. रामानुजाचार्य, रामानंद आदि आचार्यों की शिक्षाएँ
5. इस्लाम और सूफी मत के संपर्क से प्रेम और भक्ति की भावना का विकास

सगुण भक्ति काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ–

1. ईश्वर का साकार एवं सगुण स्वरूप
2. राम और कृष्ण की उपासना

3. भक्ति में प्रेम की प्रधानता
4. भक्त–भगवान का व्यक्तिगत संबंध
5. दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव
6. लीलाओं का सजीव वर्णन
7. भावात्मक एवं रसात्मक अभिव्यक्ति
8. लोकभाषाओं (अवधी, ब्रज) का प्रयोग
9. सरल, मधुर और सरस भाषा शैली
10. आदर्श जीवन एवं नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन
11. संगीतात्मकता और गेयता
12. भक्त के आत्मसमर्पण की भावना
13. लोकजीवन और संस्कृति का चित्रण
14. धार्मिक समन्वय की भावना
15. भक्ति को जनसामान्य तक पहुँचाना
16. काव्य में सौंदर्य और अलंकारों का प्रयोग
17. ईश्वर के रूप, गुण और चरित्र का वर्णन

भक्तिकाल के सगुण काव्य धारा के प्रमुख कवि एवं उनकी कृतियां–

सगुण कवि	**कृतियां**
1. तुलसीदास	रामचरितमानस, विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली
2. नाभादास	भक्तमाल
3. कृष्णदास पायहारी	भक्ति पद
4. अग्रदास	रामभक्ति संबंधी पद
5. सूरदास	सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी
6. मीराबाई	मीरा के पद (पदावली)
7. नंददास	रास पंचाध्यायी, नंददास पदावली
8. हितहरिवंश	हित चौरासी
9. चैतन्य महाप्रभु	संकीर्तन परंपरा (काव्यात्मक पद)
10. रसखान	प्रेमवाटिका, सुजान रसखान

(क) रामभक्ति काव्य धारा– हिन्दी साहित्य के इतिहास में, भक्तिकाल के अन्तर्गत राम भक्ति काव्य धारा सगुण भक्ति काव्य की वह प्रमुख शाखा है, जिसमें भगवान राम को आराध्य मानकर उनकी भक्ति, गुण, चरित्र, आदर्श और लीलाओं का काव्यात्मक वर्णन किया गया है। इस धारा में राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया गया है, जो धर्म, सत्य, न्याय और आदर्श जीवन के प्रतीक हैं। इस काव्य में भक्त और भगवान के बीच दास्य भाव (सेवक–स्वामी संबंध) की प्रधानता है,

साथ ही श्रद्धा, समर्पण और नैतिकता पर विशेष बल दिया गया है। भाषा प्रायः अवधी है और शैली सरल, भावपूर्ण तथा जनसामान्य के लिए सहज है। आसान शब्दों में कहें तो जहाँ भगवान राम के आदर्श स्वरूप, जीवन–मूल्यों और भक्ति का काव्यात्मक वर्णन किया जाता है, उसे राम भक्ति काव्य धारा कहा जाता है।

राम काव्य धारा की मुख्य विशेषताएँ–

1. भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रण
2. सगुण एवं साकार ईश्वर की उपासना
3. दास्य भाव की प्रधानता
4. भक्ति में श्रद्धा और समर्पण
5. आदर्श जीवन मूल्यों का प्रतिपादन
6. धर्म, सत्य और न्याय पर बल
7. राम के चरित्र का आदर्शीकरण
8. रामकथा का विस्तृत वर्णन
9. लोकमंगल की भावना
10. सरल एवं लोकभाषा (अवधी) का प्रयोग
11. काव्य में नैतिक शिक्षा का समावेश
12. परिवार और समाज के आदर्शों का चित्रण
13. भक्त और भगवान का निकट संबंध
14. भक्ति को सहज और सुलभ बनाना
15. करुणा, दया और विनम्रता का भाव
16. काव्य में गेयता और संगीतात्मकता
17. आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति
18. धार्मिक समन्वय की भावना
19. लोकजीवन से गहरा संबंध
20. भावात्मक एवं सरस शैली
21. राम के गुण, रूप और लीला का वर्णन

रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि एवं उनकी कृतियाँ–

1. **गोस्वामी तुलसीदास–** रामचरितमानस, विनय पत्रिका, कवितावली गीतावली दोहावली
2. **नाभादास–** भक्तमाल
3. **अग्रदास–** रामभक्ति संबंधी पद एवं रचनाएँ
4. **प्रियादास–** भक्तमाल की टीका
5. **कृष्णदास पायहारी–** रामभक्ति पद

6. **केशवदास–** रामचंद्रिका
7. **सेनापति–** कवित्त रत्नाकर
8. **चरनदास–** चरनदास की वाणी
9. **रामानंद (आचार्य)–** भक्ति पद

(ख) कृष्णभक्ति काव्य धारा–

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में कृष्ण काव्य धारा सगुण भक्ति काव्य की वह शाखा है, जिसमें भगवान कृष्ण को आराध्य मानकर उनके रूप, गुण, लीलाओं और प्रेम का काव्यात्मक वर्णन किया जाता है। इस धारा में विषेश रूप से बाल–लीलाएँ, रासलीला, गोपी–प्रेम और राधा–कृष्ण के माधुर्य भाव का अत्यंत सुंदर चित्रण मिलता है।

इस काव्य धारा में भक्त और भगवान के बीच माधुर्य (प्रेम), वात्सल्य (माता–पुत्र), सख्य (मित्रता) जैसे भावों की प्रधानता है। भाषा प्रायः ब्रजभाषा है, जो मधुर और गेय शैली में अभिव्यक्त है। सरल शब्दों में कहें तो जिस साहित्य में भगवान कृष्ण की लीलाओं, प्रेम और भक्ति का भावपूर्ण काव्यात्मक चित्रण किया जाता है, उसे कृष्ण काव्य धारा कहा जाता है।

कृष्ण काव्य धारा की मुख्य विशेषताएँ–

1. भगवान कृष्ण को सगुण एवं साकार रूप में स्वीकार
2. कृष्ण को लीलापुरुषोत्तम के रूप में चित्रण
3. बाल–लीलाओं का मनोहारी वर्णन
4. रासलीला का विस्तारपूर्ण चित्रण
5. राधा–कृष्ण के दिव्य प्रेम का प्रतिपादन
6. माधुर्य भाव की प्रधानता
7. वात्सल्य भाव (यशोदा–कृष्ण संबंध)
8. सख्य भाव (मित्रता) का चित्रण
9. गोपी–प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति
10. प्रेम को भक्ति का मुख्य आधार मानना
11. ब्रजभाषा का व्यापक प्रयोग
12. काव्य में मधुरता, सरसता और कोमलता
13. संगीतात्मकता एवं गेयता
14. प्रकृति और ब्रज जीवन का सुंदर चित्रण
15. अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग
16. भावप्रधान एवं रसात्मक काव्य शैली
17. श्रृंगार रस की प्रमुखता

18. लोकजीवन से गहरा संबंध
19. भक्त और भगवान का आत्मीय संबंध
20. ईश्वर की लीलाओं का मानवीकरण
21. आध्यात्मिकता और प्रेम का समन्वय

कृष्ण काव्य धारा के प्रमुख कवि एवं उनकी कृतियाँ–

1. **सूरदास–** सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी
2. **मीराबाई–** मीरा के पद (पदावली)
3. **नंददास–** रास पंचाध्यायी, नंददास पदावली
4. **हितहरिवंश–** हित चौरासी
5. **रसखान–** प्रेमवाटिका, सुजान रसखान
6. **विद्यापति–** विद्यापति पदावली
7. **चैतन्य महाप्रभु**– संकीर्तन पद
8. **गोविंद स्वामी–** कृष्ण भक्ति पद
9. **स्वामी हरिदास–** हरिदास के पद
10. **कुंभनदास–** कुंभनदास के पद
11. **परमानंददास–** परमानंददास के पद
12. **चतुर्भुजदास–** चतुर्भुजदास के पद

भक्ति काव्य धारा में सगुण भक्ति काव्य (रामकाव्य व कृष्ण काव्य) का महत्व–

हिंदी साहित्य के भक्ति काल में सगुण भक्ति काव्य धारा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस धारा में ईश्वर को साकार रूप में स्वीकार कर उसकी भक्ति को जनसामान्य के लिए सहज, सरल और भावपूर्ण बनाया गया। विशेषतः राम काव्य और कृष्ण काव्य ने भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य को गहराई से प्रभावित किया। राम को मर्यादा, धर्म और आदर्श जीवन का प्रतीक माना गया, जबकि कृष्ण को प्रेम, माधुर्य और लीलामय जीवन के रूप में चित्रित किया गया।

सगुण भक्ति काव्य ने भक्ति को केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित न रखकर उसे लोकजीवन से जोड़ दिया। अवधी और ब्रज जैसी लोकभाषाओं में रचित इन काव्यों ने जनमानस को न केवल आध्यात्मिक रूप से समृद्ध किया, बल्कि सामाजिक समरसता, नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक एकता को भी सुदृढ़ किया।

इस प्रकार, भक्ति काव्य धारा में सगुण भक्ति विशेषकर राम काव्य और कृष्ण काव्य ने भारतीय समाज में प्रेम, आस्था और आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया और हिंदी साहित्य को समृद्ध एवं लोकमंगलकारी दिशा प्रदान की। भक्ति काव्य धारा में सगुण भक्ति काव्य (रामकाव्य व कृष्ण काव्य) का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

1. साकार ईश्वर की अवधारणा का प्रसार
2. भक्ति को सरल एवं सुलभ बनाना
3. जनसामान्य में धार्मिक चेतना का विकास
4. राम और कृष्ण के आदर्शों का प्रसार
5. नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की स्थापना
6. लोकभाषाओं (अवधी, ब्रज) का विकास
7. भक्त–भगवान के आत्मीय संबंध की स्थापना
8. प्रेम और भक्ति का समन्वय
9. सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करना
10. समाज में समरसता और सद्भाव का निर्माण
11. संगीत एवं काव्य परंपरा का विकास
12. लोकजीवन और संस्कृति का संरक्षण
13. आध्यात्मिक चेतना का विस्तार
14. साहित्य को जन–जन तक पहुँचाना
15. भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं का संरक्षण

उपसंहार– भक्ति काव्य धारा के अंतर्गत सगुण भक्ति काव्य विशेषकर राम काव्य और कृष्ण काव्य हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस धारा ने ईश्वर को साकार, सजीव और मानवीय रूप में प्रस्तुत कर भक्ति को जन–जन के जीवन से जोड़ दिया। जहाँ राम काव्य धारा ने मर्यादा, धर्म, आदर्श जीवन, कर्तव्यनिष्ठा और नैतिक मूल्यों की स्थापना की, वहीं कृष्ण काव्य धारा ने प्रेम, माधुर्य, सौंदर्य और रसात्मक अनुभूति के माध्यम से भक्ति को भावपूर्ण ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

रामभक्ति काव्य में तुलसीदास जैसे कवियों ने समाज को एक आदर्श जीवन–पथ प्रदान किया, जिसमें सत्य, करुणा, दया और धर्म का समन्वय दिखाई देता है। इसके विपरीत, कृष्णभक्ति काव्य में सूरदास, मीराबाई, रसखान आदि कवियों ने ईश्वर के साथ आत्मीय, प्रेमपूर्ण और मधुर संबंधों को स्थापित करते हुए भक्ति को एक आंतरिक अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त किया। इन दोनों धाराओं ने मिलकर भक्ति को केवल धार्मिक साधना न रहने देकर उसे जीवन–दर्शन और सांस्कृतिक चेतना का आधार बना दिया।

सगुण भक्ति काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इसने लोकभाषाओं अवधी और ब्रज को साहित्यिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया, जिससे साहित्य का लोकव्यापीकरण हुआ और सामान्य जन भी इससे सीधे जुड़ सका। साथ ही, इस धारा ने सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक एकता और मानवीय मूल्यों के प्रसार में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अतः कहा जा सकता है कि सगुण भक्ति काव्य धारा, विषेशतः राम और कृष्ण काव्य, न केवल हिंदी साहित्य के उत्कर्ष का प्रतीक है, बल्कि भारतीय समाज के आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास का भी प्रमुख आधार रही है। यह धारा आज भी अपने आदर्शों, भावों और मानवीय मूल्यों के कारण समान रूप से प्रासंगिक और प्रेरणास्पद बनी हुई है।

अध्याय – 5

वीरता का अमर गायक चन्दबरदाई और उनका काव्य

हिंदी साहित्य के प्राचीनकाल में वीरगाथा काव्य परंपरा का महत्वपूर्ण स्थान है, और इस परंपरा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि चंदबरदाई माने जाते हैं। वे न केवल एक महान कवि थे, बल्कि वीर शासक पृथ्वीराज चौहान के घनिष्ठ मित्र और राजदरबारी कवि भी थे। उनके काव्य में वीरता, शौर्य, स्वाभिमान और प्रेम का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है।

5.1 वीरता का अमर गायक चन्दबरदाई परिचय–

हिंदी साहित्य के प्राचीनकाल में वीरगाथा काव्य परंपरा के प्रमुख कवि चंदबरदाई का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे "वीरता के अमर गायक" के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना पृथ्वीराज रासो न केवल एक महान काव्य है, बल्कि मध्यकालीन भारतीय समाज, संस्कृति और राजनीति का दर्पण भी है। चंदबरदाई ने अपने काव्य के माध्यम से वीरता, शौर्य, स्वाभिमान और प्रेम का अद्‌भुत चित्रण किया।

चंदबरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था। बाद में वह अजमेर–दिल्ली के सुविख्यात हिंदू नरेश पृथ्वीराज के राजकवि और सहयोगी हो गए थे। इससे उसका अधिकांश जीवन महाराजा पृथ्वीराज चौहान के साथ दिल्ली में बीता था। चंदवरदाई का प्रसिद्ध ग्रंथ 'पृथ्वीराजरासो' है। इसकी भाषा को भाषा–शास्त्रियों ने पिंगल कहा है, जो राजस्थान में ब्रजभाषा का पर्याय है। इसलिए चंदवरदाई को हिन्दी का प्रथम महाकवि माना जाता है। 'रासो' की रचना महाराज पृथ्वीराज के युद्ध–वर्णन के लिए हुई है। इसमें उनके वीरतापूर्ण युद्धों और प्रेम–प्रसंगों का वर्णन है।

1. **जन्म एवं प्रारंभिक जीवन**– चंदबरदाई के जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं, फिर भी सामान्यतः उनका जन्म 12वीं शताब्दी में लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में माना जाता है। वे एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। बचपन से ही उनमें काव्य–रचना की प्रतिभा विद्यमान थी।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा उत्तम स्तर की थी। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और लोकभाषाओं के ज्ञाता थे। यही कारण है कि उनके काव्य में भाषा का विविध और प्रभावशाली रूप देखने को मिलता है।

2. **पृथ्वीराज चौहान से संबंध–** चंदबरदाई का जीवन पृथ्वीराज चौहान से गहराई से जुड़ा हुआ है। वे केवल दरबारी कवि ही नहीं थे, बल्कि पृथ्वीराज के घनिष्ठ मित्र, सहयोगी और सलाहकार भी थे।

कहा जाता है कि दोनों का जन्म लगभग एक ही समय हुआ था और वे बचपन से ही साथ रहे। चंदबरदाई ने पृथ्वीराज के जीवन की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना, युद्ध, विजय, प्रेम और संघर्ष को अपने काव्य में स्थान दिया।

3. **दरबारी जीवन और काव्य–रचना–** चंदबरदाई पृथ्वीराज के दरबार में राजकवि के रूप में प्रतिष्ठित थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता की वीरता और शौर्य का गुणगान किया। उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य वीरता को प्रेरित करना और राजाओं के पराक्रम का वर्णन करना था।

उनकी भाषा ओजपूर्ण, प्रभावशाली और उत्साहवर्धक है, जो सैनिकों में जोश भरने का कार्य करती थी। वे तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं के साक्षी भी थे, इसलिए उनके काव्य में यथार्थ का भी समावेश मिलता है।

4. **प्रमुख कृति पृथ्वीराज रासो–** चंदबरदाई की सर्वप्रमुख कृति "पृथ्वीराज रासो" है। इसे हिंदी साहित्य का प्रारंभिक महाकाव्य माना जाता है। इस काव्य में पृथ्वीराज और मोहम्मद गौरी के युद्ध, संयोगिता हरण, जयचंद से वैर आदि प्रमुख प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है।

हालांकि इतिहासकार इसे पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं मानते, क्योंकि इसमें कल्पना और अतिशयोक्ति का भी समावेश है, फिर भी साहित्यिक दृष्टि से इसका अत्यंत महत्व है।

5. **मोहम्मद गौरी प्रसंग और अंतिम समय–** पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद चंदबरदाई भी उनके साथ बंदी बना लिए गए। रासो के अनुसार, मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज की आंखें फोड़ दी थीं।

ऐसी स्थिति में चंदबरदाई ने एक योजना बनाई। उन्होंने पृथ्वीराज को "शब्दभेदी बाण" चलाने की कला का स्मरण कराया और संकेत के रूप में एक दोहा कहा "चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।.....

इस संकेत के आधार पर पृथ्वीराज ने गौरी को बाण से मार गिराया। इसके बाद कहा जाता है कि चंदबरदाई और पृथ्वीराज दोनों ने वीरगति प्राप्त की।

5.2 चंदबरदाई की प्रमुख कृति– 'पृथ्वीराज रासो' की कथा

पृथ्वीराज रासो हिन्दी भाषा में लिखा एक महाकाव्य है जिसमें सम्राट पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र का वर्णन किया गया है। इसके रचयिता चंदबरदाई पृथ्वीराज के बचपन के मित्र और उनके राजकवि थे और उनकी युद्ध यात्राओं के समय वीर रस की कविताओं से सेना को प्रोत्साहित भी करते थे। सं0

1165 से 1192 के बीच पृथ्वीराज चौहान का राज्य अजमेर से दिल्ली तक फैला हुआ था। पृथ्वीराजरासो ढाई हजार पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसमें 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं।

प्राचीन समय में प्रचलित प्रायः सभी छन्दों का इसमें व्यवहार हुआ है। मुख्य छन्द हैं – कवित्त (छप्पय), दूहा (दोहा)। जैसे कादम्बरी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उसका पिछला भाग बाण भट्ट राव के पुत्र ने पूरा किया है, वैसे ही पृथ्वीराजरासो के पिछले भाग का भी चंद के पुत्र जल्हण भट्ट राव द्वारा पूर्ण किया गया है।

रासो के अनुसार जब शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया, तब कुछ दिनों के उपरान्त चंदबरदाई भी वहीं गए। जाते समय कवि ने अपने पुत्र जल्हण के हाथ में रासो की पुस्तक देकर उसे पूर्ण करने का संकेत किया। जल्हण के हाथ में रासो को सौंपे जाने और उसके पूरे किए जाने का उल्लेख रासो में है –

''पुस्तक जल्हण हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज।
घुनाथनचरित हनुमंतकृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराजसुजस कवि चंद कृत चंदनंद उद्धरिय तिमि।।''

पृथ्वीराज रासो में दिए हुए संवतों का अनेक स्थानों पर ऐतिहासिक तथ्यों के साथ मेल न खाने के कारण अनेक विद्वान पृथ्वीराज के समसामयिक किसी कवि की रचना होने में संदेह करते है और उसे १६वीं शताब्दी में लिखा हुआ ग्रंथ ठहराते हैं।

इस रचना की सबसे पुरानी प्रति बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय मे मिली है, कुल ३ प्रतियाँ है। रचना के अन्त मे पृथ्वीराज द्वारा शब्द–भेदी बाण चला कर गोरी को मारने की बात भी की गयी है।

'पृथ्वीराजरासो' की कथा संक्षेप में इस प्रकार है– पृथ्वीराज जिस समय दिल्ली के सिंहासन पर था, कन्नौज के राजा जयचन्द ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया और इसी अवसर पर उसने अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी करने का संकल्प किया। राजसूय का निमंत्रण उसने दूर दूर तक के राजाओं को भेजा और पृथ्वीराज को भी उसमें सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया। पृथ्वीराज और उसके सामन्तों को यह बात खली कि बहुराजाओं के होते हुए भी कोई अन्य राजसूय यज्ञ करे और पृथ्वीराज ने जयचंद का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। जयचन्द ने फिर भी राजसूय यज्ञ करना ठानकर यज्ञ मण्डप के द्वार पर द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की एक प्रतिमा स्थापित कर दी। पृथ्वीराज स्वभावत इस घटना से अपमान समझकर क्षुब्ध हुआ। इसी बीच उसे यह भी समाचार मिला कि जयचंद की कन्या संयोगिता ने पिता के वचनों की उपेक्षा कर पृथ्वीराज को ही पति रूप में वरण करने का संकल्प किया और जयचंद ने इसपर क्रुद्ध होकर उसे अलग गंगातटवर्ती एक आवास में भिजवा दिया।

इन समाचारों से संतप्त होकर वह राजधानी के बाहर आखेट में अपना समय किसी प्रकार बिता रहा था कि उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके मंत्री कैवास ने उसकी एक करनाटी दासी से अनुचित संबंध कर लिया और एक दिन रात को उसके कक्ष में प्रविष्ट हो गया। पट्टराज्ञी को जब यह बात ज्ञात हुई, उसने पृथ्वीराज को तत्काल बुलवा भेजा और पृथ्वीराज रात को ही दो घड़ियों में राजभवन में आ गया। जब उसे उक्त दासी के कक्ष में कैंवास को दिखाया गया, उसने रात्रि के अंधकार में ही उन्हें लक्ष्य करके बाण छोड़े। पहला बाण तो चूक गया किंतु दूसरे बाण के लगते ही कैंवास धराशायी हो गया। रातों–रात दोनों को एक गड्ढे में गड़वाकर पृथ्वीराज आखेट पर चला गया, फिर दूसरे दिन राजधानी को लौटा। कैंवास की स्त्री ने चंदबरदाई से अपने मृत पति का शव दिलाने की प्रार्थना की तो चंदबरदाई ने पृथ्वीराज से यह निवेदन किया। पृथ्वीराज ने चंदबरदाई का यह अनुरोध इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह उसे अपने साथ ले जाकर कन्नौज दिखाएगा। दोनों मित्र कसकर गले मिले ओर रोए। पृथ्वीराज ने कहा कि इस अपमानपूर्ण जीवन से मरण अच्छा था और उसके कविमित्र ने उसकी इस भावना का अनुमोदन किया। कैंवास का शव लेकर उसकी विधवा सती हो गई।

चंद के साथ थवाइत्त (तांबूलपात्रवाहक) के वेश में पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण किया। साथ में सौ वीर राजपूत सामंतों सैनिकों को भी उसने ले लिया। कन्नौज पहुँचकर जयचंद के दरबार में गया। जयचंद ने उसका बहुत सत्कार किया और उससे पृथ्वीराज के वय, रूप आदि के संबंध में पूछा। चंदबरदाई ने उसका जैसा कुछ विवरण दिया, वह उसके अनुचर थवाइत्त में देखकर जयचंद कुछ सशंकित हुआ। शंका निवारणार्थ उसने कवि को पान अर्पित कराने के बहाने अन्य दासियों के साथ एक दासी को बुलाया जो पहले पृथ्वीराज की सेवा में रह चुकी थी। उसने पृथ्वीराज को थवाइत्त के वेश में देखकर सिर ढँक लिया। किंतु किसी ने कहा कि चंदबरदाई, पृथ्वीराज का अभिन्न सखा था, इसलिये दासी ने उसे देख सिर ढँक लिया और बात वहीं पर समाप्त हो गई।

दूसरे दिन प्रातः काल जब जयचंद चंदबरदाई के डेरे पर उससे मिलने गया, थवाइत्त को सिंहासन पर बैठा देखकर उसे पुनः शंका हुई। चंदबरदाई ने बहाने करके उसकी शंका का निवारण करना चाहा और थवाइत्त से उसे पान अर्पित करने का कहा। पान देते हुए थवाइत्त वेशी पृथ्वीराज ने जो वक्र दृष्टि फेंकी, उससे जयचंद को भली भाँति निश्चय हो गया कि यह स्वयं पृथ्वीराज है और उसने पृथ्वीराज का सामना डटकर करने का आदेश निकाला।

इधर पृथ्वीराज नगर की परिक्रमा के लिये निकला। जब वह गंगा में मछलियों को मोती चुगा रहा था, संयोगिता ने एक दासी को उसको ठीक–ठीक पहचानने तथा उसके पृथ्वीराज होने पर अपना (संयोगिता का) प्रेम–निवेदन करने के

लिये भेजा। दासी ने जब यह निश्चय कर लिया कि वह पृथ्वीराज ही है, उसने संयोगिता का प्रणय–निवेदन किया। पृथ्वीराज तदनंतर संयोगिता से मिला और दोनों का उस गंगातटवर्ती आवास में पाणिग्रहण हुआ। उस समय वह वहाँ से चला आया, किंतु अपने सामंतों के कहने पर वह पुनः जानकर संयोगिता का साथ लिवा लाया। जब उसने इस प्रकार संयोगिता का अपहरण किया, चंदबरदाई ने ललकार कर जयचंद से कहा कि उसका शत्रु पृथ्वीराज उसकी कन्या का वरण कर अब उससे दहेज के रूप में युद्ध माँग रहा था। परिणामत दोनों पक्षों में संघर्ष प्रारंभ हो गया।

दो दिनों के युद्ध में जब पृथ्वीराज के अनेक योद्धा मारे गए, सामंतों ने उसे युद्ध की विधा बदलने की सलाह दी। उन्होंने सुझाया कि वह संयोगिता को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और वे जयचंद की सेना को दिल्ली के मार्ग में आगे बढ़ने से रोकते रहें जब तक वह संयोगिता को लेकर दिल्ली न पहुँच जाए। पृथ्वीराज ने इस स्वीकार कर लिया और अनेक सामंतों तथा शूर वीरों योद्धाओं की बलि के अनंतर संयोगिता को लेकर दिल्ली गया। जयचंद अपनी सेना के साथ कन्नौज लौट गया।

दिल्ली पहुँचकर पृथ्वीराज संयोगिता के साथ, विलासमग्न हो गया। छह महीने तक आवास से बाहर निकला ही नहीं, जिसके परिणामस्वरूप उसके गुरु, बांधव, भृत्यों तथा लोक में उसके प्रति असंतोष उत्पन्न हो गया। प्रजा ने राजगुरु से कष्ट का निवेदन किया तो राजगुरु चंदबरदाई को लेकर संयोगिता के आवास पर गया। दोनों ने मिलकर पृथ्वीराज को गोरी के आक्रमण की सूचिका पत्रिका भेजी और संदेशवाहिका दासी से कहला भेजा 'गोरी रत्त तुअ धरा तू गोरी अनुरत्त' तब जाकर राजा की विलासनिद्रा भंग हुई और वह संयोगिता से विदा होकर युद्ध के लिये निकल पड़ा।

शहाबुद्दीन इस बार बड़ी भारी सेना लेकर आया हुआ था। पृथ्वीराज के अनेक शूर योद्धा और सामंत कन्नौज युद्ध में ही मारे जा चुके थे। परिणामतः पृथ्वीराज की सेना रणक्षेत्र से लौट पड़ी और शाहबुद्दीन विजयी हुआ। पृथ्वीराज बंदी किया गया और गजनी ले जाया गया। वहाँ पर कुछ दिनों बाद शहाबुद्दीन ने उसकी आँखें निकलवा लीं।

जब चंदबरदाई को पृथ्वीराज के कष्टों का समाचार मिला, वह गजनी अपने मित्र तथा स्वामी के उद्धार के लिये अवधूत के वेश में चल पड़ा। वह शहाबुद्दीन से मिला। वहाँ जाने का कारण पूछने पर उसने बताया कि अब वह बदरिकाश्रम जाकर तप करना चाहता था किंतु एक साध उसके जी में शेष थी, इसलिये वह अभी वहाँ नहीं गया था। उसने पृथ्वीराज के साथ जन्म ग्रहण किया था और वे बचपन में साथ साथ ही खेले कूदे थे। उसी समय पृथ्वीराज ने उससे कहा था कि वह सिंगिनी के द्वारा बिना फल के बाध से ही सात घड़ियालों को एक साथ बेध सकता था। उसका यह कौशल वह नहीं देख सका था और अब देखकर अपनी वह साध पूरी करना चाहता था। गोरी ने कहा कि वह तो अंधा किया जा चुका है। चंदबरदाई

ने कहा कि वह फिर भी वैसा संधानकौशल दिखा सकता है, उसे यह विश्वास था। शहाबुद्दीन ने उसकी यह माँग स्वीकार कर ली और तत्संबंधी सारा आयोजन कराया। चंद के प्रोत्साहित करने पर जीवन से निराश पृथ्वीराज ने भी अपना संघान कौशल दिखाने के बहाने शत्रु के वध करने का उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। पृथ्वीराज से स्वीकृति लेकर चंदबरदाई शहाबुद्दीन के पास गया और कहा कि वह लक्ष्यवेध तभी करने को तैयार हुआ है।

जब वह (शहाबुद्दीन) स्वयं अपने मुख से उसे तीन बार लक्षवेध करने का आह्वाहन करे। शहाबुद्दीन ने इसे भी स्वीकार कर लिया। शाह ने दो फर्मान दिए, फिर तीसरा उसने ज्यों ही दिया पृथ्वीराज के बाण से विद्ध होकर वह धराशायी हुआ। पृथ्वीराज का भी अंत हुआ। देवताओं ने उस पर पुष्पवृष्टि की और पृथ्वी ने म्लेच्छ गोरी से त्राण पाकर हर्ष प्रकट किया। यहाँ पर 'पृथ्वीराजरासो' की कथा समाप्त होती है।

5.3 पृथ्वीराज रासो– प्रेम व शौर्य का संगम

'पृथ्वीराज रासो' हिंदी साहित्य के आदिकाल की एक अमूल्य धरोहर है, जिसकी रचना चंदबरदाई ने की। यह काव्य न केवल एक ऐतिहासिक आख्यान प्रस्तुत करता है, बल्कि तत्कालीन समाज, संस्कृति, युद्धनीति और मानवीय भावनाओं का भी सजीव चित्रण करता है। विशेष रूप से इस ग्रंथ की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें प्रेम (श्रृंगार) और शौर्य (वीरता) का अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है।

जहाँ एक ओर पृथ्वीराज चौहान के युद्ध कौशल, पराक्रम और साहस का विस्तृत वर्णन मिलता है, वहीं दूसरी ओर उनके और संयोगिता के प्रेम प्रसंगों में कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से की गई है। इस प्रकार यह काव्य मानवीय जीवन के दो प्रमुख आयामों वीरता और प्रेम का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है।

1. रासो काव्य की परंपरा और स्वरूप– रासो काव्य परंपरा हिंदी साहित्य की प्रारंभिक परंपराओं में से एक है, जिसमें मुख्यतः राजाओं और वीरों के जीवन, युद्ध, प्रेम और गौरवगाथाओं का वर्णन किया जाता है। 'रासो' शब्द का अर्थ है गाथा या कथा।

इस परंपरा के काव्यों मे वीरता का उत्साहपूर्ण चित्रण, युद्धों का विस्तृत वर्णन, नायक–नायिका के प्रेम प्रसंग, राजपूती संस्कृति और मर्यादाएँ विशेष रूप से देखने को मिलती हैं।

'पृथ्वीराज रासो' इस परंपरा का सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसमें युद्ध और प्रेम दोनों को समान महत्त्व दिया गया है। यह केवल एक वीरगाथा नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन चित्र है।

2. शौर्य का चित्रण–

(क) वीरता और पराक्रम– पृथ्वीराज चौहान को एक आदर्श क्षत्रिय राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे न केवल युद्ध में कुशल हैं, बल्कि अपने शौर्य, धैर्य और रणनीति के कारण शत्रुओं को पराजित करते हैं। उनकी वीरता केवल शारीरिक शक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक दृढ़ता और नेतृत्व क्षमता का भी परिचायक है।

(ख) युद्ध वर्णन की सजीवता– ने युद्ध के दृश्यों को अत्यंत प्रभावशाली और सजीव शैली में प्रस्तुत किया है। रणभूमि का वातावरण, सैनिकों का उत्साह, घोड़ों की टापें, हथियारों की टंकार सब कुछ पाठक के सामने चलचित्र की भाँति उपस्थित हो जाता है।

(ग) स्वाभिमान और राष्ट्ररक्षा– पृथ्वीराज का शौर्य केवल व्यक्तिगत विजय के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र और स्वाभिमान की रक्षा के लिए है। वे विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए भारतीय अस्मिता के रक्षक के रूप में उभरते हैं।

3. प्रेम का चित्रण–

(क) पृथ्वीराज और संयोगिता का प्रेम– 'पृथ्वीराज रासो' में प्रेम का सबसे प्रमुख प्रसंग पृथ्वीराज और संयोगिता का है। यह प्रेम केवल आकर्षण नहीं, बल्कि गहरी निष्ठा, समर्पण और साहस का प्रतीक है।

(ख) स्वयंवर और हरण प्रसंग– संयोगिता के स्वयंवर का प्रसंग अत्यंत प्रसिद्ध है। जयचंद द्वारा पृथ्वीराज का अपमान करने के बावजूद संयोगिता का उन्हें ही वरमाला पहनाना और पृथ्वीराज का साहसपूर्वक उनका हरण करना यह घटना प्रेम और शौर्य दोनों का चरम उदाहरण है।

(ग) प्रेम में नारी की सक्रिय भूमिका– संयोगिता को एक सशक्त नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। वह केवल एक निष्क्रिय पात्र नहीं है, बल्कि अपने निर्णय स्वयं लेने वाली, साहसी और दृढ़ नारी है।

4. प्रेम और शौर्य का समन्वय– 'पृथ्वीराज रासो' की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता प्रेम और षौर्य का संतुलित समन्वय है। प्रेम, वीरता को प्रेरणा देता है। पृथ्वीराज अपने प्रेम की रक्षा के लिए युद्ध करते हैं। वीरता, प्रेम को सुरक्षित रखती है संयोगिता का हरण केवल प्रेम नहीं, बल्कि साहसिक कृत्य भी है। दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं,जहाँ प्रेम कोमलता देता है, वहीं शौर्य उसे शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार यह काव्य जीवन के भावनात्मक और क्रियात्मक पक्षों का सुंदर मेल प्रस्तुत करता है।

5. नायक का आदर्श स्वरूप– पृथ्वीराज को धीर–उदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके चरित्र की प्रमुख विषेशताएँ हैं–

1. अदम्य साहस और वीरता
2. प्रेम में निष्ठा और समर्पण

3. धर्म और कर्तव्य के प्रति अटूट विश्वास

4. नेतृत्व क्षमता और न्यायप्रियता

5. वे एक ऐसे आदर्श नायक हैं, जिनमें युद्ध कौशल और मानवीय संवेदनाएँ दोनों विद्यमान हैं।

6. काव्य में रसों का समन्वय–

(क) वीर रस (प्रधान रस)– पूरे काव्य में वीर रस की प्रधानता है। युद्ध, पराक्रम और साहस के वर्णन में उत्साह, गर्व और ऊर्जा का संचार होता है।

(ख) श्रृंगार रस– संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम प्रसंगों में श्रृंगार रस की कोमलता और माधुर्य दिखाई देता है।

(ग) अन्य रसों की उपस्थिति–रौद्र रस, युद्ध के उग्र दृश्य, करुण रस, वियोग और पराजय के प्रसंग, अद्‌भुत रस। इस प्रकार यह महाकाव्य बहुरसात्मक बन जाता है।

7. भाषा और शैली– 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा मिश्रित है जिसमें ब्रजभाषा, अपभ्रंश और राजस्थानी के तत्व मिलते हैं। शैली ओजपूर्ण और वीरतापूर्ण है। अलंकारों का प्रभावी प्रयोग किया गया है। वर्णनात्मकता और सजीवता इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। भाषा की यह विविधता काव्य को अधिक प्रभावशाली और लोकसुलभ बनाती है।

8. ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय– यह काव्य ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, परंतु इसमें कवि की कल्पना का भी पर्याप्त समावेश है। युद्ध और प्रेम प्रसंगों को अधिक रोचक बनाने के लिए अलंकारिक शैली अपनाई गई है कुछ घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से विवादास्पद भी मानी जाती हैं, फिर भी यह काव्य ऐतिहासिक भावभूमि को जीवंत रूप में प्रस्तुत करता है।

9. सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य– 'पृथ्वीराज रासो' में तत्कालीन समाज की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है जैसे–राजपूती मर्यादा और शौर्य परंपरा, स्त्रियों की स्थिति और सम्मान, युद्ध और वीरता का महत्व, सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष आदि। यह काव्य उस समय की जीवनशैली और मूल्यों का दर्पण है।

10. समकालीन महत्व– आज के युग में भी 'पृथ्वीराज रासो' प्रासंगिक है यह हमें साहस और आत्मसम्मान का पाठ पढ़ाता है, प्रेम में निष्ठा और समर्पण की प्रेरणा देता है और राष्ट्रभक्ति और सांस्कृतिक गौरव की भावना को सुदृढ़ करता है। 'पृथ्वीराज रासो' एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें जीवन के दो महत्वपूर्ण पक्ष प्रेम और शौर्य का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। यह काव्य केवल अतीत की वीरगाथा नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों और भावनाओं का शाश्वत दस्तावेज है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' में प्रेम और शौर्य एक ही धारा के दो ऐसे प्रवाह हैं, जो मिलकर एक महान, प्रेरणादायी और अमर काव्य का निर्माण करते हैं।

5.4 पृथ्वीराज रासो महाकाव्य की विशेषताएं

हिंदी साहित्य के आदिकाल में रचित 'पृथ्वीराज रासो' एक अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय महाकाव्य है, जिसके रचयिता चंदबरदाई माने जाते हैं। यह ग्रंथ केवल एक वीरगाथा नहीं, बल्कि मध्यकालीन भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति और मानवीय मूल्यों का सजीव दस्तावेज है। इसमें सम्राट पृथ्वीराज चौहान के जीवन, उनके युद्धों, पराक्रम, प्रेम और व्यक्तित्व का विस्तृत एवं प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

'पृथ्वीराज रासो' हिंदी साहित्य की वीरगाथा परंपरा का प्रतिनिधि ग्रंथ है, जिसमें वीर रस की प्रधानता के साथ–साथ श्रृंगार, रौद्र और करुण रसों का भी सुंदर समन्वय मिलता है। इस काव्य की विशेषता यह है कि इसमें शौर्य और प्रेम दोनों का संतुलित और प्रभावशाली चित्रण किया गया है, जो इसे अन्य काव्यों से विशिष्ट बनाता है।

भाषा की दृष्टि से यह काव्य ब्रज, अपभ्रंश और राजस्थानी के मिश्रित रूप में रचित है, जिससे यह जनसामान्य के निकट और अधिक प्रभावी बनता है। साथ ही, इसमें अलंकारों, छंदों और ओजपूर्ण शैली का सुंदर प्रयोग किया गया है, जो काव्य की कलात्मकता को और अधिक समृद्ध करता है।

यद्यपि 'पृथ्वीराज रासो' में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कवि की कल्पना का भी समावेश है, फिर भी इसका साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व अत्यंत उच्च है। यह काव्य न केवल वीरता और देशभक्ति की भावना को जागृत करता है, बल्कि प्रेम, निष्ठा और आदर्श जीवन मूल्यों की भी प्रेरणा देता है।

हिन्दी साहित्य इतिहास में 'पृथ्वीराज रासो' एक ऐसा महाकाव्य है, जो अपने बहुआयामी स्वरूप, भावसमृद्धि और शैलीगत विशेषताओं के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है। आइये समझते हैं निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से–

1. **वीरगाथात्मक महाकाव्य–** 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी साहित्य के आदिकाल का प्रमुख वीरगाथात्मक महाकाव्य है। इसमें पृथ्वीराज चौहान की वीरता, युद्ध और पराक्रम का विस्तृत वर्णन है, जो इसे वीर काव्य परंपरा का श्रेष्ठ उदाहरण बनाता है।
2. **ऐतिहासिक आधार–** यह काव्य ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, जिसमें पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के संघर्ष का वर्णन मिलता है। हालांकि इसमें कल्पना का समावेश भी है, फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्व बना रहता है।
3. **रासो काव्य परंपरा का प्रतिनिधित्व–**यह रासो परंपरा का प्रमुख ग्रंथ है, जिसमें वीरता, प्रेम, युद्ध और राजपूती संस्कृति का समन्वित चित्रण किया गया है।
4. **वीर रस की प्रधानता–**इस महाकाव्य में वीर रस प्रमुख है। युद्ध, पराक्रम, उत्साह और साहस के प्रसंगों में वीर रस की अभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावशाली ढंग से की गई है।

5. **श्रृंगार रस का समावेश–** यद्यपि वीर रस प्रधान है, फिर भी पृथ्वीराज और संयोगिता के प्रेम प्रसंगों में श्रृंगार रस का सुंदर चित्रण मिलता है, जिससे काव्य में संतुलन आता है।

6. **नायक का आदर्श चित्रण–** पृथ्वीराज को धीर–उदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वे वीर, साहसी, प्रेमी, कर्तव्यनिष्ठ और आदर्श शासक हैं।

7. **प्रेम और शौर्य का समन्वय–** इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता प्रेम और वीरता का अद्‌भुत मेल है। संयोगिता हरण प्रसंग इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

8. **युद्ध वर्णन की सजीवता–** युद्ध के दृश्य अत्यंत जीवंत और प्रभावशाली हैं घोड़ों की गति, हथियारों की ध्वनि और रणभूमि का वातावरण पाठक को रोमांचित करता है।

9. **भाषा की मिश्रित प्रकृति–** इस काव्य की भाषा ब्रजभाषा, अपभ्रंश और राजस्थानी का मिश्रण है, जो इसे लोकाभिमुख और सहज बनाती है।

10. **अलंकारों का प्रयोग–** काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सुंदर और प्रभावी प्रयोग हुआ है, जिससे काव्य की सौंदर्यवृद्धि होती है।

11. **छंदों की विविधता–** इसमें विभिन्न छंदों का प्रयोग किया गया है, जो काव्य को लयात्मक और प्रभावशाली बनाते हैं।

12. **लोकजीवन का चित्रण–** इस काव्य में तत्कालीन समाज, संस्कृति, रीति–रिवाज और जीवनशैली का सजीव चित्रण मिलता है।

13. **राजपूती संस्कृति का प्रतिबिंब–** राजपूती आन–बान–शान, मर्यादा, स्वाभिमान और वीरता का विस्तृत वर्णन इस काव्य की प्रमुख विशेषता है।

14. **नारी चरित्र का सशक्त चित्रण–** संयोगिता को एक साहसी, स्वाभिमानी और स्वतंत्र विचारों वाली नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

15. **अतिशयोक्ति का प्रयोग–** वीरता और युद्ध के वर्णनों में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है, जिससे घटनाएँ अधिक प्रभावशाली और रोमांचक बनती हैं।

16. **कथानक की रोचकता–** काव्य का कथानक अत्यंत रोचक और घटनापूर्ण है, जिसमें युद्ध, प्रेम, संघर्ष और विजय–पराजय के प्रसंग जुड़े हैं।

17. **राष्ट्रीय चेतना का संचार–** यह काव्य देशभक्ति और राष्ट्रीय गौरव की भावना को जागृत करता है, विशेषकर विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध संघर्ष के माध्यम से।

18. **कल्पना और यथार्थ का समन्वय–** इसमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कवि की कल्पना का सुंदर मिश्रण है, जिससे काव्य अधिक आकर्षक बनता है।

19. **ओजपूर्ण शैली–** काव्य की शैली ओजस्वी, उत्साहपूर्ण और प्रभावशाली है, जो वीरता के भाव को सशक्त रूप से व्यक्त करती है।

20. **नैतिक और आदर्श मूल्यों का प्रस्तुतीकरण–** इसमें धर्म, कर्तव्य, निष्ठा, प्रेम और सम्मान जैसे आदर्श मूल्यों का चित्रण किया गया है।

21. बहुरसात्मकता– हालाँकि वीर रस प्रधान है, फिर भी इसमें श्रृंगार, रौद्र, करुण और अद्‌भुत रसों का भी समावेश है।

22. जनसामान्य में लोकप्रियता– यह काव्य लोकभाषा और रोचक शैली के कारण जनसामान्य में अत्यंत लोकप्रिय रहा है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी साहित्य के आदिकाल का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली महाकाव्य है, जिसमें वीरता, प्रेम, संस्कृति और आदर्श जीवन मूल्यों का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। यह केवल एक ऐतिहासिक आख्यान नहीं, बल्कि मध्यकालीन भारतीय जीवन का व्यापक और सजीव चित्र प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है।

इस महाकाव्य की विशेषताएँ जैसे वीर रस की प्रधानता, श्रृंगार रस का संतुलित समावेश, नायक का आदर्श स्वरूप, युद्ध वर्णन की सजीवता, भाषा की मिश्रित प्रकृति, तथा अलंकारों और छंदों का प्रभावी प्रयोग इसे साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध बनाती हैं। साथ ही, इसमें राजपूती संस्कृति, सामाजिक मान्यताओं और नैतिक मूल्यों का भी सशक्त चित्रण हुआ है।

यद्यपि इस काव्य में ऐतिहासिकता के साथ कल्पना का भी समावेश है, फिर भी इसकी साहित्यिक गरिमा और सांस्कृतिक महत्ता में कोई कमी नहीं आती। यह काव्य आज भी वीरता, स्वाभिमान, प्रेम और निष्ठा जैसे मानवीय गुणों की प्रेरणा देता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' अपनी बहुआयामी विशेषताओं के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में एक अमूल्य धरोहर है, जो न केवल अतीत की गौरवगाथा को संजोए हुए है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

5.5 पृथ्वीराज रासो महाकाव्य का महत्व

हिंदी साहित्य के इतिहास में "पृथ्वीराज रासो" एक अत्यंत महत्वपूर्ण और चर्चित महाकाव्य है, जिसकी रचना चंदबरदाई द्वारा की गई मानी जाती है। यह केवल एक ऐतिहासिक आख्यान मात्र नहीं, बल्कि भारतीय वीरता, प्रेम, स्वाभिमान और सांस्कृतिक चेतना का जीवंत दस्तावेज है। इस ग्रंथ में सम्राट पृथ्वीराज चौहान के जीवन, उनके पराक्रम, युद्ध कौशल, प्रेम प्रसंग तथा अंततः उनके संघर्षपूर्ण जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है।

पृथ्वीराज रासो का महत्व केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से भी अत्यंत व्यापक है। यह महाकाव्य मध्यकालीन भारत की मानसिकता, आदर्शों और जीवन मूल्यों को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

1. ऐतिहासिक महत्व– पृथ्वीराज रासो का सबसे प्रमुख महत्व इसके

ऐतिहासिक पक्ष में निहित है। इसमें पृथ्वीराज चौहान के जीवन, उनके राज्य विस्तार, युद्धों तथा मोहम्मद गौरी के साथ उनके संघर्ष का वर्णन किया गया है। यद्यपि इतिहासकारों के अनुसार इसमें कुछ अतिशयोक्ति और कल्पना का समावेश है, फिर भी यह उस काल की ऐतिहासिक चेतना और जनमानस की धारणाओं को प्रस्तुत करता है। यह ग्रंथ राजपूत वीरता और गौरव की झलक प्रस्तुत करता है। मध्यकालीन युद्ध पद्धतियों, राजनैतिक संबंधों और सामाजिक संरचना की जानकारी देता है। उस समय के नायकों को लोकमानस में स्थापित करने का कार्य करता है।

2. वीर रस का उत्कृष्ट उदाहरण– पृथ्वीराज रासो का सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक पक्ष इसका वीर रस है। इस ग्रंथ में वीरता, साहस, युद्धकौशल और आत्मबलिदान का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज के युद्धों का वर्णन अत्यंत ओजपूर्ण और प्रेरणादायक है। युद्धभूमि के दृश्य, सैनिकों का उत्साह और शत्रुओं से संघर्ष का वर्णन पाठक में उत्साह उत्पन्न करता है। यह काव्य वीर रस की दृष्टि से हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इसकी भाषा और शैली में जो ओज और ऊर्जा है, वह इसे अन्य काव्यों से विशिष्ट बनाती है।

3. प्रेम और शौर्य का अद्भुत समन्वय– इस महाकाव्य में केवल युद्ध और वीरता ही नहीं, बल्कि प्रेम का भी अत्यंत सुंदर चित्रण किया गया है। विशेष रूप से संयोगिता और पृथ्वीराज की प्रेम कथा अत्यंत प्रसिद्ध है। संयोगिता स्वयंवर प्रसंग प्रेम और साहस का अद्भुत उदाहरण है। प्रेम के लिए संघर्ष और सामाजिक बंधनों को तोड़ने की भावना इसमें दिखाई देती है। यह काव्य दर्शाता है कि वीरता और प्रेम एक–दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार पृथ्वीराज रासो में प्रेम और शौर्य का संतुलित एवं प्रभावी समन्वय देखने को मिलता है।

4. भाषा और शैली का महत्व– इस महाकाव्य की भाषा प्रारंभिक हिंदी (अपभ्रंश से विकसित) के रूप में देखी जाती है, जिसमें ब्रज और राजस्थानी तत्वों का समावेश है। भाषा में सरलता और ओज का अद्भुत मिश्रण है। अलंकारों, उपमाओं और अतिशयोक्ति का प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। वर्णन शैली अत्यंत चित्रात्मक और भावपूर्ण है। यह काव्य हिंदी भाषा के विकास के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और भाषा के संक्रमण काल को समझने में सहायक है।

5. सांस्कृतिक महत्व– पृथ्वीराज रासो भारतीय संस्कृति और परंपराओं का जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें राजपूत संस्कृति, रीति–रिवाज, युद्ध परंपरा और सामाजिक जीवन का वर्णन मिलता है। नारी की गरिमा, सम्मान और भूमिका को विशेष स्थान दिया गया है। धर्म, कर्तव्य और मर्यादा जैसे मूल्यों को प्रमुखता दी गई है। यह ग्रंथ उस समय की सांस्कृतिक चेतना और जीवन मूल्यों का दर्पण है।

6. राष्ट्रीय चेतना का विकास– यह महाकाव्य भारतीयों में राष्ट्रीयता और

स्वाभिमान की भावना को जागृत करता है। पृथ्वीराज चौहान को एक ऐसे नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध संघर्ष करता है। यह काव्य देशभक्ति और आत्मगौरव की भावना को प्रोत्साहित करता है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय भी ऐसे काव्यों ने जनमानस को प्रेरित किया। इस प्रकार पृथ्वीराज रासो राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7. लोकपरंपरा और जनमानस पर प्रभाव– यह काव्य केवल ग्रंथ तक सीमित नहीं रहा, बल्कि लोकजीवन में भी व्यापक रूप से प्रचलित हुआ। लोकगीतों, कथाओं और नाटकों में इसकी कथाएं आज भी जीवित हैं। पृथ्वीराज और संयोगिता की कथा जनमानस में गहराई से रची–बसी है। यह काव्य लोकसंस्कृति का अभिन्न अंग बन चुका है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका प्रभाव साहित्य से कहीं अधिक व्यापक है।

8. काव्यगत विशेषताएं– पृथ्वीराज रासो में अनेक काव्यगत विशेषताएं देखने को मिलती हैं जैसे–अतिशयोक्ति का प्रयोग, वीरता को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करना। चित्रात्मक वर्णन, युद्ध, प्रकृति और भावों का सजीव चित्रण। संवाद शैली, पात्रों के बीच संवाद से कथा में जीवंतता आती है। रसों का समन्वय, मुख्यतः वीर रस, साथ ही श्रृंगार और करुण रस भी। इन विशेषताओं के कारण यह काव्य साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है।

9. आलोचनात्मक दृष्टि– यद्यपि पृथ्वीराज रासो का महत्व अत्यंत व्यापक है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएं भी हैं, ऐतिहासिक तथ्यों में असंगति और अतिशयोक्ति। विभिन्न संस्करणों में भिन्नता। कुछ प्रसंगों का काल्पनिक होना। फिर भी, इन सीमाओं के बावजूद इसका साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व कम नहीं होता।

10. आधुनिक संदर्भ में महत्व– आज के समय में भी पृथ्वीराज रासो की प्रासंगिकता बनी हुई है, यह हमें अपने इतिहास और परंपराओं से जोड़ता है। युवाओं में साहस, देशभक्ति और आत्मसम्मान की भावना जागृत करता है। साहित्यिक अध्ययन के लिए यह एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस प्रकार यह काव्य आज भी प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

समग्र रूप से देखा जाए तो "पृथ्वीराज रासो" केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य का एक अमूल्य धरोहर है। इसमें वीरता, प्रेम, त्याग, स्वाभिमान और राष्ट्रीय चेतना का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। यद्यपि इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ कमियां हैं, फिर भी यह काव्य अपने साहित्यिक वैभव, सांस्कृतिक समृद्धि और प्रेरणादायक स्वरूप के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज रासो हिंदी साहित्य की अमर कृति है, जो न केवल अतीत का गौरवगान करती है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बनी रहती है।

5.6 पृथ्वीराज रासो के पदमावत समय से चयनित छन्द (छन्द संख्या 1– 10)

प्रस्तुत अध्याय में 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' से कुछ महत्वपूर्ण छंदों का चयन किया गया है, जो कथा, काव्य–सौंदर्य और वीरता के अद्भुत समन्वय को प्रस्तुत करते हैं। इन छंदों के माध्यम से कवि चंदबरदाई ने न केवल प्रेम और सौंदर्य का चित्रण किया है, बल्कि शौर्य, साहस और युद्ध–नीति का भी सजीव एवं प्रभावशाली वर्णन किया है।

इस प्रसंग में समुद्र–शिखर दुर्ग के गढ़पति की राजकुमारी पद्मावती का वर्णन अत्यंत सौंदर्यपूर्ण एवं आकर्षक रूप में किया गया है। पद्मावती अनुपम सुंदरी है, जिसकी कीर्ति दूर–दूर तक फैली हुई है। एक तोते (शुक) के माध्यम से उसे पृथ्वीराज चौहान के अद्वितीय रूप, शौर्य और पराक्रम का परिचय मिलता है। इस वर्णन को सुनकर उसके मन में पृथ्वीराज के प्रति प्रेम और अनुराग उत्पन्न हो जाता है।

जब उसके पिता उसका विवाह कुमाऊँ के राजा कुमोद्मणि के साथ करना चाहते हैं, तब पद्मावती उस तोते को संदेशवाहक बनाकर पृथ्वीराज के पास भेजती है। पृथ्वीराज उस संदेश को पाकर पद्मावती से विवाह करने का निश्चय करते हैं और उसके स्वयंवर के लिए प्रस्थान करते हैं।

इसी बीच पद्मावती शिव मंदिर में पूजा के लिए आती है, जहाँ पृथ्वीराज उसे रुक्मिणी हरण की भाँति अपने साथ ले जाते हैं और घोड़े पर बिठाकर दिल्ली की ओर प्रस्थान करते हैं। इस घटना के कारण युद्ध की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें पद्मावती के पिता की सेना पराजित हो जाती है।

उधर, इस अवसर का लाभ उठाकर शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज पर आक्रमण करता है, जिससे भीषण युद्ध होता है। अंततः पृथ्वीराज अपनी वीरता का परिचय देते हुए गौरी को पराजित कर बंदी बना लेते हैं। इसके पश्चात वे दिल्ली लौटकर शुभ मुहूर्त में पद्मावती के साथ विवाह संपन्न करते हैं।

इस प्रकार, पद्मावती समय के ये छंद प्रेम, वीरता, कर्तव्य और साहस का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करते हैं। इनका अध्ययन विद्यार्थियों को न केवल काव्यगत सौंदर्य का अनुभव कराता है, बल्कि मध्यकालीन वीरगाथा परंपरा और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से भी परिचित कराता है।

(पदमावती समयः व्याख्या सहित)

छन्द–1

पूरब दिसि गढ गढनपति, समुद–सिशर अति द्रुग्ग।
तहँ सु विजय सुर–राजपति, जादू कुलह अभग्ग।।

कठिन–शब्दार्थ– पूरब दिसि– पूर्व दिशा में। गढ़नपति– गढ़ों का स्वामी, श्रेष्ठ दुर्ग या गढ़। समुद शिखर समुद्रशिखर, दुर्ग का नाम। यति– अत्यन्त विशाल। दुग्रा – दुर्ग। तहँ– वहाँ। सु – श्रेष्ठ। सुरराजपति– इंद्र। कूलह– यादव वंश का, यदुकुल का। अभग्ग– अभग्न, अभेद्य।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश कवि चन्दबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य के 'पद्मावती समय' से उद्धत है। इसमें पद्मावती के पिता राजा विजयपाल के समुद्रशिखर नामक दुर्ग, उनकी सेना, वैभव तथा उनकी सुन्दर रानी का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– वर्णन करता है कि पूर्व दिशा में स्थित दुर्गों में समुद्रशिखर नामक दुर्ग अत्यन्त विशाल, दुर्गम और श्रेष्ठ था। वहाँ पदुवंश के महान राजा विजयपाल इन्द्र के समान वैभवशाली होकर निश्चिन्त रूप से राज्य करते थे।

विशेषताएँ–

1. इस पद्यांश में राजा विजयपाल के दुर्ग, सेना, वैभव और पारिवारिक गौरव का विस्तृत वर्णन किया गया है।
2. भाषा प्रारम्भिक हिन्दी (अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित) का रूप है।
3. इसमें अतिशयोक्ति अलंकार (सेना और धन का बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन), अनुप्रास अलंकार (ध्वनि–सौन्दर्य), तथा यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. वर्णन में वीर रस और राजसी वैभव का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

छन्द–2

धुनि निसाँन बहुसाद नाद सुर पंच बजत दिन।
दस हजार हय–चढत हेम–नग जटित साज तिन।।
गज असंश गजपतिय मुहर सेना तिय सक्खह।
इक नायक, कर धरि पिनाक, घर–भर रज रक्खह।
दस पुत्र पुत्रिय इक्क सम, रथ सुरंग उम्मर–उमर।
भंडार लछिय अगनित पदम, सो पद्मसेन कूँवर सुघर।।

कठिन–शब्दार्थ– धुनि –ध्वनि। निसान– नगाड़े। नाद–गूंज, शब्द। सुरपंच – पंचम स्वर (मृदंग, तंत्री, मुरली, ताल, वेला या झाँझ और दुंदुभि आदि वाद्यों के स्वर)। हूय् चंढत–घुड़सवार। हेम– स्वर्ण। नग–रत्न। जटित–जड़े हुए। साज–घोड़ों की सज्जा। तिन–उसकी। करधरी पिनाक–हाथ में धनुष धारण करके। पुत्र–पुत्रिय– समसमान गुणों से युक्त पुत्र–पुत्र, सुरंग – सुंदर। अम्मर –आकाश डमर – फहराती थी। लछिय– लक्ष्मी। अगनित– असंख्य। पदम– संख्या विशेष (दस नील से आगे) सुघर – सुन्दर।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश कवि चन्दबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य के 'पद्मावती समय' से उद्धत है। इसमें पद्मावती के पिता राजा विजयपाल के समुद्रशिखर

नामक दुर्ग, उनकी सेना, वैभव तथा उनकी सुन्दर रानी का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– वर्णन करता है कि पूर्व दिशा में स्थित दुर्गों में समुद्रशिखर नामक दुर्ग अत्यन्त विशाल, दुर्गम और श्रेष्ठ था। वहाँ पदुवंश के महान राजा विजयपाल इन्द्र के समान वैभवशाली होकर निश्चिन्त रूप से राज्य करते थे। उनके राज्य में नगाड़ों और रणभेरियों की भयंकर ध्वनि निरन्तर गूँजती रहती थी, जो वीरता और युद्ध–सज्जा का प्रतीक थी।

उनकी सेना अत्यन्त विशाल और सुसज्जित थी। लगभग दस हजार घुड़सवार सैनिक थे, जिनके वस्त्र स्वर्ण और रत्नों से अलंकृत थे। असंख्य हाथी और उन पर सवार वीर सैनिक सेना की शोभा बढ़ाते थे। हाथियों की संख्या भी बहुत अधिक (अतिशयोक्ति रूप में 'तीन शंख') बताई गई है।

राजा स्वयं सेना का नेतृत्व करते थे और उनके हाथ में भगवान शिव के पिनाक के समान शक्तिशाली धनुष रहता था। वे राजपूती मर्यादा और शौर्य के प्रतीक थे तथा समस्त राजाओं की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानते थे।

राजा के दस पुत्र और एक पुत्री थी, जो रूप और गुण में समान रूप से उत्कृष्ट थे। उनके रथों पर लगी पताकाएँ आकाश में लहराती थीं। उनके खजाने में अपार धन–सम्पदा भरी हुई थी। उनकी रानी 'पद्मसेन कँवर' अत्यन्त सुन्दर थी।

विशेषताएँ–

1. इस पद्यांश में राजा विजयपाल के दुर्ग, सेना, वैभव और पारिवारिक गौरव का विस्तृत वर्णन किया गया है।
2. भाषा प्रारम्भिक हिन्दी (अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित) का रूप है।
3. इसमें अतिशयोक्ति अलंकार (सेना और धन का बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन), अनुप्रास अलंकार (ध्वनि–सौन्दर्य), तथा यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. वर्णन में वीर रस और राजसी वैभव का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

छन्द–3

मनहुँ कला ससभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल वैस, ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल–सिग्र, भ्रमर, बेनु, खंजन, म्रिग लुट्टिय।
हीर, कीर, अरु बिंब मोति, नश सिश अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचौ सँचिय
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुँ, काम–कामिनि रचिय।।

कठिन–शब्दार्थ–कला सोलह–चन्द्रमा की सोलह कलाओं से। सो– वह। बन्निय–बनी थी। बाल बेस–बाल। वय–बचपन। ससिता शिग्युता–रोशवावस्था। ससि–चन्द्रमा। ता– उसके।अम्रित–अमृत। पिन्त्रिय–पीया है, पान किया है। विगसि

–कमल, ब्रिग– मुख विकसित कमल की श्रेणी को भी लज्जित करता है। बेनु –वंशी। मृग–हरिण। लुट्टिय–लूट लिया है. श्रीहीन कर दिया है। छप्पति– छिपाती है। हरि सिंह। बिह बनाय–विधि ने बनाकर। संवै सचिय–संचि में डालकर। मनाई –मानो। काम–कामिनी– कामदेव की पत्नी, रति। रचिय–रचना की है।

प्रसंग–प्रस्तुत पद्यांश कवि चन्दबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य के 'पद्मावती समय' से उद्धत है। इसमें कवि ने परम्परागत उपमानों के माध्यम से पद्मावती के अद्वितीय सौन्दर्य का अत्यन्त कलात्मक चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि वर्णन करता है कि राजा विजयपाल की रानी पद्मसेन कुँवर से उत्पन्न पुत्री पद्मावती अत्यन्त रूपवती है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमा की सोलहों कलाओं से निर्मित स्वयं चन्द्रकला ही हो। अभी वह बाल्यावस्था में है, फिर भी उसके पवित्र और शीतल रूप को देखकर ऐसा लगता है मानो चन्द्रमा ने उसी से अमृत प्राप्त किया हो। अर्थात् उसके दर्शन से नेत्रों को वही शीतलता मिलती है जो चन्द्रमा को देखकर मिलती है।

कवि आगे कहता है कि पद्मावती के मुख, नेत्र, हाथ और चरणों का सौन्दर्य खिले हुए कमलों को मात देता है। उसके काले केशों ने मानो भ्रमरों की शोभा छीन ली हो। उसकी मधुर वाणी ने बाँसुरी के मधुर स्वर को भी फीका कर दिया है। उसके चंचल नेत्र खंजन पक्षी की चंचलता को पराजित करते हैं तथा उनकी विशालता और कोमलता मृग–नेत्रों की शोभा को भी पीछे छोड़ देती है।

अर्थात् उसके प्रत्येक अंग–प्रत्यंग की सुन्दरता इतनी अद्वितीय है कि परम्परागत सभी उपमान उसके सामने फीके पड़ जाते हैं।

कवि उसके रूप का और भी वर्णन करते हुए कहता है कि उसका गौर वर्ण शरीर हीरे के समान चमकता है। उसकी नासिका तोते की चोंच के समान सुडौल है, अधर बिम्बाफल के समान लाल और आकर्षक हैं। उसकी उँगलियों के नाखून मोतियों के समान उज्ज्वल और सुन्दर हैं तथा उसके केश सर्प को भी लज्जित कर देते हैं।

उसकी चाल इतनी मनोहर है कि हाथी, हंस और सिंह भी लज्जित होकर छिप जाते हैं। उसकी चाल में हाथी की मस्ती, सिंह का गर्व और हंस की मंथरता समाहित है। उसका सम्पूर्ण शरीर इतना सुडौल और सन्तुलित है मानो विधाता ने उसे किसी साँचे में ढालकर बनाया हो, या जैसे ब्रह्मा ने इन्द्राणी शची का सौन्दर्य लेकर उसका निर्माण किया हो।

अन्ततः कवि कहता है कि पद्मावती पद्मिनी नारी के समान अत्यन्त सुन्दर है। उसके रूप को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो रति (कामदेव की पत्नी) का ही दूसरा रूप सामने उपस्थित हो।

विशेषताएँ–

1. कवि ने पद्मावती के अलौकिक सौन्दर्य का अत्यधिक प्रभावशाली चित्रण किया है।

2. सौन्दर्य–वर्णन में परम्परागत उपमानों का व्यापक प्रयोग किया गया है।
3. इसमें अतिशयोक्ति, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. यह वर्णन नख–शिख वर्णन परम्परा के अनुसार किया गया है।
5. पद्यांश में श्रृंगार रस की प्रधानता है।

छन्द–4

सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौंसठि कला सुजान।
जानि चतुर्दस अंग खट, रति बसंत परमान।।

कठिन शब्दार्थ– सामुद्रिक– हस्त, पद तथा मुखाकृति देखकर शुभ–अशुभ बताने की विद्या। लच्छन– लक्षण। सकल– समस्त। चौसठ कला–चौसठ कलाएँ। सुजान– भली–भाँति जानने वाली, बुद्धिमती। चतुर्दश– चौदह विद्याएँ। शट–छह। अंग–वेद के अंग। रति बसन्त परमान– रति और वसंत के समान (अत्यन्त सुंदर)। परमार– प्रमाण।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश कवि चंदबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' से उद्धत है। इसमें कवि ने सामुद्रिक शास्त्र के आधार पर पद्मावती के शरीर के सौंदर्य और गुणों का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि पद्मावती के शरीर के सभी अंगों में सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। वह चौसठों कलाओं में निपुण थी। साथ ही वह चौदहों विद्याओं, छहों दर्शनों तथा वेद के छह अंगों का ज्ञान रखने वाली थी। उसका सौंदर्य इतना मनोहर था कि वह कामदेव की पत्नी रति और वसंत ऋतु के समान आकर्षक प्रतीत होती थी।

विशेषताएं–

1. कवि ने पद्मावती को सर्वगुण सम्पन्न एवं अत्यंत सुंदर नारी के रूप में चित्रित किया है।
2. इससे कवि चंदबरदाई के सामुद्रिक शास्त्र, कलाओं एवं विद्याओं के व्यापक ज्ञान का परिचय मिलता है।
3. इस पद में अतिशयोक्ति, अनुप्रास और उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. शट अंग से अभिप्राय वेद के छह अंगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छंद, ज्योतिष) तथा शड्दर्शन (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त) से है।

छन्द–5

सशियन संग खेलत फिरत, महलनि बग्ग निवास।
कीर इक्क दिष्शिय नयन, तब मन भयौ हुलास।।

कठिन शब्दार्थ– सवियन संग–सखियों के साथ। महलनि–महलों में। बग्ग–बाग,उद्यान। कीर–तोता। इक्क–एक। दिश्शिय–दिखाई दिया। हुलास–प्रसन्नता, आनंद।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश कवि चंदबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के

'पद्मावती समय' शीर्षक से लिया गया है। इसमें कवि ने पद्मावती की क्रीड़ाओं का मनोहर वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि पद्मावती की क्रीड़ाओं का सुंदर चित्र प्रस्तुत करते हुए कहता है कि वह अपनी सखियों के साथ महलों और बागों में खेलती–कूदती रहती थी। एक दिन खेलते समय उसे एक तोता दिखाई दिया। उस तोते को देखकर उसके मन में अत्यंत प्रसन्नता और उत्साह उत्पन्न हुआ।

विशेषताएं–

1. कवि ने पद्मावती की बालसुलभ क्रीड़ाओं और उसके स्वाभाविक आनंद का चित्रण किया है।
2. इस पद में प्रकृति (बाग–उद्यान) का सुंदर और सजीव संकेत मिलता है।
3. पद में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
4. प्रारंभिक हिंदी पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है, जिसके कारण 'ख' के स्थान पर 'श' का प्रयोग मिलता है, जैसे– दिष्शिय

छन्द–6

मन अति भयौ हुलास, बिगसि जनु कोक किरन–रबि।
अरुन अधर तिय सुघर, बिंबफल जानि कीर छबि।।
यह चाहत चश चकित, उह जु तक्किय झरंप्पि झर।
चंचु चहुट्टिय लोभ, लियो तब गहित अप्प कर।।
हरशत अनंद मन मँह हुलस, लै जु महल भीतर गइय।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रश्शत भइय।।

कठिन शब्दार्थ– हुलास– प्रसन्नता, आनंद। बिगसि– खिला हुआ, प्रसन्न हुआ। चश–नेत्र। जनुमानो–मानो, जैसे। कोक–चकवा। रवि–सूर्य। अरुन–लाल रंग का। तिय–नारी। सुधर–सुन्दर। बिंब फल–बिंबाफल (अंदर से लाल रंग का फल)। चक्रित–चकित, आश्चर्ययुक्त। उहजु– वह भी जैसे। तक्किय–देखा। झरप्पि– झपटकर। चंच– चोंच। गहित– ग्रहण किया, पकड़ लिया। अप्प कर–अपने हाथ से। अनंद– आनंद। महि– में। ले– लेकर। रश्शत भइय– रख दिया।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश कवि चंदबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' से उद्धत है। इसमें कवि ने पद्मावती के सौंदर्य एवं उसकी क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। यहाँ वाटिका में घूमती हुई पद्मावती द्वारा तोते को पकड़ने की घटना का चित्रण है।

व्याख्या– कवि कहता है कि तोते को देखकर पद्मावती अत्यंत प्रसन्न हो उठी। उसकी प्रसन्नता ऐसी प्रतीत होती थी मानो रातभर अपनी संगिनी चकवी से बिछुड़ा हुआ चकवा सूर्य के उदय होते ही उसे मिलने की आशा से प्रसन्न हो गया हो।

पद्मावती के लाल–लाल सुंदर होंठों को देखकर तोते को उनमें बिंबाफल का भ्रम हो गया। वह उन्हें फल समझकर पाने के लिए झपट पड़ा और अपनी चोंच से उन्हें पकड़ने का प्रयास करने लगा। पद्मावती यह देखकर आश्चर्यचकित रह गई। उसी समय उसने चतुराई से तोते को अपने हाथों से पकड़ लिया।

तोते को पकड़कर वह अत्यंत आनंदित हुई और उसे अपने महल में ले गई। वहाँ उसने उसे रत्नों और मणियों से जड़े हुए पिंजरे में सुरक्षित रख दिया।

विशेषताएं–

1. पद्यांश में पद्मावती के सुंदर लाल होंठों और तोते द्वारा उनमें बिंबाफल का भ्रम होने का मनोहर चित्रण किया गया है।
2. चक्रवाक–चकवी के उदाहरण द्वारा भावों को अत्यंत प्रभावशाली बनाया गया है।
3. इसमें उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान (भ्रम), तथा अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. वर्णन शैली चित्रात्मक एवं सजीव है, जिससे दृश्य आँखों के सामने साकार हो उठता है।

छन्द–7

सवालण उत्तर सयल। कमऊँ गढ़ दूर्ग।।
राजत राज कुमोद्मनि। हय गय त्रिब्ब अभंग।।

छन्द–8

नारिकेल फल परिटि दुज। चौक पूरी मनि मुति।।
दई जु कन्यसा वचन बर। अति अनंद करि जुतिं।।

छन्द–9

पदमावति विलिपि बर बाल बेलि। कही कीर सोबात तब हो अकेली।।
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेस। बर चाहवान जु आनो नरेस।।

कठिन–शब्दार्थ – सवालश्य–सपादलक्ष। सयल– शैल, पर्वत। दूरंग– दुर्गम। राजत– सुशोभित होता है। हय– घोड़े। गय गंज,–हाथी। ट्रिब्ब – द्रव्य अभंग–परिपूर्ण। नारिकेल – नारियल, परठि–स्थापित किया। दुज–द्विज। मनि–मुक्ति–मणि–मोतियों से। जुत्ति–युक्ति, विधिपूर्वक। झट–शीघ्र। बालबेली–नवयुवती, अर्थविकसित लता। विलशि– व्याकुलतापूर्वक। आनो– ले आओ। **प्रसंग–** प्रस्तुत पद्यांश चन्दबरदायी द्वारा रचित ज रासों के पद्मावती समय से उद्धृत है। इसमें पद्मावती के लिए योग्य वर खोजे जाने की घोषणा के बाद कवि ने राजपुरोहित द्वारा पद्मावती के लिए वर खोजे जाने के प्रयत्न के बारे में वर्णन किया है। उसकी कुमोदमणि के साथ सगाई की गई किन्तु पद्मावती के मन में कुछ और ही था।

व्याख्या– कवि कहता है कि सपादलक्ष के उत्तर में दुर्गम कुमायूँ गढ़ था। उसमें कुमोदमणि राजा सुशोभित होता था। उसके पास घोड़े, हाथी आदि अपार सम्पदा थी।

ब्राह्मण ने मोती–मणियों से चौक पूरकर, उस पर नारियल स्थापित किया ओर आन्दपूर्ण विधि–विधान से राजा से प्रद्मावती की सगाई तय कर दी।

नई लता के समान विकसित युवती पद्मावती ने दुःखी होकर तोते से कहा कि तुम शीघ्र दिल्ली जाकर श्रेष्ठ प्रतापी राजा पृथ्वीराज चौहान को ले आओ।

विशेषताएं–

1. कवि ने पद्मावती के पृथ्वीराज के प्रति अनुराग को व्यक्त किया है।
2. यहाँ उपमा व अनुप्रास अलंकार है।
3. काव्य–परम्परा में तोता, कौआ, भौरा आदि को दूत बनाकर भेजने की परम्परा रही है। उसी परम्पस के अन्तर्गत पद्मावती ने तोता द्वारा पृथ्वीराज चौहान को संदेश भेजा है।

छन्द–10

आँनि तुम्ह चाहुवांन बर। अरु काहि इहै संदेश।।
सांस सरीरहि जो रहे। प्रिय पृथिराज नरेस।।

कठिन–शब्दार्थ – अरु– और। कहि–कहकर। इहे –वायु का आधार लेकर। अट्ठ जाम–आठ याम। कग्गर समीरहि–वायु से। प्रधिराज– पृथ्वीराज। सुक– तोता। पत्री– पत्र। गगनि– आकाश में। गहि बाव–वह पत्र। बुलि बंचिय– खोलकर बाँचा, पढ़ा।

प्रसंग–प्रस्तुत पद्यांश चन्दवरदायी के पृथ्वीराज रासो महाकाव्य के पद्मावती समय से उधृत है। पद्मावती की कुमायूँ के राजा से सगाई कर दी गई, किन्तु दुःखी पद्मावती ने तोते से कहा कि तू शीघ्र पृथ्वीराज चौहान को लेकर आ। इसी क्रम में यह वर्णन है।

व्याख्या – पद्मावती ने कहा कि हे तोते! तुम पृथ्वीराज को यहाँ ले आओ और उनसे मेरा यह सन्देश कहो कि जब तक मेरे शरीर में श्वास– समीर रहेगा तब तक मेरे लिए राजा पृथ्वीराज ही प्रिय रहेगा। दूसरे शब्दों में. मेरे पति पृथ्वीराज ही रहेंगे। इस प्रकार पद्मावती का पत्र लेकर तोता वहाँ से चला और हवा के सहारे वह आकाश में उड़ने लगा। पृथ्वीराज जहाँ विराजमान थे, वहाँ वह आठ याम या प्रहर में पहुँच गया। उसने पद्मावती का पुत्र पृथ्वीराज के हाथों में दे दिया। पृथ्वीराज ने उस कागज या पत्र को खोलकर पढ़ा। वह तोते को देखकर मन ही मन हँसा और फिर उसने पद्मावती के पास चलने की तैयारी की।

विशेषताएं –

1. पद्मावती ने राजा पृथ्वीराज के पास संदेश तोते के माध्यम से पहुंचाया।
2. हाँ रूपक व अनुप्रास अलंकार हैं।
3. नाटकीयतायुक्त शैली है।

उपरोक्त सभी पदों के समग्र अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' में कवि चंदबरदाई ने पद्मावती के अनुपम सौंदर्य, उसके वैभवपूर्ण परिवेश तथा उसके हृदय में बसे प्रेमभाव का अत्यंत सजीव और कलात्मक चित्रण किया है। प्रारंभ में दुर्ग, राज्य और समृद्धि का भव्य वर्णन मिलता है, जो तत्कालीन राजसी वैभव को प्रकट करता है। इसके बाद पद्मावती के रूप–सौंदर्य को चन्द्रमा, कमल आदि उपमानों के माध्यम से अलंकृत शैली में प्रस्तुत किया गया है।

आगे चलकर कथा में मोड़ आता है, जहाँ पद्मावती की सगाई कुमोदमणि से कर दी जाती है, किन्तु उसका हृदय पृथ्वीराज चौहान के प्रति समर्पित रहता है। यह उसके दृढ़ प्रेम, स्वाभिमान और आंतरिक भावनाओं को उजागर करता है। अंततः वह तोते के माध्यम से अपना संदेश पृथ्वीराज तक पहुँचाती है, जिससे दूत–परंपरा और नाटकीयता का सुंदर समावेश होता है। पृथ्वीराज का पत्र पढ़कर प्रसन्न होना और तत्परता से प्रस्थान की तैयारी करना इस प्रेम कथा को गति और रोचकता प्रदान करता है।

इस प्रकार इन पदों में श्रृंगार और वीर रस, उपमा, रूपक एवं अनुप्रास अलंकार, तथा मध्यकालीन काव्य परंपराओं का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। संपूर्ण वर्णन न केवल प्रेम की पवित्रता और दृढ़ता को दर्शाता है, बल्कि उस समय के सामाजिक रीति–रिवाज, सांस्कृतिक मूल्यों और काव्य–शिल्प की उत्कृष्टता को भी उजागर करता है।

अध्याय – 6

समाज सुधारक कबीर और उनका काव्य

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में कबीर का व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यंत विशिष्ट एवं प्रभावशाली है। वे केवल एक महान संत–कवि ही नहीं, बल्कि एक क्रांतिकारी समाज सुधारक भी थे, जिन्होंने अपने युग की जड़ताओं, अंधविश्वासों और सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध निर्भीक स्वर उठाया। मध्यकालीन भारतीय समाज धर्म, जाति, पंथ और बाह्य आडम्बरों में बँटा हुआ थाय ऐसे समय में कबीर ने अपने सहज, स्पष्ट और प्रखर वचनों के माध्यम से मानवता, समानता और सच्चे आध्यात्मिक जीवन का संदेश दिया।

कबीर का काव्य उनकी अनुभूति का प्रत्यक्ष स्वरूप है, जिसमें जीवन की सच्चाइयों, सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखंडों पर तीखा प्रहार मिलता है। उन्होंने निर्गुण भक्ति का समर्थन करते हुए ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक और सुलभ बताया तथा गुरु की महिमा को विशेष स्थान दिया। उनके दोहे, साखी और सबद न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक चेतना के सशक्त माध्यम भी हैं।

समाज सुधारक के रूप में कबीर ने जाति–पांति, ऊँच–नीच, छुआछूत और धार्मिक कट्टरता का विरोध किया तथा मानव–मानव के बीच प्रेम, भाईचारे और समता की भावना को स्थापित करने का प्रयास किया। उनका काव्य सरल भाषा, लोकधर्मी शैली और गहरी अनुभूति से युक्त है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था।

अतः "समाज सुधारक कबीर और उनका काव्य" नामक इस अध्याय में कबीर के व्यक्तित्व, उनके सामाजिक विचारों तथा काव्यगत विशेषताओं का सम्यक अध्ययन किया जाएगा, जिससे उनके युगीन महत्व और वर्तमान संदर्भों में उनकी उपयोगिता को समझा जा सके।

6.1 कबीर का जीवन परिचय

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तकालीन युग में ज्ञानाश्रयी–निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। उनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्त आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया।

कबीर का जन्म–

संत कबीर दास का जन्म कब हुआ, यह ठीक–ठीक ज्ञात नहीं है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म 14वीं–15वीं शताब्दी में काशी (वर्तमान वाराणसी) में हुआ था।

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरशें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहं भानु प्रगट भए।।

कबीर के जन्म के बारे में कई किवदंतियाँ हैं, जिनमें एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार उनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसने उन्हें जन्म के तुरंत बाद ही नदी में बहा दिया था। कबीर ने खुद को जुलाहे के रुप में पेश किया है–

"जाति जुलाहा नाम कबीरा
बनि बनि फिरो उदासी।

नीरू और नीमा नामक एक जुलाहा दंपति को वे नदी किनारे मिले, जिन्होंने उनका पालन–पोषण किया। कबीर जी ने कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी और न ही वे बुनकरी के काम में पूरी तरह प्रशिक्षित थे। उनकी कविताओं में बुनाई से जुड़े कई उदाहरण मिलते हैं, लेकिन उनका झुकाव इस पेशे से अधिक सत्य और आत्मिक ज्ञान की खोज की ओर था। उनका पूरा जीवन एक आध्यात्मिक खोज रहा, जिसकी झलक उनकी रचनाओं में साफ दिखाई देती है।

संत स्वामी रामानंद से प्राप्त की शिक्षा–

कबीर के प्रथम गुरु का नाम 'संत स्वामी रामानंद' था। मुफ्ती गुलाम सरवर लाहोरी की पुस्तक 'खजीनत अल–असफिया' से यह जानकारी मिलती है कि सूफी संत शेख तक्की भी कबीर के गुरु थे। इसी कारण कबीर की शिक्षा और उनके विचारों में सूफी परंपरा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

वैवाहिक जीवन–

ऐसा माना जाता है कि कबीर वाराणसी के 'कबीर चौरा' इलाके में पले–बढ़े थे। बाद में उनका विवाह 'लोई' नामक महिला से हुआ था, जिनसे उन्हें 'कमाल' और 'कमाली' नामक दो संतानें प्राप्त हुईं। कुछ स्रोत यह भी मानते हैं कि उन्होंने विवाह नहीं किया था, लेकिन इन बातों की पुष्टि के लिए विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

कबीरदास की साहित्यिक रचनाएं–

कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी से स्वयं ही कहा है "मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ"। इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपनी रचनाएँ स्वयं नहीं लिखीं। इसके बावजूद, उनके वचनों का संकलन कई प्रमुख ग्रंथों

में मिलता है। ऐसा माना जाता है कि बाद में उनके शिष्यों ने उनके वचनों को संकलित कर 'बीजक' नामक ग्रंथ की रचना की।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी स्पष्ट कहा है कि, "कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था, कविता तो उन्हें संत–मेंत में मिली वस्तु थी, उनका लक्ष्य लोकहित था।" भले ही कबीर की कविताएं शुरू में मौखिक रूप से प्रचलित रहीं, फिर भी वे आज तक अपनी सरल भाषा और गहन आध्यात्मिक भावों के कारण पहचानी जाती हैं। उनकी की कुछ प्रसिद्ध रचनाएं इस प्रकार हैं–

रचना	**अर्थ**	**प्रयुक्त छंद**	**भाषा**
साखी	साक्षी	दोहा	राजस्थानी,पंजाबी मिली खड़ी बोली
सबद	शब्द	गेय पद	ब्रजभाषा और पूर्वी बोली
रमैनी	रामायण	चौपाई और दोहा	ब्रजभाषा और पूर्वी बोली

कबीर की भाषा शैली–

संत कबीर दास जी को कई भाषाओं का ज्ञान था वे साधु–संतों के साथ कई जगह भ्रमण पर जाते रहते थे इसलिए उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान हो गया था। इसके साथ ही कबीरदास अपने विचारो और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए स्थानीय भाषा के शब्दों का इस्तेमाल करते थे। जिसे स्थानीय लोग उनकी वचनों को भली भांति समझ जाते थे। उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' भी कहा जाता है। यह भाषा मध्यकालीन उत्तर भारत की आम बोली का मिश्रण थी।

कबीरदास की मृत्यु– कबीर ने अपने जीवन में कई स्थानों की यात्रा की। वहीं जीवन के अंतिम समय में वे उत्तर प्रदेश के मगहर नगर चले गए, जहां अधिकांश विद्वानों के अनुसार लगभग 1575 ईस्वी में उनका निधन हुआ। मगहर में कबीर की समाधि और मजार दोनों स्थित हैं। आज यह स्थान दुनिया भर के कबीरपंथियों के लिए श्रद्धा का प्रमुख केंद्र माना जाता है।

6.2 कबीर का व्यक्तित्व

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में संत काव्य धारा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस धारा के कवियों ने निर्गुण भक्ति, आंतरिक साधना, मानवतावाद तथा सामाजिक समता का व्यापक संदेश दिया। संत काव्य धारा ने मध्यकालीन समाज में व्याप्त अंधविश्वास, बाह्याडम्बर और सामाजिक विषमताओं का सशक्त विरोध किया।

इस धारा के प्रमुख कवियों में कबीर का स्थान सर्वोपरि है। कबीर केवल एक संत कवि ही नहीं, बल्कि एक महान समाज–सुधारक, दार्शनिक और क्रांतिकारी विचारक भी थे। संत काव्य धारा के आलोक में उनका व्यक्तित्व अत्यंत व्यापक, युगीन चेतना से युक्त और लोकमंगलकारी प्रतीत होता है।

1. संत काव्य धारा का स्वरूप और कबीर– संत काव्य धारा का मूल आधार निर्गुण भक्ति है, जिसमें ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान माना गया है। इस धारा के कवि बाह्य आडम्बरों, मूर्ति–पूजा और कर्मकांडों का विरोध करते हैं तथा आंतरिक साधना को महत्व देते हैं। कबीर इस धारा के प्रमुख स्तंभ हैं। उनके व्यक्तित्व में संत परंपरा की सभी विशेषताएँ सादगी, स्पष्टवादिता, आध्यात्मिकता और सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं–

"मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।"

इस पद में कबीर ने ईश्वर की सर्वव्यापकता और निराकार स्वरूप को अत्यंत प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है।

2. निर्गुण भक्ति और कबीर का व्यक्तित्व– कबीर निर्गुण भक्ति के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने ईश्वर को निराकार माना और बाह्य पूजा–पद्धतियों का खंडन किया। उनके अनुसार सच्ची भक्ति हृदय की शुद्धता और आत्मिक अनुभव में निहित है–

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसारम"

इस दोहे में कबीर ने मूर्ति–पूजा की निरर्थकता को स्पष्ट करते हुए व्यावहारिक जीवन की महत्ता को स्थापित किया है।

3. अनुभववाद और आध्यात्मिकता– कबीर के व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता उनका अनुभववाद है। उन्होंने "आंखिन देखी" को ही सच्चा ज्ञान माना। वे पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा आत्मानुभूति और प्रेम को श्रेष्ठ मानते हैं–

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।"

यह दोहा स्पष्ट करता है कि सच्चा ज्ञान प्रेम और अनुभव से प्राप्त होता है, न कि केवल ग्रंथों के अध्ययन से।

4. सामाजिक चेतना और विद्रोही स्वर– कबीर का व्यक्तित्व अत्यंत विद्रोही और क्रांतिकारी था। उन्होंने समाज में व्याप्त जाति–भेद, पाखंड और अंधविश्वासों का तीव्र विरोध किया। वे सामाजिक समता और मानवीय गरिमा के पक्षधर थे–

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"

यह दोहा जाति–व्यवस्था के विरुद्ध कबीर के प्रखर विरोध और ज्ञान की सर्वोच्चता को दर्शाता है।

5. गुरु की महत्ता– काव्य धारा में गुरु का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। कबीर के अनुसार गुरु ही वह माध्यम है जो मनुष्य को ईश्वर तक पहुँचाता है।

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।।"

इस दोहे में कबीर ने गुरु को ईश्वर से भी श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है, क्योंकि गुरु ही ईश्वर का ज्ञान कराता है।

6. भाषा और लोकधर्मिता– कबीर की भाषा अत्यंत सरल, सहज और लोकजीवन से जुड़ी हुई है। उन्होंने सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया, जिसमें हिंदी, अवधी, ब्रज और फारसी शब्दों का समन्वय मिलता है। उनकी भाषा में जनसामान्य की भावनाएँ और जीवन–सत्य सहज रूप से अभिव्यक्त होते हैं–

"साईं इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।"

यह दोहा कबीर की लोकधर्मी भावना और संतुलित जीवन–दृष्टि को प्रकट करता है।

7. मानवतावाद और समन्वयवादी दृष्टि– कबीर का व्यक्तित्व गहरे मानवतावाद और समन्वयवादी दृष्टिकोण से युक्त था। उन्होंने सभी मनुष्यों को समान माना और धर्म के नाम पर होने वाले भेदभाव का विरोध किया–

"हिंदू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहमाना।
आपस में दोऊ लड़ी–लड़ी मुए, मरम न कोय जाना।।"

इस पद में कबीर ने धार्मिक संघर्षों की निरर्थकता को उजागर करते हुए एकता का संदेश दिया है।

8. सरलता और कर्मशीलता– कबीर का जीवन अत्यंत सरल और कर्म प्रधान था। वे श्रम और कर्म को ही जीवन का आधार मानते थे और उसके फल के "करता था तो क्यों रहा, अब कर क्यों पछताय।

बोए बबूल तो आम कहाँ से खायम"

यह दोहा कर्म और उसके परिणाम के अटल सिद्धांत को स्पष्ट करता है।

संत काव्य धारा के आलोक में कबीर का व्यक्तित्व एक पूर्ण संत, महान समाज–सुधारक और उदात्त मानवतावादी विचारक के रूप में उभरता है। उनके काव्य में निर्गुण भक्ति, अनुभववाद, सामाजिक चेतना और लोकमंगल की भावना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है।

कबीर ने अपने सरल, सशक्त और प्रभावपूर्ण काव्य के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने न केवल धार्मिक आडम्बरों का खंडन किया, बल्कि मानवता, समानता और सत्य के उच्च आदर्शों की स्थापना भी की।

इस प्रकार कबीर का व्यक्तित्व और काव्य आज भी उतना ही प्रासंगिक और प्रेरणादायी है, जितना उनके युग में था।

6.3 कबीर की रचनाएँ

कबीरदास जी हिंदी साहित्य में निर्गुण भक्ति शाखा के महान संत कवि थे। उनकी हिंदी में रचित काव्य रचनाएँ मुख्यतः पदों, दोहों और साखियों के रूप में उपलब्ध हैं। शुरू में कबीरदास जी ने अपनी किसी भी रचना को स्वयं संकलित नहीं किया, उनके शिष्यों ने ये संग्रहित किए। उनके प्रमुख रचनात्मक संकलन निम्नलिखित हैं–

1. बीजक
2. साखी
3. सबद
4. रमैनी

1. बीजक – कबीरदास की प्रमुख रचनाओं का सबसे महत्वपूर्ण और प्रामाणिक संग्रह माना जाता है। यह कबीरपंथियों का प्रमुख ग्रंथ है। 'बीजक' का अर्थ है ''मूल'' या बीज (सार तत्व)। इसमें कबीर के उपदेश, आध्यात्मिक विचार और सामाजिक संदेश संकलित हैं।

2. साखी– साखी शब्द 'साक्षी' से बना है, जिसका अर्थ है प्रत्यक्ष अनुभव या प्रमाण। साखियाँ प्रायः दोहा छंद में लिखी गई हैं और इनमें जीवन के गूढ़ सत्य, नैतिक उपदेश और आध्यात्मिक ज्ञान सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है।

विशेषताएँ–

(क) संक्षिप्त और सारगर्भित

(ख) उपदेशात्मक शैली

(ग) जीवन–दर्शन का निचोड़

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।"

3. सबद (पद)– सबद या पद कबीर की गेय रचनाएँ हैं, जिन्हें गाकर प्रस्तुत किया जाता था। इनमें भक्ति, रहस्यवाद, ईश्वर–प्रेम और आध्यात्मिक अनुभवों का भावपूर्ण चित्रण मिलता है।

विशेषताएँ–

(क) संगीतात्मकता

(ख) भावप्रधानता

(ग) ईश्वर से सीधा संबंध

उदाहरण– "मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।"

4. रमैनी– रमैनी कबीर की अपेक्षाकृत लंबी रचनाएँ हैं, जिनमें दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों का विस्तार से वर्णन मिलता है। इनमें कथा–तत्व भी पाया

जाता है और ये अधिक व्याख्यात्मक होती हैं।

विशेषताएँ–

(क) वर्णनात्मक शैली

(ख) दार्शनिक गहराई

(ग) रहस्यवादी भाव

कबीर की रचनाएँ केवल साहित्यिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक चेतना की अमूल्य धरोहर भी हैं। उनकी रचनाओं में जीवन का यथार्थ, ईश्वर की खोज और मानवता का संदेश निहित है। 'बीजक' के माध्यम से संरक्षित उनकी साखियाँ, सबद और रमैनी आज भी जनमानस को मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। कबीर की वाणी सरल होते हुए भी अत्यंत गूढ़ है, जो हर युग में प्रासंगिक बनी रहती है।

6.4 कबीर काव्य की भाषा और शैली

कबीर सन्त कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक–एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उडाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया–बन गया है तो सीधे–सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार–सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ कि किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है। असीम अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा में न केवल उस गम्भीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य–रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

पंचमेल खिचडी–कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा – अरबी, फारसी, पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को पंचमेल 'खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है।

इसका एक मुख्य कारण यह होता है कि ये साधुगण कहीं एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहते, वरन् विभिन्न भाषा–भाषी क्षेत्रों का भ्रमण करते रहते हैं, जिस कारण उन भाषाओं के शब्द और पद–विन्यास स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा में आ जाते हैं।

कबीर की भाषा–शैली –

कबीर की बहुआयामी भाषा को सधुक्कड़ी के अतिरिक्त कोई अन्य नाम दे पाना वास्तव में दुष्कर है। कविता करना क्योंकि कबीर का उद्देश्य न था अतः उन्होंने उसकी भाषा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। जो मुँह में आया, वही उनकी भाषा और कविता बन गया। वे अपनी आत्मा की प्रेरणा के अनुसार कार्य करते थे। उनकी वाणी को सुगठित भाषा की आवश्यकता न होकर भावों की आवश्यकता थी। कबीर के पदों में लगभग आधा दर्जन भाषाओं के शब्द उपलब्ध होते हैं।

1. कबीर की भाषा और उसका वैविध्य– कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है। परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर के काव्य से विभिन्न भाषाओं के निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं–

अवधी– "जब तूं तस तोहि कोई न जान।"
''तैसें नाचत मैं दुख पावा।''

भोजपुरी– नाँ हम जीवत मुख न ले माँही
दाँत गैल मोर पान खात,
केस गैल मोर गंग नहात

ब्रजभाषा– अपनापौ आपुन ही बिसरतौ
लोट्यौं भौमि बहुत पछितानौं,
लालचि लोगौ करत कनीं ।

खड़ीबोली–करण किया करम का नाम
यह मन चंचल चोर है,
यह मन सुद्ध ठगार

पंजाबी– लूण बिलग्गा पाँणियां पाणि लूँण बिलग्ग

राजस्थानी– क्या जाणों उस पीव कूँ, कैसे रहसी रंग
बीछड़िया मिलियौं नहीं, ज्यौं काँचली भुवंग द्य

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है कबीर ने भाषा की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। भाषा में जो कुछ सौन्दर्य है, उनकी तीव्र अनुभूति के कारण हैं। विभिन्न आलोचकों ने कबीर की भाषा

का मूल्यांकन विभिन्न प्रकार से किया है। किसी ने उसकी भाषा को ब्रज, किसी ने अवधी और किसी ने पंजाबी बताया है।

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में आलोचकों के मत–

1. डॉ. श्यामसुन्दरदास – कबीर ग्रन्थावली की भाषा पंचमेल खिचड़ी है।
2. डॉ. बाबूराम सक्सेना – कबीर अवधी के प्रथम संत कवि हैं।
3. डॉ. सिद्धनाथ तिवारी– "हम जब उनकी आँखन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रूखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।
4. डॉ. रामकुमार वर्मा – कबीर ग्रन्थावली की भषा में पंजाबीपन अधिक है।
5. रेवरेन्ड अहमदशाह – कबीर बीजक की भाषा बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर के आस–पास की बोली है।
6. डॉ. उदयनारायण तिवारी– कबीर की मूल वाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मातृ–भाषा बनारसी बोली में ही लिखा गया था, किन्तु उनके पदों का पछाँह की साहित्यिक भाषाओं में रूपान्तर कर दिया गया है।
7. डॉ. त्रिगुणायत ने कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं के सम्मिश्रण के सम्बन्ध में लिखा है, कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है। उनकी बोलियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है, साथ ही साथ खड़ीबोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि उप–भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है।
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है। वास्तव में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत अन्य मतों की अपेक्षा कहीं अधिक संगत प्रतीत होता है।

कबीर की भाषा की विविधरूपता के कारण– कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे, वे तन्मय होकर जो कुछ गाते थे, उनके शिष्य उनको लिपिबद्ध कर लिया करते थे। उन शिष्यों को भाषा से मोह न रहकर केवल भाव से मोह रहा होगा। शिष्यों ने अपने प्रदेश की भाषा के अनुसार उसको लिपिबद्ध कर लिया होगा। इस प्रकार अपने–अपने प्रदेश की भाषानुसार उन पदों में परिवर्तन कर लिया होगा। विभिन्न प्रदेशों के शिष्य उनके पास आया करते थे। अतः इस प्रकार भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। कबीर के पूर्ववर्ती सन्तों ने भी अपने काव्य में अनेक भाषाओं का प्रयोग किया था।

भाषा में विभिन्न भाशाओं के शब्दों के प्रयोग का एक कारण यह भी है कि सन्त कबीर देशाटन किया करते थे। जिस प्रदेश में वह जाते थे, उसी प्रदेश की भाषा के शब्द उनके काव्य में स्थान पा जाते थेय क्योंकि श्रोताओं को समझाने के लिए वे उस प्रदेश विशेष की भाषा के प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग करते थे। इस प्रकार कबीर के काव्य में भाषाई विविधता है।

कबीर की भाषा की प्रमुख विशेषताएँ–

1. कबीर की भाषा सीधी–सादी और सरल है। कबीर की उलटबांसियाँ और पारिभाषिक शब्दों वाले पद अवश्य क्लिष्ट हैं। उन पदों को छोड़कर कबीर का

समस्त साहित्य साधारण पढ़े–लिखे व्यक्ति की समझ में सरलता से आ जाता है। इस कारण कबीर की साखियों का इतना अधिक प्रचार है।

2. उनका अधिकांश काव्य गेय है।

3. कबीर की भाषा विषयानुकूल बदलती रहती है। जब वे मुसलमान सूफियों के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं, तो उसमें अरबी और फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं।

4. कबीर ने व्याकरण के नियमों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है डॉ. सिद्धनाथ तिवारी ने लिखा है–'जब हम उनकी आँखिन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रूखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।'

5. कबीर की भाषा की प्रशंसा करते हुए कबीर साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा में कहलवा दिया है–बन गया है तो सीधे–सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लचर–सी नजर आती है। उसमें मानो हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को न कर सके, और अकथ कहनी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में हैं, वैसी बहुत कम लेखकों की भाषा में पाई जाती है।'

कबीर की शैली और उसका वैविध्य– कबीर की शैली भी भाषा की भाँति अनिश्चित–सी है। शैली में विविधरूपता है। कबीर का समस्त काव्य मुक्तक शैली में रचा गया है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर भक्त पहले हैं और कवि बाद में । अतः वे मस्त होकर तन्मयता के साथ गाते हैं तो उनको किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता है। उनकी रचनाओं में हमें निम्नलिखित प्रमुख शैलियों के दर्शन होते हैं।

(क) खण्डनात्मक शैली– कबीर की शैली के ऊपर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। जब कबीर पण्डित, मुल्ला, वामपन्थी और अवधूतों को फटकारते हैं तो उनकी शैली बड़ी सबल और सशक्त हो जाती है। कबीर ने प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध किया। इस प्रकार के वर्णन में शैली का तीखापन द्रष्टव्य है। इस प्रकार की शैली मर्म पर सीधी चोट करती है। उस शैली को खण्डनात्मक शैली कहते हैं।

(ख) उपदेशात्मक शैली – हिन्दू–मुसलमानों को उपदेश देते समय वे अपने विचारों को अत्यन्त सरल और सीधे–सादे ढंग से व्यक्त करते थे, ताकि श्रोतागण उसको सरलता से समझ सकें। वे हिन्दुओं को उपदेश देते समय शुद्ध हिन्दी के और मुसलमानों को उपदेश देते समय फारसी शब्दों का प्रयोग करते थे। कबीर की यह उपदेशात्मक शैली सीधी–सीधी तथा सरल है।

(ग) अनुभूति–व्यंजक शैली– कबीर की तीसरे प्रकार की शैली अनुभूति–व्यंजक है। यह कबीर की साहित्यिक शैली है। यह शैली गीतिकाव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण है। इसमें अनुभूति की अतुल गहराई है। इस शैली में माधुर्य गुण सर्वथा दृष्टिगोचर होता है।

भाषा की शब्द–शक्ति–कबीर ने अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द–शक्तियों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। कबीर के लाक्षणिक प्रयोग देखते ही बनते हैं–

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी वाट।।

उलटबांसियों और प्रतीकों के प्रयोग में शैली अस्पष्ट होते हुए भी चमत्कारपूर्ण है।

अलंकार – कबीरदास अलंकारों के पण्डित नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी को कभी–भी सजाने, सँवारने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी काव्य–प्रतिभा के कारण स्वभावतः ही उसमें रमणीयता आ गई है। कबीर की विशेषता अपने रूपकों के लिए प्रसिद्ध है। कबीर के रूपक मौलिकता लिए हुए हैं–

नैनों की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय।।

सन्त कबीर ने उलटबाँसियों में मुख्यतया विरोधालंकार–विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कबीर के काव्य में उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टान्त अलंकारों की भी कमी नहीं है। कबीर ने अन्योक्तियों का प्रयोग भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

छन्द–विधान–कबीर का समस्त काव्य मुक्तक रचना है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु उनमें साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं। कबीर ने साखियों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। साखी दोहों से मिलती–जुलती है। साखी का अर्थ है– साक्ष्य का साक्षात् अनुभव । साखी का प्रयोग कबीर से पहले भी होता आ रहा था। कबीर ने स्वयं कहा है 'पद गाए मन हरसिया, साशी कह्या आनन्द।' साखी और दोहे के अन्तर को स्पष्ट करते हुए पं. परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है– "साखियों की रचना प्रायः दोहा नामक छन्द से ही की गई पाई जाती है, किन्तु कबीर साहब की सभी साखियाँ केवल इसी रूप में नहीं दिखतीं। इसमें न केवल सोरठे मिलते हैं, अपितु इनमें दोहा, चौपाई, हरिपद तथा छप्पय जैसे छन्दों के भी उदाहरण मिल जाते हैं।" इसके अतिरिक्त कबीर ने चौती, कहरवा, चाँचर, हिंडोला, बसन्त होली आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

कबीर का महत्त्व – साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। कबीर एक असाधारण व्यक्तित्व लेकर जनता के समक्ष आए। कबीर युगद्रष्टा और क्रान्तिद्रष्टा महात्मा थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है– 'हिन्दी

– साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई कवि उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है–तुलसीदास।' कबीर स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कलाकार थे। वे सन्त पहले थे और कवि बाद में।सन्त कबीर अपनी आत्मा के अनुचर थे।उन्होंने अपने सिद्धान्तों को जनभाषा में ही लोगों तक पहुँचाया। कबीर के समय तक भाषा कोई स्थायी रूप ग्रहण नहीं कर सकी थी। उसमें निखार आ रहा था। निर्गुण धारा के साहित्य में काव्य सिद्धान्तों का पालन करने वाली प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती । कबीर ने सर्वप्रथम भाषा को साहित्यकला का जामा पहनाया। बाद में वही भाषा परिष्कृत और परिमार्जित होकर साहित्य का माध्यम बन गई। कबीर धार्मिक आडम्बर और मिथ्या अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध करके अपने सन्त मत के सिद्धान्तों को जन–भाषा में ही जनता के सामने लाए।

6.5 कबीर काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में कबीर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख प्रवर्तक तथा महान संत–कवि हैं। उनके काव्य में आध्यात्मिकता, सामाजिक चेतना, मानवतावाद और यथार्थवाद का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। कबीर का काव्य केवल धार्मिक उपदेश नहीं है, बल्कि यह जीवन–दर्शन, समाज–सुधार और आत्मबोध का सशक्त माध्यम भी है। उनकी वाणी सरल होते हुए भी अत्यंत गूढ़ और प्रभावषाली है।

क. भाव पक्ष–

1. निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन– कबीर के काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता निर्गुण भक्ति है। उन्होंने ईश्वर को निराकार, निर्गुण और सर्वव्यापक माना।

वे मूर्ति या किसी विशेष रूप में ईश्वर को सीमित नहीं मानते। जैसे–

"मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।"

यहाँ कबीर बताते हैं कि ईश्वर बाहर नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर ही निवास करता है।

2. आडम्बर और कर्मकांड का विरोध– कबीर ने धार्मिक आडम्बरों, कर्मकांडों और पाखंड का तीखा विरोध किया। उन्होंने दिखावे की भक्ति को अस्वीकार करते हुए सच्चे हृदय से ईश्वर–भक्ति पर बल दिया। जैसे–

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।"

यहाँ वे मूर्ति–पूजा की निरर्थकता को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

3. अनुभववाद (आंखिन देखी)– कबीर ने प्रत्यक्ष अनुभव को ज्ञान का आधार माना। उनके अनुसार सच्चा ज्ञान पुस्तकों में नहीं, बल्कि जीवन के अनुभव में निहित है। जैसे–

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।"

यह दोहा ज्ञान की वास्तविकता को उजागर करता है।

4. सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार– कबीर का काव्य समाज–सुधार की भावना से ओतप्रोत है। उन्होंने जाति–प्रथा, ऊँच–नीच और भेदभाव का विरोध किया। जैसे–

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।"

5. मानवतावाद और समता का भाव– कबीर ने सभी मनुष्यों को समान माना। उनके लिए न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा। जैसे–

"एक बूंद से सब बना, कौन ब्राह्मण कौन शूद्र।"

6. धार्मिक समन्वयवादी दृष्टिकोण– कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों की संकीर्णताओं की आलोचना की और समन्वय का मार्ग प्रस्तुत किया।

"हिंदू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहमाना।"

7. गुरु की महत्ता– कबीर के काव्य में गुरु का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु ही ज्ञान का स्रोत और ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम है।

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।"

8. रहस्यवाद– कबीर का काव्य रहस्यवादी है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के मिलन का वर्णन है।

"जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।"

9. सरल, सहज और लोकधर्मी भाषा– कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है, जो लोकभाषा के निकट है। इसमें हिंदी, अवधी, ब्रज और फारसी शब्दों का मिश्रण मिलता है।

"साईं इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय।"

10. उपदेशात्मकता– कबीर का काव्य उपदेशात्मक है, जिसमें नैतिकता और जीवन–दर्शन का सार मिलता है।

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।"

11. व्यंग्य और कटाक्ष– कबीर ने समाज और धर्म के पाखंड पर तीखा व्यंग्य किया।

"कांकर पाथर जोड़ि के मस्जिद लई बनाय।"

12. प्रतीकात्मकता और रूपक– कबीर ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों और रूपकों का सहारा लिया।

"माया महाठगिनी हम जानी।"

13. प्रेम तत्व की प्रधानता– कबीर के काव्य में प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

"ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।"

14. वैराग्य और त्याग की भावना– कबीर संसार की नश्वरता को समझते हुए वैराग्य का संदेश देते हैं।

"मन लागो मेरा यार फकीरी में।"

ख. कला पक्ष–

भाषा की शब्द–शक्ति– कबीर ने अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द–शक्तियों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। कबीर के लाक्षणिक प्रयोग देखते ही बनते हैं– काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट ।

पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी वाट

उलटबांसियों और प्रतीकों के प्रयोग में शैली अस्पष्ट होते हुए भी चमत्कारपूर्ण है।

अलंकार – कबीरदास अलंकारों के पण्डित नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी को कभी–भी सजाने, सँवारने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी काव्य–प्रतिभा के कारण स्वभावतः ही उसमें रमणीयता आ गई है। कबीर की विशेषता अपने रूपकों के लिए प्रसिद्ध है। कबीर के रूपक मौलिकता लिए हुए हैं–

नैनों की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय।।

सन्त कबीर ने उलटबाँसियों में मुख्यतया विरोधालंकार–विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कबीर के काव्य में उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टान्त अलंकारों की भी कमी नहीं है। कबीर ने अन्योक्तियों का प्रयोग भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

छन्द–विधान–कबीर का समस्त काव्य मुक्तक रचना है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु उनमें साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं। कबीर ने साखियों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। साखी दोहों से मिलती–जुलती है। साखी का अर्थ है– साक्ष्य का साक्षात् अनुभव । साखी का प्रयोग कबीर से पहले भी होता आ रहा था। कबीर ने स्वयं कहा है 'पद गाए मन हरसिया, साशी का आनन्द।' साखी और दोहे के अन्तर को स्पष्ट करते हुए पं. परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है– "साखियों की रचना प्रायः दोहा नामक छन्द से ही की गई पाई जाती है, किन्तु कबीर साहब की सभी साखियाँ केवल इसी रूप में नहीं दिखतीं। इसमें न केवल सोरठे मिलते हैं, अपितु इनमें दोहा, चौपाई, हरिपद तथा छप्पय जैसे छन्दों के भी उदाहरण मिल जाते हैं।" इसके अतिरिक्त कबीर ने चौती, कहरवा, चाँचर, हिंडोला, बसन्त होली आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

कबीर का काव्य बहुआयामी और अत्यंत प्रभावशाली है। इसमें भक्ति, ज्ञान, समाज–सुधार, मानवतावाद और आध्यात्मिकता का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। उनकी वाणी सरल होते हुए भी गहन अर्थों से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से न केवल धार्मिक आडम्बरों का खंडन किया, बल्कि समाज को नई दिशा भी प्रदान की। इस प्रकार, कबीर का काव्य हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक और प्रेरणादायी है जितना उनके समय में था।

6.6 कबीर ''साखी'' से चयनित दोहे एवं पद

1. गुरुदेव कौ अंग– 3,6,8
2. सुमिरन कौ अंग– 8,9,10
3. विरह कौ अंग – 1,5,8
4. ज्ञान विरह कौ अंग– 3,4,5
5. परचा कौ अंग– 3,4,7
6. रस कौ अंग– 1,4,7
7. लांबी को अंग– 1,3,4
8. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग– 3,5,14
9. चितावनी कौ अंग– 16,25,34
10. पद संख्या– 16,40,43

1. गुरुदेव कौ अंग– 3,6,8

सतगुर की महिमा, अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार।।

शब्दार्थ– अनंत = अनन्त, असीम। उपगार = उपकार। लोचन = नयन। उघाड़िया = उघाड़, उद्घाटित किया। दिखावण्हार = दिखावनहार = दिखाने वाला।

संदर्भ–सतगुरु दिव्यशक्ति से सम्पन्न है। उनकी महत्ता, महिमा अनिर्वचनीय है। उन्होंने अनन्त कृपा करके शिष्य को अपरिमेय शक्ति प्रदान की।

भावार्थ–सतगुरु की महिमा अनन्त है। उनकी महत्ता का वर्णन नहीं हो सकता है। उन्होंने शिष्य के प्रति अनन्त उपकार किए हैं। उन्हीं की असीम कृपा से अनन्त अर्थात–ज्ञान के चक्षु उद्घाटित होगा। उनकी असीम कृपा से अनंत, निराकार निर्विकार ब्रह्म के दर्शन हो गए।

सतगुर लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्यां प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर।।6।।

शब्दार्थ– लई–ली, ग्रहण की। करि=कर–हाथ। बाहण=बहाने अर्था–फेंकने लगा। बाह्या=बहाया, फेंका। सरीर–शरीर।

सन्दर्भ– सतगुरु सच्चा सूरमा है। वह शब्दबाण मारने मे अत्यन्त् निपुण है उसने ऐसा शब्द–बाण मारा कि शिष्य का मर्म आहत हो गया और वह तत्व से पूर्णतया परिचित हो गया।

भावार्थ– सतगुरु ने हाथ में धनुष ग्रहण करके तीर बहाना (दया फेंकना) प्रारम्भ किया। एक तीर जो उसने बड़े प्रेम से मेरे प्रति संधान किया, वह मेरे शरीर में घर कर गया।

विशेष–प्रस्तुत साखी में कवि ने सतगुरु को सूरमा के रूप मे व्यक्त किया है, जो तीर संधान करने में अत्यन्त कुशल है वह अनवरत रूप से शिष्य के प्रति जो शब्द–बाण को लक्ष्य करता रहा है। परन्तु एक शब्द–बाण उसने बडे हित और प्रेम से संधान किया। इस बाण से शिष्य का मर्म आहत हो गया और वह ब्रह्ममय हो गया।

सतगुर मारया बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूंटि।।8।।

शब्दार्थ–करी–भरी पुरी शक्ति के साथ। सूधी= सूधे। दवा=दावाग्नि।

संदर्भ–– प्रस्तुत साखी मे कवि ने विगत साखो के भाव को अधिक विस्तार के साथ व्यक्त किया है। विगत साखी मे कवि ने सतगुरु के शूरत्व तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व का उल्लेख किया है। यहाँ उसी भाव का विश्लेषण करते हुए कबीर ने शब्द वाण के तीर्त्व एवं व्यापक प्रभाव को अंकित किया है।

भावार्थ–– सतगुरु ने शक्तिभर शिष्य को लक्ष्य करके वाण मारा। फलता शिष्य के शरीर मे दावाग्नि भी प्ररफुटित हो गई और शिष्य के अगों को उदघाटित करने लगा।

विशेष––(1) मार्या वाण भरि से तात्पर्यं यह है कि सतगुरु ने पूर्ण्शक्ति के साथ वाण मारा। (2) घरि–मूठि–ल साघन करके। (3) अगि– लागिया सतगुरु के शरीर बाणो ने शिष्य के अंगो को उदघाटित कर दिया। अर्थात शब्द वारगा ने ममं को आहन कर दिया। (4) गई–फूटि–शब्द वाण के फलतः ज्ञान कि अग्नि दावाग्नि से फैल गई और उसने व्यक्तित्व के असर तत्वो की विनष्ट कर दिया।

2. सुमिरन कौ अंग– 8,9,10

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि।।8।।

शब्दार्थ– ह्वै=हो । रह्या=रहा । सीस=शीश ।

सन्दर्भ–समाधि मे ब्रह्म का दर्शन प्राप्त कर लेने पर आत्मा ब्रह्म वाण हो जाती है। जब आत्मा परमात्मा मे समाहित हो गई , मन भेद सम्मान हो गए और माया जीवन भेद के विनष्ट हो जाने मे उभय एक हो गए तो दान करे और कौन किसकी उपमाना?

भावार्थ–राम की स्मरण करते–करते मेरा मन हो गया है। मन स्वयं राम हो गया तो किसके प्रति बोध कृपा।

विशेष– प्रस्तुत वाणी मे उल्लेख किया है जब वह स्तर पर पहुँच कर कबीर ने कहा था कि तू तू करता तू मय मुझ् मे रही न हूँ। चारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं। 'संत मलूकदास् ने भी इसी प्रकार की अनुभुति हो जाने पर लिखा था

'हम सवहिन के सबहि हमारे जीव जन्तु मोहिं लगै पियारे।' इस स्थिति का उद्‌भव तब होता है जब साधक की 'पच सगी पिव पिव करै, छठा जु सुमिरे–मंन'।

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ।।9।।

शब्दार्थ– तू=तुम=राम। हूँ=अह। वारी=आवागमन। फेरी=फिर गया, समाप्त हो गया । जित=जिधर। तिन=उधर।

संदर्भ– विगत साखी मे कवि ने उस परिस्थिति का वर्णन किया है, जब 'साधक' ब्रह्मराधना करता–करता या नाम जप मे इतना अधिक अनुरक्त हो जाता है कि वह ब्रह्माकार या ब्रह्माकार हो जाता है। आत्मा और परमात्मा के मध्य मायाकृत भेद विलीन हो जाता है । प्रस्तुत साखी मे उसी भाव को किंचित अधिक विस्तार और स्पष्टता के साथ अंकित किया गया है।

भावार्थ–तेरा ध्यान करते–करते मैं तू–ही, तू हो गया । मुझमे मेरा पार्थक्य अह या व्यतित्व की मित्रता शेष नही रह गई ।(फलतरू) मेरा बारंबार का आवागमन विनष्ट हो गया। अब तो जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

विशेष–कबीर की एक बड़ी ही प्रसिद्ध साखी है 'लाली मेरे लाल की जित देखू तित लाल। लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।' प्रस्तुत साखी मैं तू तू करता तूभया का भाव बढ़े ही माधुर्य पूर्ण शब्दों मे, सरल शैली मे व्यक्त कर दिया गया है । कबीर को साखियो मे भाव साम्य है, पर शब्दों की भिन्नता। मुझ हूँ से तात्पर्य है कि मेरा व्यह, मेरी पार्थक्य की भावना का लोप हो गया। बारी फेरी गई से तात्पर्य है कि मेरा आवागमन् समाप्त हो गया ।

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति।।10।।

शब्दार्थ– निरभै=निभंय। जपि=जप। लग=तक।दोपै=दीपक मे वाति=वाती=वतिका। घटना=घटा। राती=रात

सन्दर्भ्– 'गुरुदेव कौ अंग' की तेइसवी साखी मे कवि ने कहा है 'चेननि चौकी बैठिकरि, सतगुरु दीन्हाँ घोर। निरभै होइ निसंक भजि केवल कहै कबीर। 'प्रस्तुत साखी मे कवि ने पुनरू निसक और 'निरभै' होकर राम का जप करने का उपदेश दिया है। मानव का जब तक जीवन दीपक जल रहा है, तब तक मानव को नाम जप करना चाहिए।

भावार्थ– कबीरदास का कथन है कि जब तक दीपक में बती है तब तक निर्भय होकर राम का जप कर। तेल के निरूशेष हो जाने पर बत्ती भुझ जायेगा और तू पांव पसार कर दिनरात सोयेगा।

विशेष– प्रस्तुत साखी मे कवि ने निर्भय होकर ब्रह्मा नाम जप का उपदेश दिया है। यह उपदेश कवि ने एक बड़ी ही सरल तथा स्वाभविक अप्रस्तुत योजना के माध्यम से व्यक्ति की है। शरीर रुपी मे प्राण रुपी वर्तिका है और सामर्थ्य रुपी तेल विधमान है इस वसिका और तेल के घट जाने पर मानव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वह अनन्त काल तक सोता रहता है। शरीर से आत्मा के विलग हो जाने पर शरीर निश्चेष्ट हो जाता। जड शरीर के माध्यम से धर्म साधना अस्मभव हो जाता है। इसीलिए कवि ने यहाँ पर जीवन रहते रहते साधन करने के लिए उपदेश दिया है। '(तब) सोवेगा दिन राति' का तात्पर्य यह है कि मृत्यु को प्राप्त होगा। निरक्षर कबीर की अप्रस्तुत योजना कितनी यथार्थ ओर प्रभावशाली है, यह प्रस्तुत साखी से स्पष्ट हो जाता है ।

3. विरह कौ अंग – 1,5,8

रात्यूँ रूँनी बिरहनीं, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज।।1।।

शब्दार्थ– रात्यूं = रात में। रूनी = रोई। बचौं = कूं = को। कुंज प्रजल्या = प्रज्वलित हुआ। प्रगट्या = प्रकट हुआ। पुंज = घनीभूत।

सन्दर्भ–क्रौंच पक्षी का विरह जगत प्रसिद्ध है।उसी प्रकार विरहिरनी आत्मा प्रियतम के वियोग में जीवन निशा या विरह निशा भर रुदन करती रही। साधना अन्तस में जब से विरह की भावना उद्दीप्त हुई तब से समस्त कलुश दूर हो गए।

भावार्थ– रात भर विरहिणी रोई यथा क्रौंच पक्षी अपने बच्चों के लिए रोती है। कबीर कहते हैं कि विरह के प्रज्वलित होने पर अंतर प्रज्वलित हो गया।

विशेष– प्रस्तुत साखी में कवि ने विरही साधक तथा क्रौंच की परिस्थिति और विरहानुभूति में साम्य उपस्थित करते हुए दोनों के विषाद का उल्लेख किया है। विरही आत्मा और क्रौंच दोनों प्रिय के वियोग में अत्यन्त व्याकुल रहते है। विरहनिशा भर आत्मा शिव के हेतु रुदन करती रही उसी प्रकार क्रौंच पक्षी की परिस्थिति है।

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ।।5।।

शब्दार्थ– ऊभी = खड़ी। सिरि = सिरे पर। बूझे = पूँछे। घाइ = दौड़ कर। कबर = कबरे, अरे कब।

सन्दर्भ– प्रस्तुत साखी में विरहिणी की व्यग्रता, अधीरता, मानसिक व्यथा को व्यक्त किया गया है।

भावार्थ– विरहिणी मार्ग पर खड़ी पथिकों से पूछ रही है कि प्रिय का समाचार बताइए। वे कब आकर मिलेंगे, अनुग्रहीत करेंगे। हे राम! हे प्रिय! बहुत काल से अर्थात्

जाने कब से तुम्हारी बाट जोह रही हूँ, तुम्हारी प्रतीक्षा में अनुरक्त हूँ। तुमसे एकात्मकता संस्थापित करने के लिए मेरा जी व्यग्र है और मन में शांति नहीं है।

मूवाँ पीछै जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौंणे काम।।8।।

शब्दार्थ––मूवा = मृत्यु। जिनि = मत। पाथर = पत्थर घाटा = क्षीण । कौने = किरु ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत साखी का वण्यं–विषय सप्तम साखी के विषय से साम्य रखता है। कवि ब्रह्म अनुग्रह का आकांक्षी हैं, परन्तु शरीर रहते ही।

भावार्थ– कबीर कहते है कि है राम। पचतत्व में मिल जाने के अनन्तर यदि आपने अनुग्रह किया तो उससे लाभ, उससे प्रयोजन? पारस पत्थर की खोज मे, खोदते–खोदते यदि लौहस्त्र यदि पूर्णतया घिस जाये,और अन्त में पारस के पत्थर प्राप्त भी हो तो उसका क्या प्रयोजन।

4. ज्ञान विरह कौ अंग– 3,4,5

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूंवां प्रगट न होइ।
जाके लागी सो लखे, के जिहि लाई सोइ।।3।।

शब्दार्थ– हिरदा = हृदय। दौ –दावाग्नि। बलै = जलै। लखै = देखै। लाई = लागी।

सन्दर्भ–हृदय के अन्दर ज्ञान–विरह की ज्योति जल रही है। इसका अनुभव या तो साधक करता है, या सतगुरु।

भावार्थ– हृदय में प्रेम–विरह की अग्नि जल रही है परन्तु उसके लक्षण वाधतः नहीं प्रकट हो रहे हैं। इस अग्नि का वही अनुभव करता है, जिसके अन्तस में यह अग्नि लगी है या वह जिसने इस अग्नि को जाग्रत किया है।

झल उठा झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत।।4।।

शब्दार्थ– भल– अग्नि। भोली = शरीर। खपरा – खप्पर – खोपड़ी । फूटिम = फूटि – फूट गया। जोगी = योगी। आसणि–आमन। विभूति = राख।

सन्दर्भ– ज्ञान की अग्नि मे असार तत्व विनष्ट हो गये और योनी ब्रह्मा नन्द मे लीन हो गया।

भावार्थ– भल अग्नि मे शरीर रुपी भोली जल गयो और खरर फूट गया । योगी ब्रह्म मे रम गया और आगन पर केवल वस्त्र अवशेष रह गई।

अगनि जू लागि नीर में, कंदू जलिया झारि।
उतर दषिण के पंडिता, रहे विचारि बिचारि।।5।।

शब्दार्थ – नीर = जल, माया का जल। कन्दू = कदँम = कोचढ। भारि = सम्पूर्ण।

संदर्भ– ज्ञान की अग्नि के लगते हो माया और माया के तत्व विनसष्ट हो गये।

भावार्थ – ज्ञान की अग्नि के लगते हो माया का जल और उसके सहायत तत्व विनष्ट हो गये। इस आश्चर्यजनक कृत्य को उतर दक्षिण के पण्डित देखते हो रह गया।

5. परचा कौ अंग– 3,4,7

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्याही परवान।।3।।

शब्दार्थ–उनमान=अनुमान। कूं=को ।सोम=शोभ=देख्या=देखा, देखने से । परवान=प्रमाण।

भावार्थ– ब्रह्म अवर्णनीय स्पष्टनीय है। पर ब्रह्म के तेज,स्वरूप किस प्रकार का है? यह अकथनीय है,अवर्णनीय है। वह अव्यिंजना से परे है,केवल अनुभव करने योग्य है।

अगम अगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, 'तहां' पाप पुन्य नहीं छोति।।4।।

शब्दार्थ–गमि=गति। ज्योति=प्रकाश। छोति–छूत=अपवित्र।

सन्दर्भ–ब्रह्म प्रकाश स्वरूप है। वह ज्योति का समूह है।

भावार्थ–निर्गुण निराकार ब्रह्म अगम है, अगोचर जहाँ ब्रह्म की ज्योति जगमगाती वहाँ किसी की गति नही है वह पाप–पुण्य कि सीमाओ से परे है। ऐसे ही ब्रह्म ही समक्ष कबीर की प्रार्थना प्रस्तुत होते है।

अंतर कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ।
मन भवरा तहां लुबधिया, जांणैगा जन कोइ।।7।।

शब्दार्थ– अन्तरि = हृदय के अन्तर्गत। कवल = कमल = हृदय पद्म। प्रकाशिया = प्रकाशित हो गया। भवरा = भ्रमर।

संदार्भ– हृदय प्रदेश मे व्रह्म का वास है। मन भ्ंवरा वहा लुब्ध हो गया है।

भावार्थ– हृदय मे कमल प्रकशित हो गया और उसमे ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भ्रमर उस पर लुब्ध हो गया। विरला ही साधक इस रहस्य हो जान सकेगा।

6. रस कौ अंग– 1,4,7

कबीर हरि रस यौं पिया बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़हिं चाकि।।1।।

शब्दार्थ– थाकि=थकान। पाका=पक्का। कलस=कलश=घड़ा।

संदर्भ– जीवात्मा प्रभु–भक्ति के रंग में रंगकर जीवन्मुक्त हो जाती है।

भावार्थ– कबीरदास जी कहते हैं मैं ईश्वर को भक्ति का रस इतना अधिक पिया है कि सांसारिक कठिनाइयों से उत्पन्न थकावट बिल्कुल समाप्त हो गई है किंचितमात्र भी बाकी नहीं रही। जिस प्रकार कुम्हार के द्वारा पकाया हुआ घड़ा पुनः चाक पर नहीं चढ़ाया जाता है उसी प्रकार हरि–भक्ति–रस का पान करने के बाद आत्मा को इस संसार में नहीं भटकना पड़ता।

हरि रस पीया जाँणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैंमंता घूँमत रहै, नाँही तन की सार।।4।।

शब्दार्थ– मैमता = मस्त। रस का अंग,

संदर्भ– हरि–रस का पान करने वाला अपने शरीर की सुधि–बुधि भूल जाता है।

भावार्थ– हरि–भक्ति रसामृत का पान किया उसी व्यक्ति को समझना चाहिए जिसके ऊपर उसका स्थायी नशा बना रहे। और वह उस नशे में मदमस्त हाथी के समान मतवाला होकर इधर–उधर घूमता रहे उसे अपने शरीर तक की भी सुधि–धिन रहे।

जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलि न्हाइ।
देवल बूड़ा कलस सूँ, पंशि तिसाई जाइ।।7।।

शब्दार्थ – मैगल = मदमस्त हाथी, मन। देवन = संसार।

संदर्भ– भक्ति के बढने पर आत्मा की प्यास भी बढती चलती है।

भावार्थ – जिस भक्ति के तालाब मे मन रूपी घढ़े डूबने पर भी पानी नही था। उसी मे अब भक्ति के बढ जाने से मग मस्त साधक मलमल कर स्नान करता है। अब उसमे इतना अधिक जल हो गया है सम्पूर्ण संसार उन भक्ति सागर मे डूब गया है किन्तु आत्मारूपी जीव पीते पीते नही धकता।

7. लांबी को अंग– 1,3,4

कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर।।1।।

शब्दार्थ– क्या = काया = शरीर।

सन्दर्भ– ज्ञान एवं भक्ति का उज्जवल द्वारा भी शरीर की तृष्णा शान्त नहीं होती।

भावार्थ – ज्ञान एवं भक्ति का उज्ज्वल एवं निर्मल नीर शरीर रूपी कमंडल में भर लिया। शरीर एवं मन की पूर्ण शक्ति लगाकर जीवन के सुन्दरतम समय यौवनकाल में इसका पान किया किन्तु फिर भी इसकी प्यास शांत नही हुई।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समंद मैं, सो कत हेरी जाइ।।3।।

शब्दार्थ– हेरत–हेरत = खोजते खोजते। हिराइ = खो जाना। हेरी = पता लगाना।

सन्दर्भ– आत्मा का जब परमात्मा से एकीकरण हो जाता है तो उसको ढूँढ़ पाना कठिन होता है।

भावार्थ– कबीर की आत्मा परमात्मा को खोजते–खोजते उसी में लीन हों गई। आत्मा और परमात्मा का मेल हो गया। जो बूँद समुद्र में जाकर मिल जाती है उसका पता नहीं लगाया जा सकता है उसी प्रकार जिस आत्मा का परमात्मा में समावेश हो गया उसको भी नही खोजा जा सकता है।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूँद मैं, सो कत हेरह्या जाइ।।4।।

शब्दार्थ– समद = समुद्र।

सन्दर्भ– हृदय स्थित ईश्वर को देखना मुश्किल है।**भावार्थ–** कबीर की आत्मा अन्य सांसारिक आत्माओं से कहती है कि हे सखी! परमात्मा को खोजत खोजते मैं स्वयं खो गई। समुद्र (परमात्मा) बूँद (आत्मा) के अन्तःकरण मे हो व्याप्त है उसको कैसे खोजा जा सकता है।

8. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग– 3,5,14

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै है मेरा।।3।।

सन्दर्भ—संसार की सभी वस्तुँ परमात्मा की है। मापक जो भी परन्तु परमात्मा को समर्पित करता है वह उसी की ही वस्तु उसकी समर्पित करता है।

भावार्थ—मेरे पास जो कुछ भी है हे परमात्मा! यह तेरा ही है उसमें मेरा कुछ भी नही है। फिर आपकी ही वस्तु आप को सौंपने मे मेरा क्या लगता है।

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
संमदहि तिणका बरि गिणै स्वाँति बूँद की आस।।5।।

शब्दार्थ—समदहिं=समुद्रहि=समुद्र को।

सन्दर्भ—जिसका जिसमे प्रेम होता है उसके लिए उससे बढकर और कोई पदार्थ नही होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि समुद्र मे पड़ी हुई सीपी उसके जल से तृप्त न होकर प्यास रठती रहती है। वह तो स्वाति नक्षत्र के बूँद को आशाएँ विशाल समुद्र को तिनके के समान नगण्य समझती है।

विशेष—अन्योक्ति अलंकार।

कबीर कुता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवडी, जित खैचे तित जाउँ।।14।।

शब्दार्थ—कूता=कुत्ता। जेवडी=जेवरी=रस्सी।

सन्दर्भ—भवत को भगवान जिधर खीचता है वह उधर ही चला जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूँ और मेरा नाम मुतिया (मुक्त) है मेरे गले में राम नाम की रस्सी पड़ी हुई है उस रस्सी को पड़ कर मेरे स्वामी राम जिधर मुझे घुमाते हैं मैं उधर हो घूम जाता हूँ।

विशेष—रूपक अलंकार।

9. चितावनी कौ अंग– 16,25,34

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास।।16।।

सन्दर्भ– शरीर की क्षण भंगुरता देखकर कबीर को विरक्ति हो गयी है।

भावार्थ– कबीर दास जी कहते हैं कि मरणोपरान्त इस शरीर की हड्डियाँ लकड़ी की भाँति और केश घास की तरह चिंता के ऊपर जलते हैं। इस प्रकार समस्त शरीर को जलता हुआ देखकर कबीर दास यह समझकर कि इस जीवन में कुछ नहीं है इससे विरक्त हो गये।

कहा कियौ हम आइ करि, कहा करेंगे जाइ।
इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाइ।।25।।

सन्दर्भ– जीव दम संसार में आकर परलोक सुधारने के कर्म कम करता है।

भावार्थ– कबीर दास जी कहते है कि हमने इस संसार में आकर आत्मा की मुक्ति के लिए कौन–कौन से कर्म किए हैं जिनको कि मरने के बाद ईश्वर के अमृत्व वतलायेंगे। हमने न तो ऐसे कर्म किये हैं जिनसे इम लोक का जीवन सुधरता और न ऐसे सत्कर्म किए हैं कि परलोक का मार्ग हो सुधरता। अतः हम तो कही के न हुए जो पवित्र आत्मा परमात्मा से प्राप्त हुई थी वह भी गँवा बैठे।

मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार।
तरवर थैं फल झड़ि पड़ा बहुरि न लागै डार।।34।।

शब्दार्थ—मनिषा=मानव का।

सन्दर्भ—मनुष्य का जन्म बार–बार नही प्राप्त होता है।

भावार्थ– कबीर दास जी कहते हैं कि यह मानव जन्म बडी कठिनाई से प्राप्त होता है और यह शरीर बारम्बार नही प्राप्त होता है। जिस प्रकार एक बार वृक्ष से फल गिर जाने के बाद उसी शाखा में फिर से नहीं लग सकता उसी प्रकार मनुष्य देह भी दुबारा नहीं मिल पाती है।

10. पद संख्या– 16,40,43

संतौं भाई आई ग्यान की आँधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उडाँणी, माया रहै न बाँधीम टेक।।
हिति चित की द्वै थूँनी गिराँनी, मोह बलिंडा तूटा।
त्रिस्नाँ छाँति परि घर ऊपरि, कुबधि का भाँडाँ फूटा।।
जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणीम
कूड़ कपट काया का निकस्या हरि की गति जब जाँणी।।
आँधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनाँ।
कहै कबीर माँन के प्रगटे उदित भया तम शींनाँम।।16।।

कठिन शब्दार्थ– टाटी = टटिया, टाटा का परदा। उड़ाणी = उड़ गईं। हित चित = चित्त की दो अवस्थाएँ, (विषयों में आसक्ति और बाहरी आचरण), द्विविधि या अनिश्चय की अवस्था। थूनि = खम्भा। गिरानी = गिर गई। बलींडा = बल्ली (छाजन को साधने वाला बीच का बेड़ा)। त्रिस्ना = तृष्णा, चाह। छाँनि = छप्पर। कुबुधि = कुबुद्धि, कुविचार। भाँडा = बर्तन। जोग जुगति = योग की युक्ति, सोच–विचार, योग साधना। निरचू = निश्चिंत, बेफिक्र। चुवै = चूना, टपकना। पाणीं = पानी। कूड़ = कूड़ा, छल–कपटे। काया = शरीर और मन। निकस्या = निकल गया। हरि की गति = ईश्वर का स्वरूप या कृपा। बूढ़ा = उमड़ा या बरसा। जने = भक्त। भीना = भीग गया, मग्न हो गया। भांन = सूर्य, ज्ञान। तम = अंधकार, अज्ञान। शीनाँ = क्षीण, नष्ट।

संदर्भ तथा प्रसंग– प्रस्तुत पद हमारी पाठ्यपुस्तक में संकलित कबीर के पदों से लिया गया है। इस पद में कबीर मनुष्य के हृदय में ज्ञान का उदय होने पर, उसके समस्त दुर्गुणों के नष्ट हो जाने का उल्लेख कर रहे हैं।

व्याख्या – कबीर कहते हैं। हे संतो ! हमारे अंतर्मन में ज्ञान की आँधी आई हुई है। इस आँधी ने हमारे मन की भ्रमरूपी टटिया को उड़ा दिया है। माया बंधन भी उसे रोक नहीं पा रहे हैं। भाव यह है कि ज्ञानोदय होने पर हमारे मन का भ्रम और माया का प्रभाव समाप्त हो गया है। हमारे मनरूपी घर पर तृष्णारूपी छप्पर पड़ा था और द्विविधा या अनिश्चयरूपी दो खम्भे इसे साधे हुए थे। ज्ञान की प्रबल आँधी ने इनको गिरा दिया है। इससे इन खम्भों पर टिकी हुई मोहरूपी बल्ली भी टूट गई है। भाव यह है कि ज्ञानोदय होने से हमारे मन की द्विविधा और मोह भी नष्ट हो गया। यह बल्ली के टूटते ही तृष्णारूपी छप्पर (छान) भी गिर पड़ी और वहाँ स्थित कुबुद्धि रूपी सारे बर्तन, भाँड़े फूट गए अर्थात् सारे कुविचार नष्ट हो गए। हे संतो ! अबकी बार हमने घर पर संतोषरूपी नया छप्पर बड़े यत्न से ढका और बाँधा है। अब हम पूर्णतः निश्चिन्त हैं, क्योंकि अब इसमें से एक बूंद भी वर्षा का पानी नहीं टपक सकता अर्थात् सांसारिक विषय विकार अब हमारे हृदय को लेश मात्र भी प्रभावित नहीं कर सकते। मन में ज्ञान के आगमन से मुझे हरि' के स्वरूप का ज्ञान

हो गया है और मन का सारा कूड़ा–करकट (दुर्गुण) साफ हो गया है। ज्ञानोदय के पश्चात् मेरा भक्त हृदय प्रभु प्रेम की वर्षा में भीग गया है। ज्ञानरूपी सूर्य के उदय से अज्ञानरूपी अंधकार पूर्णतः नष्ट हो चुका।

पंडित बाद बदंते झूठा।
राम कह्याँ दुनियाँ गति पावै, शाँड कह्याँ मुख मीठा मटेक।।
पावक कह्याँ मूष जे दाझैं, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्याँ भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई।।
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जंगल में, बहुरि न सुरतै आनै।।
साची प्रीति विषै माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हासी।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुरि जासी ।।40।।

शब्दार्थ – बाद – विवाद, झगड़ा, बहस। बदे = कथन करना, पक्का करना। गति = मुक्ति। खांड़ – चीनी । डाहै = जल जाय। भाजै – भग जाय, दूर हो जाय। सूवा– सुगा । यमपुर –मन की मलिनता , गर्भवास ।

भावार्थ – पंडित लोग जो विवाद करते हैं कि केवल राम – राम जपने से मोक्ष हो जायेगा , यह बात झूठी है। यदि राम या किसी भी नाम के जपने मात्र से मोक्ष हो जाय, तो खांड़ – खांड़ कहने से मुख भी मीठा हो जाना चाहिए। यदि आग का नाम लेने से पैर गरम हो जायं, जल का नाम लेने से प्यास बुझ जाय, भोजन का नाम लेने से भूख भाग जाय , तो राम या किसी नाम के जप मात्र से संसार के लोग अवश्य भवसागर से तर सकते हैं ।

मनुष्य के द्वारा पाला गया शुकपक्षी उसके साथ राम – राम कहता है , किन्तु राम क्या है इसका महत्त्व वह कुछ नहीं जानता। यदि कभी वह पिजड़े से निकलकर जंगल में भाग गया, तो राम का ख्याल भी नहीं करता। बिना देखे, बिना स्पर्श किये , अर्थात बिना तत्त्वबोध हुए केवल नाम लेने से क्या होता है? धन का नाम लेने मात्र से यदि आदमी धनवान हो जाय, तो संसार में कोई निर्धन रह ही नहीं जायेगा।

वस्तुतः हरिभक्तों के गले की फांसी है विषय – माया के प्रति अत्यंत राग। अतएव कल्याण का कारण कोई नाम–जप नही, किन्तु विषय – वासनाओं का त्याग है। विषय वासनाओं का त्याग हो जाने पर निज स्वरूप ही शेष रहता है । वही राम है।सद्गुरु कहते हैं कि विषयासक्ति का त्याग ही राम भजन है। इसके बिना जीव पुनः वासनाओं में बंधकर संसार में भटकता है ।

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हँम कूँ मिल्या जियावनहारा म टेक।।
अब न मरौ मरनै मन माँना, ते मूए जिनि राम न जाँना।
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै।।

हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हँम काहे कूँ मरिहैं।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा।।43।।

सन्दर्भ – यह पंक्तियाँ संत कबीरदास के एक प्रसिद्ध पद से ली गई हैं, जो उनके बीजक संग्रह में संकलित हैं। यह पद अहंकार और मोह के त्याग तथा आत्मज्ञान की अनिवार्यता पर केंद्रित है।

प्रसंग – इस पद में स्पष्ट किया गया है कि जीव का ध्यान ईश्वर की ओर लग जाने से वह अमरत्व को प्राप्त हो जाता है तथा उसे आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल जाती है।

व्याख्या – कबीरदास जी कहते हैं कि हमारी मृत्यु नहीं होगी। यह मायारूपी संसार ही नष्ट हो जायेगा, क्योंकि मेरा मन ईश्वर की ओर लग जाने के कारण अमरत्व प्रदान करने वाले आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो गयी है। में अब नहीं मरूंगा, क्योंकि मैंने मरने न मरने के रहस्य को समझ लिया है। वे ही मरते हैं जिन्होंने परमात्मा में अपना ध्यान नहीं लगाया। शाक्त मरते हैं परन्तु ज्ञानोपासक संत जीवित रहते हैं और वे राम–भक्ति रूपी सुधा रस का पान करते हैं। यदि ईश्वर मरेंगे तो हम भी मरेंगे, ईश्वर नहीं मरेंगे तो हम क्यों मरेंगे? कबीरदास जी कहते हैं कि हमने अपने आपको परमतत्त्व में विलीन कर दिया है। अब मैंने आनन्द सागर रूपी परमतत्त्व को प्राप्त कर लिया है। अर्थात् अब में अमर हो गया हूँ।

अध्याय – 7

मलिक मुहम्मद जायसी व उनका काव्य

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन युग को विशेष रूप से भक्ति और प्रेम की भावनाओं के उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस युग में जहाँ एक ओर निर्गुण और सगुण भक्ति धारा के कवियों ने आध्यात्मिक चेतना को जन–जन तक पहुँचाया, वहीं दूसरी ओर सूफी काव्यधारा ने प्रेम, मानवता और आध्यात्मिक एकता का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया। इसी सूफी काव्यधारा के प्रमुख और सर्वाधिक प्रतिष्ठित कवि हैं,मलिक मोहम्मद जायसी।

मलिक मोहम्मद जायसी का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है।वे 16वीं शताब्दी के महान सूफी कवि थे, जिनकी रचनाओं में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम (ईश्वर–प्रेम) की अभिव्यक्ति हुई है। जायसी ने अपने काव्य के द्वारा यह प्रतिपादित किया कि सच्चा प्रेम आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन है। उनकी काव्य–दृष्टि में प्रेम केवल भावनात्मक अनुभूति नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना का मार्ग है।

जायसी की सर्वप्रमुख कृति 'पद्‌मावत' हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। यह एक रूपकात्मक (आलंकारिक) प्रेमाख्यान है, जिसमें रानी पद्‌मावती, रतनसेन और अलाउद्दीन खिलजी के माध्यम से प्रेम, त्याग, तपस्या और आत्मज्ञान की गूढ़ व्याख्या की गई है। इस काव्य में इतिहास और कल्पना का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। 'पद्‌मावत' केवल एक प्रेमकथा नहीं, बल्कि सूफी दर्शन का काव्यात्मक प्रतिरूप है, जिसमें मानवीय प्रेम को ईश्वर–प्राप्ति के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनुसार, जायसी का काव्य सूफी प्रेमाख्यान परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। इस परम्परा में प्रेम को साधना, विरह को तपस्या और मिलन को आत्मानुभूति के रूप में देखा गया है। जायसी ने अवधी भाषा में अपनी रचनाएँ कीं, जिससे उनका काव्य लोक–सुलभ और हृदयग्राही बन गया। उनकी भाषा में सरलता, भावप्रवणता और प्रतीकात्मकता का अद्‌भुत संगम है।

जायसी के काव्य की प्रमुख विषेशताओं में गहन आध्यात्मिकता, रूपकात्मक शैली, प्रतीक–योजना, मानवीय संवेदनाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति तथा प्रेम की सार्वभौमिकता प्रमुख हैं। उनके काव्य में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और इस्लामी

सूफी विचारधारा का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है, जो उन्हें अन्य कवियों से विशिष्ट बनाता है।

अतः स्पष्ट है कि मलिक मुहम्मद जायसी केवल एक कवि ही नहीं, बल्कि एक महान दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारक भी थे। उनका काव्य हिन्दी साहित्य में प्रेम, त्याग और आत्मज्ञान की अनूठी परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। इस अध्याय में हम जायसी के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे, जिससे उनके साहित्यिक योगदान का सम्यक आकलन किया जा सके।

7.2 जायसी का जीवन परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी, मलिक वंश के थे। मिश्र में मलिक सेनापति और प्रधानमंत्री को कहते थे। खिलजी राज्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चचा को मारने के लिए बहुत से मलिकों को नियुक्त किया था। इस कारण यह नाम इस काल में काफी प्रचलित हो गया। इरान में मलिक जमींदार को कहते हैं। मलिक जी के पूर्वज निगलाम देश इरान से आये थे और वहीं से उनके पूर्वजों की पदवी मलिक थी। मलिक मुहम्मद जायसी के वंशज अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। तारीख फीरोजशाही में है कि बारह हजार रिसालदार को मलिक कहा जाता था।

मलिक मूलतः अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी, राजा, सरदार आदि होते हैं। मलिक का फारसी में अर्थ होता है–'अमीर और बड़ा व्यापारी'। जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनका पूर्वजों से चला आया 'सरनामा' है। मलिक सरनामा से स्पष्ट होता है कि उनके पूर्वज अरब थे। मलिक के माता– पिता जापान के कचाने मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था, जिनको लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे। इनकी माँ मनिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थी।

जायस नाम का एक नगर उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में आज भी वर्तमान है, जिसका पुराना नाम 'उद्यान नगर' 'उद्यानगर' या 'उज्जालिक नगर' बतलाया जाता है तथा उसके 'कंचाना खुर्द' नामक मुहल्ले में मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म स्थान होना कहा जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि जायसी की जन्म भूमि गाजीपुर में कहीं हो सकती है किन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता।

जायसी के नाम के पहले 'मलिक' उपाधि लगी रहने के कारण कहा जाता है कि उनके पूर्वज ईरान से आये थे और वहीं से उनके नामों के साथ यह जमींदार सूचक पदवी लगी आ रही थी किन्तु उनके पूर्वपुरुषों के नामों की कोई तालिका अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। उनके पिता का नाम मलिक राजे अशरफ बताया जाता है और कहा जाता है कि वे मामूली जमींदार थे और खेती करते थे। इनके नाना का

नाम शेख अल–हदाद खाँ था। स्वयं जायसी को भी खेती करके जीविका–निर्वाह करना प्रसिद्ध है। कुछ लोगों का अनुमान करना कि 'मलिक' शब्द का प्रयोग उनके किसी निकट सम्बन्धी के'बारह हजार का रिसालदार' होने के कारण किया जाता होगा अथवा यह कि सम्भवतः स्वयं भी उन्होंने कुछ समय तक किसी सेना में काम किया होगा, प्रमाणों के अभाव में संदिग्ध हो जाता है। सैयद आले का मत है कि 'मोहल्ला गौंरियाना के निगलामी मलिक खानदान से थे' और 'उनके पुराने सम्बन्धी मुहल्ला कंचाना में बसे थे'। उन्होंने यह बतलाया है कि जायसी का मलिक कबीर नाम का एक पुत्र भी था। मलिक मुहम्मद जायसी कुरूप और एक आँख से काने थे। कुछ लोग उन्हें बचपन से ही काने मानते हैं जबकि अधिकांश लोगों का मत है कि चेचक के प्रकोप के कारण ये कुरूप हो गये थे और उसी में इनकी एक आँख चली गयी थी। उसी ओर का बायाँ कान भी नाकाम हो गया। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है।

शिक्षा– जायसी की शिक्षा भी विधिवत् नहीं हुई थी। जो कुछ भी इन्होनें शिक्षा–दीक्षा प्राप्त की वह मुसलमान फकीरों, गोरखपन्थी और वेदान्ती साधु–सन्तों से ही प्राप्त की थी।

गुरु–परम्परा– जायसी ने अपनी कुछ रचनाओं में अपनी गुरु–परम्परा का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है, 'सैयद अशरफ, जो एक प्रिय सन्त थे मेरे लिए उज्ज्वल पन्थ के प्रदर्शक बने और उन्होंने प्रेम का दीपक जलाकर मेरा हृदय निर्मल कर दिया। उनका चेला बन जाने पर मैं अपने पाप के खारे समुद्री जल को उन्हीं की नाव द्वारा पार कर गया और मुझे उनकी सहायता से घाट मिल गया, वे जहाँगीर चिश्ती चाँद जैसे निष्कलंक थे, संसार के मखदूम (स्वामी) थे और मैं उन्हीं के घर का सेवक हूँ'। 'सैयद अशरफ जहाँगीर चिश्ती के वंश में निर्मल रत्न जैसे हाजी हुए तथा उनके अनन्तर शेख मुबारक और शेख कमाल हुए'।

चार मित्रों का वर्णन– जायसी ने 'पद्मावत' में अपने चार मित्रों की चर्चा की है, जिनमें से युसुफ मलिक को 'पण्डित और ज्ञानी' कहा है, सालार एवं मियाँ सलोने की युद्ध–प्रियता एवं वीरता का उल्लेख किया है तथा बड़े शेख को भारी सिद्ध कहकर स्मरण किया है और कहा है कि ये चारों मित्र उनसे मिलकर एक चिह्न हो गए थे परन्तु उनके पूर्वजों एवं वंशजों की भाँति इन लोगों का भी कोई प्रमाणिक परिचय उपलब्ध नहीं है।

जायसी की रचनाएं–

जायसी की 21 रचनाओं के उल्लेख मिलते हैं जिसमें पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरानामा, चित्ररेखा आदि प्रमुख हैं पर उनकी ख्याति का आधार पद्मावत ग्रंथ ही है। इसकी भाषा अवधी है और इसकी रचना शैली पर आदिकाल

के जैन कवियों की दोहा चौपाई पद्धति का प्रभाव पड़ा है। 'पद्मावत' का रचनाकाल उन्होंने 147 हिजरी ('सन नौ से सैंतालीस अहै'—पद्मावत 24)। अर्थात् 1540 ई० बतलाया है। 'पद्मावत' के अन्तिम अंश (653) के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि उसे लिखते समय तक वे वृद्ध हो चुके थे, 'उनका शरीर क्षीण हो गया था, उनकी दृष्टि मन्द पड़ गयी थी, उनके दाँत जाते रहे थे उनके कानों में सुनने की शक्ति नहीं रह गयी थी, सिर झुक गया था, केश श्वेत हो चले थे तथा विचार करने तक की शक्ति क्षीण हो चली थी' किन्तु इसका कोई संकेत नहीं है कि इस समय वे कितने वर्ष की अवस्था तक पहुँच चुके थे। जायसी ने 'आखिरी कलाम' का रचनाकाल देते समय भी केवल इतना ही कहा है—

'नौ से बरस छतीस जो भए।
तब यह कविता आखर कहे'।

अर्थात् 936 हिजरी अथवा सन् 1529 ई. के आ जाने पर मैने इस काव्य का निर्माण किया। 'पद्मावत' ('पद्मावत' 13—17),में सुल्तान शेरशाह सूर (सन 1540—1545 ई.) तथा 'आखिरी कलाम', में मुगल बादशाह बाबर (सन 1526—1530 ई.) के नाम शाहे वक्त के रूप में अवश्य लिये हैं और उनकी न्यूनाधिक प्रशंसा भी की है, जिससे सूचित होता है कि वे उनके समकालीन थे। नेरशरीफ (जिला पटना, बिहार) वाले खानकाह के पुस्तकालय में फारसी अक्षरों में लिखित पुरानी प्रतियों का एक संग्रह मिला है, जिसमें जायसी की 'अखरावत' की भी एक प्रति मिली है। उसमें उसका लिपिकाल जुमा 8 जुल्काद सन् 911 हिजरी अर्थात् सन् 1505 ई. दिया गया जान पड़ता है, जो प्रत्यक्षतः पुराना समय है। प्रोफेसर सैयद हसन असकरी का अनुमान है कि वह वस्तुतः 'अखरावट' का रचनाकाल होगा, जो प्रतिलिपि करते समय मूल प्रति से ज्यों का त्यों उद्धृत कर लिया होगा। तदनुसार उनका कहना है कि यदि वह जायसी की सर्वप्रथम रचना सिद्ध की जा सके तो उनके जन्म संवत का पता लगा लेना हमारे लिए असम्भव नहीं रह जाता। सन् 911 हिजरी अर्थात् सन् 1505 ई. में उपर्युक्त 30 वर्ष का समय घटाकर सन् 881 हिजरी अर्थात् 1475 ई. लाया जा सकता है और यह सरलतापूर्वक बतलाया जा सकता है कि जायसी का जन्म इसके आस—पास हुआ होगा। इन प्रसंग में 910—11 हिजरी के उस प्रचण्ड भूकम्प का भी उल्लेख किया गया है, जिसकी चर्चा अब्दुल्लाह की 'तारीख दाऊदी' तथा बदायूनी की 'मुन्तखबुअत्तारीख' जैसे इतिहास—ग्रन्थों में की गयी है और उसके साथ जायसी द्वारा 'आखिरी कलाम' (4) में वर्णित भूकम्प की समानता दिखलाकर उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि का प्रयत्न भी किया गया है परन्तु यहाँ उपर्युक्त 'तीस बरिस ऊपर कवि बदी' के अनन्तर आये हुए 'आवत उद्यतभार बड़हाना' के 'आवात' शब्द की ओर कदाचित यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। यदि उसका अभिप्राय 'जन्म लेते समय' माना जाये तो उससे ग्रन्थ—रचना के समय का अर्थ नहीं लिया जा

सकता। अतः जब तक अन्य स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध न हों, जन्मसम्बन्धी उपर्युक्त धारणा संदिग्ध बनी रहती है। आपकी अनेक रचनाऐं बताई जाती हैं।सर्वसम्मत रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

पद्मावत– यह महाकाव्य जायसी की काव्य–प्रतिभा का सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। इसमें चित्तौड़ के राजा रलसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा वर्णित है। कवि ने कथानक इतिहास से लिया है परन्तु प्रस्तुतीकरण सर्वथा काल्पनिक है। भाव और कला–पक्ष, दोनों ही दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट रचना है। पद्मावत इनका ख्याति का स्थायी स्तम्भ है। पद्मावत मसनवी शैली में रचित एक प्रबंध काव्य है। यह महाकाव्य 57 खंडो में लिखा है। जायसी ने दोनों का मिश्रण किया है। पद्मावत की भाषा अवधी है। चौपाई नामक छंद का प्रयोग इसमे मिलता है। इनकी प्रबंध कुशलता कमाल की है।

जायसी के महत्त्व के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय लिखते है–''जायसी महान् कवि है ,उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्मान है। उन्होंने सामयिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी। उस पीर को उन्होंने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वे अमर कवि है''।

अखरावट– अखरावट सृष्टि की रचना को वर्ण्य विषय बनाया गया है। अखरावट के विषय में जायसी ने इसके काल का वर्णन कहीं नहीं किया है। सैय्यद कल्ब मुस्तफा के अनुसार यह जायसी की अंतिम रचना है।

आखिरी कलाम– 'आखिरी कलाम' ग्रन्थ में इस्लामी मान्यता के अनुसार प्रलय का वर्णन है। जायसी रचित महान् ग्रंथ का सर्वप्रथम प्रकाशन फारसी लिपि में हुआ था। इस काव्य में जायसी ने मसनवी– शैली के अनुसार ईश्वर– स्तुति की है।

चित्ररेखा– यह भी एक प्रेमकथा है किन्तु 'पद्मावत' की तुलना में यह एक द्वितीय श्रेणी की रचना है। जायसी ने पद्मावत की ही भांति 'चित्ररेखा' की शुरुआत भी संसार के सृजनकर्ता की वंदना के साथ किया है। इसमें जायसी ने सृष्टि की उद्भव की कहानी कहते हुए करतार की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसके अलावा इसमें उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रों का वर्णन सुंदरता के साथ किया है। इस प्रशंसा के बाद जायसी ने इस काव्य की असल कथा आरंभ किया है।

कहरानामा– कहरानामा का रचना काल 947 हिजरी बताया गया है। यह काव्य ग्रंथ कहरवा या कहार गीत उत्तर प्रदेश की एक लोक– गीत पर आधारित में कवि ने कहरानाम के द्वारा संसार से डोली जाने की बात की है।

इनके अतिरिक्त 'महरी बाईसी' तथा मसलानामा' भी आपकी ही रचनाएँ मानी जाती हैं परन्तु जायसी की प्रसिद्धि का आधार तो 'पद्मावत' महाकाव्य ही है।

अन्य कृतियाँ– जायसी की मुख्य कृतियों के अलावा इनकी अतिरिक्त 'मसदा'

'कहरनामा','मुकहरानामा'व मुखरानामा','मुहरानामा', या 'होलीनामा', 'खुर्वानामा', 'संकरानामा', 'चम्पावत','मटकावत','इतरावत', लखरावत','मखरावत' या 'सुखरावत' 'लहरावत', 'नैनावात', 'घनावत,'परमार्थ जायसी' और 'पुसीनामा' रचनाएँ भी जायसी की बतायी जाती हैं। किन्तु इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके विषय में चर्चा करते हुए 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि "कबीर ने अपनी झाड़–फटकार के द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों का कट्टरपन दूर करने का जो प्रयत्न किया वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करने वाला नहीं। कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम–कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन–दशाओं का सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक–सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू–हृदय और मुसलमान–हृदय आमने–सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।"

आचार्य शुक्ल ने नागमती के वियोग–वर्णन की भी बहुत प्रशंसा की है। जायसी के सूफी होने को लेकर विवाद है। इस संबंध में विजयदेव नारायण साही की स्थापनाएँ खासा चर्चित हुईं। उन्होंने जायसी को शुद्ध कवि माना है, सूफी नहीं।

बच्चन सिंह ने इनकी भाषा के बारे में लिखा है कि "जायसी की अवधी 'अवधी की अरघान' है। जायसी का जो भी कुछ पढ़िए, अवधी की रस–गंध जरूर मिलेगी। जायसी की भाषा ठेठ अवधी है तो तुलसी की संस्कृतनिष्ठ। यह अंतर दोनों की विषय वस्तु में भी है। एक में लोककथा है इसलिए लोकभाषा, दूसरे में क्लासिकल कथा है इसलिए संस्कृतनिष्ठ भाषा।"

जायसी के कृतित्व से प्रभावित होकर **डॉ. बच्चनसिंह** ने यहाँ तक कह दिया है कि "सूफी काव्य में एक ही कवि है जायसी, शेष लकीर के फकीर हैं।"

भाव पक्ष– जायसी रससिद्ध कवि हैं। आपके काव्य का भाव–पक्ष तथा कला–पक्ष दोनों ही समान रूप से प्रभावशाली हैं। आपकी रचनाओं की काव्यगत विशेषताएँ इस प्रकार हैं– जायसी ने भारतीय प्रेमाख्यानों को अपने काव्य का विषय बनाया और उनके माध्यम से आध्यात्मिक रहस्यों को प्रस्तुत किया। 'पद्मावत' काव्य के रूप में एक प्रेम कथा है किन्तु उसमें आत्मा–परमात्मा का मधुर सम्बन्ध तथा सूफी उपासना–पद्धति की विविध मान्यताएँ प्रतीकात्मक रूप में वर्णित हैं। 'पद्मावत' के रूपक–पक्ष को स्वयं कवि ने स्पष्ट किया है–

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा।।

गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत् को निरगुन पावा।।

भारतीय सौन्दर्य–वर्णन की परम्परागत शैली को ही जायसी ने अपनाया है। यह शैली 'नख–शिख वर्णन' कहलाती है। कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य–वर्णन में अपने परम्परा–परिचय और मोहक बिम्ब–विधान का परिचय दिया है–

भँवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी।।

ससि–मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।।

प्रकृति–वर्णन की जायसी के काव्य में कमी है किन्तु वह श्रृंगार का सहायक होकर आया है। वह स्वतंत्र प्रकृति–चित्रण न होकर रस के उद्दीपन हेतु ही प्रयुक्त हुआ है यथा–

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहै जारी।।

भा बैसाख तपनी अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी।।

आलंकारिक एवं नामपरिगणनात्मक प्रकार का प्रकृति–वर्णन भी 'पद्मावत' में विद्यमान है। जायसी का रहस्यवाद हिन्दी–साहित्य की अमूल्य निधि है। आंचलिक संस्पर्श एवं मानव–मनोविज्ञान के सहयोग से जायसी ने भारतीय नारी का भव्य चित्र उभारा है। यथा–

बरसै मेघ चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा।।

कोरौं कहाँ ठाट नव साजा। तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा।।

जायसी सूफी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, जिसमें साधक प्रेम की साधना से ही साध्य को पा सकता है। यही पारलौकिक प्रेम जायसी के ग्रन्थों में लौकिक प्रेम बनकर अवतरित हुआ है। जीवात्मा के ईश्वर से मिलन का यह रूपक, रहस्य–भावना के साथ कवि ने प्रस्तुत किया है। आचार्य शुक्ल के मत में तो शुद्ध रहस्यवाद केवल जायसी के काव्य में ही प्राप्त होता है।

कला पक्ष– जायसी की रचनाओं में विविध रसों का समावेश बड़ी ही सफलता के साथ किया गया है। श्रृंगार के अतिरिक्त वीर, रौद्र, वीभत्स रसों का मार्मिक चित्रण भी जायसी की कविता में उपलब्ध है।

भाषा– जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। उन्होंने उसके व्याकरण सम्मत स्वरूप पर विचार न करके उसमें माधुर्य और मृदुलता के संवर्द्धन पर ही अधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि उसमें व्याकरण–सम्बन्धी अशुद्धियाँ हैं परन्तु श्रुति–माधुर्य और हृदय को छूने की अद्भुत शक्ति है।

शैली– जायसी ने प्रबन्ध शैली को अपने उद्देश्य के अधिक अनुकूल समझा। उन्होंने लोक–प्रचलित भारतीय प्रेमकथाओं का आधार लेकर महाकाव्य की रचना की और साथ ही विदेश मसनवी शैली को भी स्थान दिया। काव्य–रचना में

आपने आलंकारिक शैली, प्रतीकात्मक शैली, शब्द चित्रात्मक शैली तथा अतिशयोक्ति–प्रधान शैलियों का प्रयोग किया है।

छंद– जायसी ने दोहा–चौपाई, छंदों का प्रयोग किया है। इसी छंद–योजना का चरम विकास तुलसी के 'रामचरितमानस' में प्राप्त होता है।

अलंकार– जायसी ने अलंकारों के प्रयोग में पूर्ण उदारता से काम लिया है। रूप–वर्णन,युद्ध, कृति–चित्रण तथा आध्यात्मिक तत्वों की रहस्य–योजना में अलंकारों की पूरी सहायता ली गई है। आपके प्रिय अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति आदि का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है।

जायसी हिन्दी के प्रथम महाकाव्य के रचयिता हैं। आपकी रसमयी प्रेम–पद्धति हिन्दी काव्य साहित्य की मूल्यवान निधि है। एक साहित्यकार के रूप में तो आप प्रतिष्ठा–प्राप्त हैं ही, आपको साम्प्रदायिक सौमनस्य का संदेश–वाहक भी माना जाना चाहिए।

मृत्यु– मुहम्मद जायसी के जन्म की तरह ही इनकी मृत्यु के भी मतभेद मिले है। सैयद आले मुहम्मद मेहर जायसी ने किसी काजी सैयद हुसेन की अपनी नोटबुक में दी गयी जिस तारीख रज्जब 949 हिजरी' (सन 1542 ई.) का मलिक मुहम्मद जायसी की मृत्यु तिथि के रूप में उल्लेख किया है, उसे भी तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता, जब तक उसका कहीं से समर्थन न हो जाए। कहा जाता है कि इनका देहांत अमेठी के आसपास के जंगलो में हुआ था। अमेठी के राजा ने इनकी समाधी बनवा दी, जो अभी भी है।

7.3 जायसी काव्य की भाषा शैली

मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मध्यकाल का साहित्य अपनी अलग पहचान रखता है, क्योंकि भाषा की दृष्टि से भी यह काल महत्वपूर्ण है। एक ओर तुलसी का संस्कृत निष्ठ अवधी में लिखा ग्रंथ रामचरित्मानस है तो दूसरी ओर जायसी जैसे कवि का ग्रामीण अवधी में लिखा महाकाव्य पद्मावत उपलब्ध होता है।

वस्तुतः भाषा विचारों के आदान–प्रदान का सशक्त माध्यम है तथा शैली माध्यम के गौरव को वहन करने वाली होती है। भाषा को समर्थ कवि का सहचर्य मिलते ही भाषा गौरवान्वित हो उठती है। रचनाएं किसी भी भाषा को अमरत्व प्रदान कर देतीं हैं। इतिहास साक्षी है कि संस्कृत और ग्रीक भाषाओं में रची रचनाएं आज इसलिए अमर हैं क्यों कि ये महान कवियों की लेखनी का चमत्कार था,। आज जहां ये रचनाएं अमर हैं वहीं भाषा जिसमें ये रचनाएं की गईं थीं उन्हें भी अमर कर गई।

कविवर जायसी भक्तिकालीन कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य धारा के श्रेष्ठ कवियों में उनकी गिनती की जाती है। उनकी ख्याति का मुख्य आधार उनके द्वारा रचित महाकाव्य पद्मावत है। उन्होंने ठेठ हिन्दी

में रचना की है, परन्तु जिन परिस्थितियों में इन्होंने रचना की है यह श्लाघ्य है क्योंकि उस समय ठेठ अवधी में लिखना बडा ही कठिन और दुष्कर था। मध्य काल तक संस्कृत में रचनाएं हो रहीं थीं परन्तु 1000 ई तक आते–आते प्राकृत भाषाओं में साहित्यिक रचनाएं होने लगीं थीं। अब तक संस्कृत साहित्य में रचनाओं का एक छत्र साम्राज्य समाप्त हो चुका था और उसके स्थान पर अपभ्रंश तथा प्राकृत का प्रचलन हो चुका था। जायसी के काल तक ये भाषाएं साहित्यिक रूप धारण कर चुकीं थीं, फिर भी लोकजीवन से इनका सम्पर्क अधिक गहरा नहीं हो सका था। दूसरी ओर कोई भी सर्वमान्य सम्पन्न भाषा साहित्यिक रूप धारण नहीं कर पाई थी। चारणों की भाषा राजस्थानी मिश्रित भाषा थी। तथा वह परिष्कृत भाषा नहीं बन सकी। कबीर आदि सन्तों ने शुद्ध भाषा का प्रयोग किया जो उनके आसपास बोली जा रही थी परन्तु वह भी अधिक समय तक साहित्यिक स्वरूप धारण नहीं कर पाई।

इस तरह सूफियों ने क्षेत्रीय बोली को ही अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यह साहसिक उपक्रम था क्योंकि इस भाषा में इससे पहले काव्य रचनाएं हीं हुई थी। हिन्दी सूफी साहित्य की प्रारम्भिक कृतियों में पद्मावत का उल्लेख किया जाता है। अवधी भाषा का मानक और आदर्श स्थापित करने में इस भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सत्य है कि पद्मावत की भाषा ठेठ अवधी है परन्तु आगे चलकर अवधी भाषा का आदर्श स्थापित करने में इस रचना का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः यह कहा जा सकता है कि पद्मावत् के आधार को ग्रहण करके ही इस भाषा का परिष्कार तथा सुसंस्कार किया गया। आगे चल कर हिन्दी साहित्य के कवि तुलसी दास ने साहित्यिक अवधी भाषा में रामचरित मानस जैसे महान काव्य की रचना की। अतः अवधी भाषा को साहित्यिक भाषा बनाने में जायसी का विशेष योगदान है, इसमें सन्देह नहीं। जायसी ने अपनी अभिव्यंजना शैली से साहित्य को कितना समृद्ध किया है यह विवेचन यहां प्रेत्य है।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पद्मावत का महत्व– पद्मावत का योगदान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके सहयोग से ही सोहलवीं सदी की अवधी भाषा तथा उसके स्वरूप को समझने में काफी सहायता प्राप्त हुई है। जायसी की भाषा पूर्णतः लोकव्यवहार की भाषा थी परन्तु फिर भी कवि ने इसे साहित्यिक रूप प्रदान करने पर बल दिया।

इस संदर्भ में डॉ रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि– पद्मावत का महत्व उसके सुरक्षित रूप में है। अतः जायसी की रचना में तत्कालीन अवधी का रूप बच सका है। हिन्दी साहित्य के जायसी ही ऐसे पुराने लेखक हैं जिनकी कृति वास्तविक रूप में हमारे सामने है।जायसी ने तात्कालीन बोलचाल की अवधी में अपनी रचना की। इनकी कृति स्वाभाविक बोलचाल के यथा–तथा शब्दों से पूर्ण है।

डॉ जार्ज ग्रियर्सन ने भी पद्मावत की भाषा को सोहलवीं शताब्दी में बोली जाने वाली भाषा ज्वलन्त उदाहरण है। उपरोक्त टिप्पणियों से एक बात तो साफ हो जाती है कि इस भाषा के द्वारा तात्कालीन अवधी आदि भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने में अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई।

ठेठ ग्रामीण अवधी का प्रयोग– पद्मावत में प्रयुक्त अवधी वास्तव में वह अवधी है जिसे बोलचाल की अवधी भाषा कहा जा सकता हैं जायसी ने शुद्ध तात्कालिक लोक प्रचलित और व्यवहृत अवधी का प्रयोग किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार इस सम्बन्ध में विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं– पदमावत की भाषा को पूर्वी हिन्दी की ठेठ अवधी बोली बतलाया गया है, जिसमें बोलचाल का पुट अधिक है। अवधी की खालिस बेमेल मिठास के लिए पद्मावत का नाम बराबर लिया जाएगा।

पं आयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं– पदमावत में ग्रामीण भाषा का प्रयोग हुआ है। जायसी ने अनेक ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें कई ऐसे हैं जिनका अर्थ बोध कठिन है। कहीं कहीं इनकी भाषा अधिक गंवारू हो गई है जिससे इनके पदों में अरुचि पैदा होने लगती है।

उसी तरह **डॉ शिवसहाय पाठक** का मत भी ध्यान देने योग्य है– लोक भाषा का जायसी जैसा पुष्ट और सार्थक प्रयोग हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया। प्रायः सभी श्रेष्ठ कवि संस्कृतनिष्ठ भाषा, संस्कृत पदावली, और संस्कृत के काव्य शास्त्र का पदपद पर आश्रय लेते हैं किन्तु धरती पर प्रवाहित होने वाली सर्व सुलभ सामान्य लोक भाषा की गंगा को काव्य–तीर्थ की छाया तले ले जाने का भागीरथी प्रयास किसी श्रेष्ठ कवि ने नहीं किया। इस दृष्टि से जायसी की भाषा का बडा महत्व है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि जायसी ने परिष्कृत अवधी का प्रयोग नहीं किया अपितु उन्होंने अवध प्रान्त में प्रचलित लोक अवधी भाषा का ही प्रयोग किया है।

इस सन्दर्भ में **डॉ द्वारिका प्रसाद के विचार द्रष्टव्य है**– पद्मावत की भाषा पूर्णतया बोलचाल की अवधी है। इसमें ग्रामीण प्रयोगों की प्रचुरता है, जो लोक वाणी के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करती है। जिसमें जनभाषा का उत्कृष्ट माधुर्य है जो सहज एवं स्वाभाविक बोली से अधिक निकट है, तथा तात्कालीन बोल–चाल की के यथातथ्य शब्दों से परिपूर्ण है। इसमें शास्त्रीय यह निर्विवाद साज–श्रृंगार के स्थान पर नैसर्गिक जैसा सफल और सार्थक प्रयोग किया है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं सौंदर्य विद्यमान है तथा जो 16 वीं शताब्दी के उस अवधी रूप को प्रस्तुत करती है जिसमें अवधवासी प्रायः उस समय बोला करते थे। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि जायसी ने पद्मावत में लोकभाषा का जैसा सफल और सार्थक प्रयोग किया है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। वस्तुतः भाषिक स्तर पर पद्मावत लोक भाषा के रंगों से रंजित है।

शब्द–चयन – यह सत्य है कि जायसी की भाषा ठेठ अवधी है, पन्तु उसमें संस्कृत के तत्सम, तद्भव, तथा विदेशज सभी प्रकार के शब्दों का खुल कर प्रयोग हुआ है। यहां तक कि कहीं कहीं जायसी ने अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग भी किया है।

तत्सम शब्द– पद्मावत में जायसी ने तत्सम शब्दों का प्रयोग एक विद्वान कवि के रूप में किया है जिसे संस्कृत का ज्ञान अवश्य था।उनके प्रयोग देखिए– मेघ कनक, इन्द्रासन, प्रीति, अरूप, अवधूत, सारंग, कंचन, हंसगामिनी, हस्ति, वासुकि, विश, मसि,दिगम्बर, आदि।

अर्द्ध तत्सम शब्द– असुपति, जातरा, विरिख, दरपन, विस्वनाथ, दिस्टी, अथर्वन, रिखेष्वर, आदि।

तद्भव– कूंज, अमिअ, सुआ, संदेसरा, किस्न, बरौठा, आदि

देशज शब्द– पद्मावत में देशज शब्दों की भरमार है।इन शब्दों की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है – धमोई, चाला, ठेली, झोल, गरेडी, खुसट, कसनी।

विदेशज शब्द– पदमावत में विदेशी शब्दों का प्रयोग खुल कर हुआ है। इनमें कुछ ऐसे भी हैं जो लोक जीवन में पूर्णतः घुल मिल गए हैं। कहीं कहीं कवि ने विदेशी शब्दों का परिवर्तित रूप भी प्रयुक्त किया है।उदाहरण देखिए सुलतान, सहमत, मोहरा, मीर, जरदा, खुरासान, तबला, बजीर, मुहताज, मुरसिंद, मुसुकी, दुनी, दस्तगीर, रोशन, सिरताज, मुबारक, खुरासान, उमर ख्वाजा, अदल, वलक, मखदमू, खिताब, गिलावा, अलावल आदि।

लोकोक्तियां और मुहावरे– कवि जायसी भाषा के स्वामी थे, उन्होंने अपनी मर्जी से भाषा को नचाया है। इसके लिए उन्होने एक सुघड भाषा विद् की तरह अपनी भाषा ठेठ अवधी में हर प्रकार के मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग एक सहजता से किया है। जिन मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग उन्होंने किया है वे आज भी अवध प्रदेश में प्रचलित हैं। इस संदर्भ में डॉ गौतम ने लिखा है कि–भाषा को चुस्त व मुहावरेदार बनाने के लिए लोकोक्तियों की नितान्त आवश्यकता होती है। पद्मावत में लोकोक्तियों का सुन्दर व प्रचुर प्रयोग हुआ है। समस्त पद्मावत में जायसी ने अतिसुन्दर मुहावरों की संयोजना की है। इससे इनकी भाषा की व्यंजकता में चार चांद लग गए हैं। कुछ मुहावरे देखिए–

गउ सिंह रेंगहिं एक बाटा, दूनी पानि पियहिं एक घाटा। गाय और सिंह का एक घाट पानी पीना। मुख कह आन पेट बस आन मुंह में और पेट में और असबड बोल जीभ मुंह छोट छोटे मुंहबडी बात मुहावरों के अतिरिक्त लोकोक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग पद्मावत में मिलता है। ये लोकोक्तियां जहां सांसंरिक तथ्यों को उद्घाटित करती हैं वहीं मानव समाज में प्रचलित मान्यताओं, दार्शनिक विचारों,

धार्मिक सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक पक्षों और नैतिक धारणाओ पर भी प्रकाश डालतीं हैं। कुछ उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट कर देंगें–

1. प्रेम घाव दुख जान न कोई, प्रेम के घाव के दर्द को कोई नहीं जानता।
2. पै जो दई लिखा को मेटा, विधाता के लिखे को कौन मिटा सकता है।
3. जहां सत्त तहं धरम संघाता, जहां सत्य है वहां धर्म साथी होता है।
4. यह मन कठिन मरै नहिं मारा यह मन बडा विकट है मारने से भी नहीं मरता।

शब्द–शक्तियां– पद्मावत में अभिधा, लक्षणा, तथा व्यंजना तीनों ही शब्द शक्तियों का प्रयोग देखने को मिलता है। भाषा में अर्थ गाम्भीर्य और चमत्कार पैदा करने के लिए इन शब्द शक्तियों का प्रयोग पदमावत में हुआ है। कुछ उदाहरण देखिए–

क लक्षणा शब्द शक्ति– 1. वज्रहिं तिन कै मारि उडाई। तिनहें वज्र की देह बनाई।

2. तुरुक बोलावहिं बोलहिं बाहां।

3. ससि मुख अंग मलैगिरि रानी।

ख व्यंजना– 1. हंस जो रहा शरीर महं पांख जरे तन थाक।

2. कुंआ ठार जल जैसे बिछोवा। जाल भरै नैनन्ह तस रोवा।

3. लेजुरि भई नाह बिनु तोही। कुआं परी धरि का कहं काधौं। लागे मरै गोरा के आगें। बाग न मुरै घाव मुख लागैं। जैसे पतंग आगि धंसि लेही। एक मुएं, दोसर जिउ देहिं।

ग माधुर्य गुण– सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार, पेम चित लागा। नैनन्ह हिएं की जोति दीप बहु सूझा। यह जो दीप अंधिअर भा बूझा। उलटि दिस्टि माया सौ रूठी। पलटि न फिरी जानि कै झूठी।

पदमावत में मसनवी शैली – का अनुसरण करते हुए चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रखा है। इसके साथ–साथ कवि ने प्रतीकात्मक, चित्रात्मक, वर्णनात्मक, तथा संवादात्मक और अलंकृत शैलियों का भी सफल प्रयोग किया है। पदमावत समासोक्ति तथा अन्योक्ति के लिए एक उल्लेखनीय ग्रंथ कहा जा सकता है।

बिम्बात्मकता– जायसी ने पदमावत में अनेक बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। अलाउद्दीन सेन आठवर्ष तक चितौड का घेरा डाल कर पडा रहा परन्तु उसे विजय नहीं मिली। जायसी ने इस का बिम्बात्मक चित्रण बडी सुन्दरता से किया है– आठ बरिस गढ छेका अहा। धनि सुलतान कि राजा महा। आइ साहि अंबराउ जो लाये, फरे झरैं पै गढ नहिं पाये। इसी तरह किलकिला समुद्र का वर्णन करते हुए जायसी ने बिम्बों की रचना की है।

अलंकार– प्रयोग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पदमावत को समासोक्ति कहा है। जायसी ने प्रायः सब प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक, दृष्टात, यमक आदि सब तरह के अलंकारों का प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा अलंकार का उदाहरण देखिए–

उत्प्रेक्षा अलंकार– पहिरे खुंभी सिंहल दीपा। जानहु भरी कचपची सीपी। कंचन रेख कसौटी कसी,जनु घन मांह दामिनी परगसी। इसी प्रकार व्यतिरेक, दृष्टान्त, यमक, अनुप्रास आदि सभी अलंकारों का सुन्दर प्रयोग पदमावत में मिलता हैं।

छन्द– विधान पदमावत में दोहा चौपाइ छन्द का ही प्रयोग हुआ है। कवि ने प्रायः सात चौपाइयों के बाद एक दोहा का क्रम अपनाया हैं। **डॉ राम पूजन तिवारी** के अनुसार पदमावत में सर्वथा दोहों की मात्राओं का नियम ठीक नहीं है। मात्रिक छन्द होने के कारण नियम को ध्यान में नहीं रखा है। सम्भवतः जायसी ने काव्यगत भाव की रक्षा के लिए अनुकूल शब्द विधान की ओर ध्यान दिया हैं। यह भी सत्य है कि उनके काव्य पर अपभ्रंश का भी प्रभाव हो सकता है। उस तरह पदमावत की भाषा में अनेक साहित्यिक विशेषताएं हैं। जायसी ने ठेठ अवधी में काव्य रच कर एक साहस का परिचय दिया है। आज पदमावत में संजोकर रखी भाषा हिन्दी साहित्य की धरोहर है।

7.4 जायसी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

मलिक मोहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की निर्गुण प्रेमाश्रयी धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे अत्यंत उच्च कोटि के सरल और उदार सूफी महात्मा थे। हिंदी साहित्य में तुलसीदास और सूरदास के समान ही उनका पर्याप्त महत्त्व है। वे प्रेम की पीर के कवि माने जाते हैं।

जायसी की छह प्रमुख रचनाएं मानी गई हैं जिनमें 'आखिरी कलाम', 'पद्मावत,'अखरावट,'मसलनामा,'कहरनामा'तथा 'कन्हावत' है। 'पद्मावत' इनकी कीर्ति का आधार स्तंभ है। इस महाकाव्य में चित्तौड़ के राजा रतनसेन तथा सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का वर्णन किया गया है। जायसी की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार है–

इतिहास और कल्पना का अद्भुत मिश्रण– जायसी ने अपने काव्य में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय किया है। 'पद्मावत' महाकाव्य इसका प्रमाण है। इस काव्य का पूर्वार्ध यदि कल्पित है तो उतरार्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इसमें रतनसेन, अलाउद्दीन, नागमती, पद्मावती आदि ऐतिहासिक पात्र हैं तथा अन्य पात्र काल्पनिक है। घटनाओं के वर्णन में कवि ने अपनी कल्पना शक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण की ऐतिहासिक घटना का सुंदर वर्णन हुआ है। पद्मावत का सिंहलद्वीप वर्णन कवि की कल्पना षक्ति कहा अद्भुत उदाहरण है–

सब संसार परथ मैं आए सातौं दीप।
एक दीप नहिं उत्तिम सिंघलदीप समीप

लोक संस्कृति में लोक जीवन का वर्णन– जायसी का काव्य लोक संस्कृति और लोक जीवन का बहुत सुंदर वर्णन करता है। उन्होंने अपने काव्य में

हिंदू–मुस्लिम एकता का तो समर्थन किया ही है, साथ ही भारतीय लोक संस्कृति, तीज–त्योहार, आदर्श, अंधविश्वास, जादू–टोना, मंत्र–तंत्र, तीर्थ–व्रत आदि का भी वर्णन किया है। उन्होंने हिंदू धर्म के सिद्धांतों, विवाह–संस्कार, रहन–सहन का जीवंत वर्णन किया है। पद्मावत की कथा पूर्ण रूप से भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित है। उनके नारी पात्र भारतीय आदर्श नारी का प्रतीक है।

लौकिक प्रेम के साथ अलौकिक प्रेम की व्यंजना– पद्मावत केवल जायसी का ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य का सफल एवं लोकप्रिय महाकाव्य है। इसमें कवि ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। यह महाकाव्य सूफी मत के सिद्धांतों के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम को अभिव्यक्त करता है। पद्मावत की नायिका अल्लाह का प्रतीक है तो रतन सेन साधक है–

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोतीम।।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसीम।।

प्रेम की पीर के कवि– जायसी प्रेम की पीर के कवि कहे जाते हैं। विरहजनित प्रेम में एक विलक्षण तीव्रता और निराली तड़प होती है। जायसी ने अपने प्रेम वर्णन में हृदय की कोमल वेदना, विरह की व्यापकता, तीव्रता, मार्मिकता और तन्मयता को अत्यंत प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी है। पद्मावत का नागमती विरह खंड विरह वर्णन की दृष्टि से हिंदी साहित्य का अप्रतिम काव्य खंड है। नागमती का विरहवर्णन में बारहमासा का एक विशेष स्थान है। प्रत्येक मास की प्राकृतिक दशा के साथ नागमती के हृदय के शोक और हर्ष की जो योजना की गई है, वह अपने आप में अनुपम है। नागमती के प्रेम की पीड़ा पाठक के मन को सहानुभूति और वेदना से भर देती है। कुछ उदाहरण देखिए–

नागमती उपवनों में रोती फिरती है। उसके विलाप से घोंसलों में बैठे हुए पक्षियों की नींद हराम हो गई है–

फिरि फिरि रोव, कोइ नहीं डोला ,आधी रात विहंगम बोलाम।।
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी, केहि दुख रैनि न लावसि ऑखीम।।

इस सहानुभूति की सम्भावना रानी के हृदय में होती कैसे है? यह समझकर होती है कि भौंरा और कौवा दोनों उसी विरहाग्नि के धुएँ से काले हो गए हैं जिसमें मैं जल रही हूँ। सम दुरूखभोगियों में परस्पर सहानुभूति का उदय अत्यन्त स्वाभाविक है।

पिउ सों कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग !
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम्ह लागम

श्रृंगार वर्णनः–जायसी के काव्य में प्रधानता रसराज श्रृंगार की है। पद्मावत में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों का अद्भुत वर्णन किया गया है। संयोग रस का वर्णन रतनसेन, नागमती, तथा पद्मावती के आश्रय से किया गया है। जब पद्मावती

को पाने के लिए रतनसेन ने घर छोड़ने का निर्णय किया तब नागमती ने उससे कहा–

तू जोगी होइगा बैरागी, हौं जरि छार भयऊ तोहि लागी।

राजा रतन सिंह नागमती को मनाते हुए कहते हैं–

कंठ लाई के नारि मनाई। जरि जो बेलि सींचि पहुताई।

इसी प्रकार पद्मावती और रतन सेन के विवाह के बाद भी संयोग पक्ष के कुछ सुंदर चित्र अंकित किए गए हैं। वियोग श्रृंगार की दृष्टि से जायसी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। पद्मावती में नागमती का विरह वर्णन हिंदी साहित्य की विशेष उपलब्धि है।

उदात्त चरित्र चित्रणः– जायसी का काव्य उदार चरित्र चित्रण का उदाहरण है। कवि ने भारतीय पात्रों का चरित्र चित्रण भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुसार किया है। नागमती और पद्मावती दोनों भारतीय आदर्श पतिव्रता नारी का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। हीरामन तोता, हंस, देवी देवता, अप्सराएं आदि सभी पात्रों का अद्भुत चित्रण किया गया है। यह पात्र स्थिति के अनुसार कथा को आगे बढ़ाते हैं। रतनसेन स्वयं एक आदर्श राजा के साथ–साथ आदर्श प्रेमी है। गोरा, बादल आदर्श वीर हैं। अलाउद्दीन का तामसी पात्र है जो कामी और लोभी है तथा राघव चेतन दुष्ट वृत्ति का पात्र है। इस प्रकार जायसी ने सात्विक और तामसिक दोनों प्रकार के पात्रों का कथा अनुसार प्रभावशाली चित्रण किया है।

वह पदमावति चितउर जो आनी। काया कुंदन द्वादसबानीम।।

कुंदन कनक ताहि नहिं बासा। वह सुगंधा जस कँवल बिगासाम।।

कुंदन कनक कठोर सो अंगा। वह कोमल, रँग पुहुप सुरंगाम।।

ओहि छुइ पवन बिरिछ जेहि लागा। सोइ मलयागिरि भयउ सभागाम।।

रहस्यानुभूतिः– जायसी को सफल रहस्यवादी कवि कहा जा सकता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार भावात्मक रहस्यवाद केवल जायसी में ही है। वे प्रेमी को परमात्मा का और प्रेमिका को आत्मा का प्रतीक मानते हैं। पद्मावत की नायिका पद्मावती अल्लाह का प्रतीक कही जा सकती है और रतन सेन साधक है। सिंहलदीप में कवि ने हठयोग की प्रवृत्ति को अपनाया है। उन्होंने दांपत्य भाव के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के संबंधों को प्रकट किया है। पद्मावती के रूप सौंदर्य में अभी तो सर्वत्र ईश्वर की झलक दिखाई पड़ती है। उन्होंने संपूर्ण पात्रों का प्रतीक योजना के माध्यम से जो वर्णन किया है और रहस्यवाद का अनुपम उदाहरण है–

तन चितउर, मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।

गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।

नागमती यह दुनिया–धंधा । बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।

नागमती यह दुनिया–धंधा । बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।

राघव दूत सोई सैतानू । माया अलाउदीं सुलतानू।।

प्रेम–कथा एहि भाँति बिचारहु । बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।

प्रकृति वर्णनः– प्रकृति वर्णन में जायसी ने अधिक रूचि ली है।उन्होंने मानव प्रकृति के साथ–साथ बाह्य प्रकृति का भी सुंदर चित्रण किया है। कुछ स्थानों पर तो ऐसा लगता है मानो प्रकृति मानव के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट कर रही है। सिंहलदीप वर्णन करते हुए कवि ने प्रकृति के छोटे से छोटे कण से लेकर विशाल स्वरूप का चित्रण किया है। जहां एक ओर वे नदी, पर्वत, सूर्य, चांद, आकाश आदि का वर्णन करते हैं वहीं दूसरी ओर नगर, गांव, रण सज्जा, सेना का प्रयाण, जल आदि का भी वर्णन करते हैं–

कीन्हेसि हेवँ समुद्र अपारा। कीन्हेसि मेरू खिखिद् पहारा।।
कीन्हेसि नदी नार आं झरना। कीन्हेसि नगर यच्छ बहु बरना।।
कीन्हेसि सीप मेति बहु भरे। कीन्हेसि बहुतर नग निरमरे।।

भाषा शैलीः– जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। इसमें देशज व अन्य क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का समावेश सहज ही हुआ है। जायसी के काव्य की भाषा सरलता व स्पष्टता, स्वाभाविकता तथा प्रसाद गुण आदि विशेषताएं लिए हुए हैं। दोहा–चौपाई इनका प्रिय छंद है। मसनवी तथा प्राकृत प्रेमाख्यानों की शैलियों का इन्होंने सुंदर समन्वय किया है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अतिश्योक्ति तथा समासोक्ति कवि के प्रिय अलंकार रहे हैं। कवि की भाषा का एक उदाहरण देखिए–

रूप सुरूप पदमिनी नारी।
पद्य गंध तिन्ह अंग बसाही। भंवर लागी तिन्ह संग फिरारी।

उपर्युक्त काव्यगत विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि जायसी एक सफल एवं श्रेष्ठ कवि है तथा उनका साहित्य सार्वकालिक है।

7.5 जायसी ''मानसरोदक खण्ड'' से चयनित कडवक संख्या– 4.1–4.8

एक दिवस पून्यो तिथि आई। मानसरोदक चली नहाई।।
पदमावति सब सखी बुलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई।।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली। कोइ सु केत, करना, रस बेली।।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती। कोइ सो बकावरि–बकुचन भाँती।।
कोइ सो मौलसिरि, पुहपावती। कोइ जाही जूही सेवती।।
कोई सोनजरद कोइ केसर। कोइ सिंगार–हार नागेसर।।
कोइ कूजा सदबर्ग चमेली। कोई कदम सुरस रस–बेली।।
चलीं सबै मालति सँग फूलीं कवँल कुमोद।
बेधि रहे गन गँधरब बास–परमदामोद।।

शब्दार्थ–कुन्द = हल्के रंग का श्वेत पुष्प। कत = केतकी। करना कर्णिकार। राती लाल। बकावरि गुलाब। बकुचन गुच्छा। मौलसिरि मौलश्री। जाही = चमेली की जाति का एक फूल। सेवती श्वेत गुलाब। कूजा = गुलाब की जाति का एक पुष्प। मालति पुष्प विशेष। वास = सुगन्ध।

सन्दर्भ – उपरोक्त पंक्तियाँ मलिक मोहम्मद जायसी विरचित महाकाव्य 'पदमावत' के मानसरोवर खण्ड से अवतरित है।

प्रसंग – उपरोक्त पद में कवि ने पद्मावती की सखियों को पुष्प वाटिका के रूप में चित्रित किया है।

अर्थ– एक दिन पूर्णिमा की तिथि को पद्मावती मानसरोदक (मानसरोवर) में स्नान के लिए गई. उसने अपनी सभी सखियों को भी आमंत्रित किया और वे सारी विभिन्न फूलों की वाटिका के समान चली आईं. कोई सखी चंपा के फूल के समान है तो कोई कुंद की तरह. कोई केतकी, कोई करना तो कोई रसबेलि के समान है. कोई लाल गुलाल के समान सुंदर दिखने वाली है तो कोई गुलबकावली के गुच्छे के समान हँसती हुई. कोई मौलश्री के समान है तो कोई जूही और कोई श्वेत पुष्प के समान. कोई सोने के समान पीला तो कोई केसर के समान. कोई हरसिंगार की भांति तो कोई नागकेसर जैसी ये सभी सखियाँ मालती जैसी पद्मावती के साथ इस प्रकार चलीं, जैसे कमल के साथ कुमुदिनियों का समूह हो. उनकी सुगंध से भौंरों के समूह भी बिंध रहे थे।

विशेष–(1) नारियों के शरीर से पुष्पों की सुगन्ध निकल रही है। (2) सखियों के सन्दर्भ में सुगन्ध का प्रयोग बड़ा ही सार्थक हुआ है। (3) उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पाल पर ठाढी भईं।।
देखि सरोवर हँसै कुलेली। पदमावति सौं कहहिं सहेली।।
ए रानी ! मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।।
जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजु।।
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम, कित यह सरवर–पाली।।
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा।।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न निसरै देहीं।।
पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह।।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निबाह।।2।।

अर्थ– खेलती कूदती वे मानसरोदक (मानसरोवर) तक पहुँचीं और उसके तट पर खड़ी हो गईं. मानसरोदक की सुंदरता देखकर सखियाँ प्रसन्न होकर कुलेल करने लगी. तभी एक सहेली पद्मावती से बोली– "हे पद्मावती, मन में विचार कर देखो. यहाँ पिता के घर चार दिन ही रहना है. जब तक पिता के घर हैं, तब तक जो भी हँसना खेलना है खेल ले जब ससुराल चले जाएंगे तब कहाँ हम और कहाँ यह सरोवर तट फिर यहाँ आना और साथ खेलना अपने हाथ में कहाँ ? सास और ननद ताने देकर प्राण ले लेंगीं कठोर ससुर घर से निकलने नहीं देगा, पति का प्यार इन सबसे ऊपर होता है, वो पता नहीं कैसा व्यवहार करेगा, सुख से रखेगा या दुःख से, पता नहीं जीवन भर कैसे निबाह होगा....

मिलहिं रहसि सब चढहिं हिंडोरी। झूलि लेहिं सुख बारी भोरी।।
झूलि लेहु नैहर जब ताईं। फिरि नहिं झूलन देइहिं साईं।।
पुनि सासुर लेइ राखहिं तहाँ। नैहर चाह न पाउब जहाँ।।
कित यह धूप, कहाँ यह छाँहा। रहब सखी बिनु मंदिर माहाँ।।
गुन पूछहि औ लाइहि दोखू। कौन उतर पाउब तहँ मोखू।।
सासु ननद के भौंह सिकोर्रे। हब सँकोचि दुवौ कर जोरे।।
कित यह रहसि जो आउब करना। ससुरेइ अंत जनम भरना।।
कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल।।
आपु आपु कहँ होइहिं परब पंखि जस डेल।।3।।

शब्दार्थ – हिंडोरी = झूलों पर, ताई तक, साईं = मालिक (पति), मोखूँ = मोक्ष, रहसि = रहस (क्रीडा), डेला = उला, डेला।

सन्दर्भ– पूर्ववत् ।

प्रसंङ्ग – जायसी ने लौकिक जगत् में ही जीवन की सम्पूर्ण कर्म साधना और ईश्वर साधना करने की सलाह इन पंक्तियों के माध्यम से देते हैं।

अर्थ– मिल कर सब हिंडोले पर झूल लें. हे भोली, अभी सुख का समय है. जब तक मायके में हैं तब तक झूला झूल लें. फिर पति झूलने नहीं देगा. ससुर ससुराल में रख लेगा और हम चाह कर भी मायके नहीं आ पाएँगी. ससुराल की धूप में यह छाँह नहीं मिलेगी. वहाँ सखियों के बिना महल में अकेले रहना होगा सास ननद भौं सिकोड़ेंगी और संकोच में दोनों हाथ जोड़कर रहना होगा. यहाँ से जाने के बाद ससुराल में ही आजीवन रहना होगा।

न तो मायके वापस आना होगा और न ससुराल में यह हँसी–खेल के मौके मिलेंगे पक्षियों की तरह बिछड़ने के बाद हम पता नहीं कहाँ होंगे।

विशेष – रस – श्रृंगार, छन्द दोहा चौपाई, भाषा अवधी, शब्दशक्ति– लक्षणा।

सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।।
ससि–मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।।
ओनई घटा परी जग छाँहा। ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ।।
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा।।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघघटा महँ चंद देखावा।।
दसन दामिनी, कोकिल भाखी। भौंहैं धनुख गगन लेइ राखी।।
नैन –खँजन दुइ केलि करेहीं। कुच–नारँग मधुकर रस लेहीं।।
सरवर रूप बिमोहा, हिये होलोरहि लेइ।।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि देइ।।4।।

शब्दार्थ– खोंपा = जूडा। छोरि = खोलकर । मोकराई = फैलाया।

अरधानी = सुगन्धि के लिए। ओनए = छाजाने से। राहाँ = रहुने द्य दिस्टि = दृष्टिं द्य विमोहा = मोहित हो गया । मकु = स्यात द्य मिसु = बहाने से।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ मलिक मोहम्मद जायसी विरचित महाकाव्य पद्मावत के ष्मानसरोवर–खण्डष् से उधृत हैं।

प्रसङ्ग – इस चरण में जायसी ने पद्मावती के मानसरोवर में स्नान करने का सुन्दर चित्रण किया है।

अर्थ– पद्मावती मानसरोदक (मानसरोवर) के किनारे आई और अपने जूड़े को खोल कर बालों को बिखरा दिया. पद्मावती का चन्द्रमा के समान मुख उसके मलयगिरी समान सुंदर–सुडौल देह पर सुशोभित हो रहा है. अंगों से मलयगिरी के चंदन की सुगंध आ रही है. मुख पर बिखरे हुए बाल यूं प्रतीत हो रहे हैं, जैसे नागिन ने चंदन की सुगंध से आकर्षित होकर उसे चारों ओर से घेर लिया है. ये केश मेघों के समान ऐसे छा गए कि समूचे संसार में छाया हो गई. मुख रुपी चंद्र के चारों ओर काले केश ऐसे लग रहे हैं, जैसे राहु चन्द्रमा की शरण में आ गया है. पद्मावती के सौन्दर्य ने सूर्य को दिन में ही छिपने को विवश कर दिया और चन्द्रमा (पद्मावती का मुख) तारों के साथ प्रकट हो गया. चकोर भी केशों से घिरे पद्मावती के मुख को देखकर यह सोचने लगा कि बादलों के बीच चाँद निकल आया है और सब कुछ भूल कर उसे देखने लगा. पद्मावती की दंत–पंक्तियाँ बिजली के समान चमक रही हैं और वाणी कोयल के समान मधुर है. उसकी भौंहें तो मानो आकाश से इन्द्रधनुष लेकर बनाई गयी हों. उसकी आँखें परस्पर क्रीड़ा करते दो खंजन पक्षियों की तरह हैं. उसके स्तन नारंगी के समान पुष्ट हैं और उन स्तनों के अग्रभाग श्यामल हैं ऐसा लगता है, जैसे काले भौंरे नारंगी के ऊपर बैठे उसका रसपान कर रहे हैं.

पद्मावती के सौन्दर्य को देखकर सरोवर (मानसरोदक) का ह्रदय भी हिलोरे लेने लगा और उसके पाँवों को स्पर्श करने के लिए अपनी लहरें उसकी ओर बढ़ाने लगा

विशेष – रस – संयोग श्रृंगार, छन्द दोहा, चौपाई, अंलकार रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान।

धरी तीर सब कंचुकि सारी। सरवर महँ पैठीं सब बारी।।
पाइ नीर जानौं सब बेली। हुलसहिं करहिं काम कै केली।।
करिल केस बिसहर बिस–हरे। लहरैं लेहिं कवँल मुख धरे।।
नवल बसंत सँवारी करी। होइ प्रगट जानहु रस–भरी।।
उठी कोंप जस दारिवँ दाखा। भई उनंत पेम कै साखा।।
सरवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैट लेइ तारा।।
धनि सो नीर ससि तरई ऊईं। अब कित दीठ कमल औ कूईं।।
चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौं, हो नाह।।

एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माँह।।5।।

अर्थ– पद्मावती और उसकी सखियों ने अपनी साड़ियाँ और अंगियाँ किनारे पर रखी और सरोवर में उतर गयीं. जैसे बेलें जल मिलने से खिल उठती हैं, वैसे ही सारी प्रसन्न होकर सरोवर में काम क्रीड़ा करने लगीं. उनके बिखरे हुए काले बाल सरोवर की लहरों के साथ लहरा रहे हैं. मुख रुपी कमलों को पकड़े होने के कारण वो लहरों के साथ बह नहीं पा रहे हैं. उनके यौवन का नव वसंत जैसे उनकों रस से भरे स्तनों के रूप में प्रस्फुटित हो रहा है. उनके अधर ऐसे हैं, मानो अनार और अंगूर में नई कोंपले आई हों. ऐसा लग रहा जैसे प्रेम की डाल फलों से लद कर झुक गई हो. सौंदर्य से परिपूर्ण इन स्त्रियों को पाकर सरोवर की खुशी इस संसार में समा नहीं रही है. ऐसा लग रहा है, जैसे आकाश से चाँद तारों को साथ लेकर सरोवर में स्नान करने आ गया. वह जल धन्य है, जिसमें चाँद और तारे उदित हुए हैं. अब इसमें कमल और कुमुदिनी के दर्शन कहाँ?

अपने चकवे से बिछड़ी चकवी पुकार करने लगी– हे नाथ, अब तुम कैसे मिलोगे ? एक चाँद आकाश का था जो रात में वियोग कराता था और अब दूसरा दिन में वियोग कराने के लिए जल में घुस आया है।

लागीं केलि करै मझ नीरा। हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा।।
पदमावति कौतुक कहँ राखी। तुम ससि होहु तराइन्ह साखी।।
बाद मेलि कै खेल पसारा। हार देइ जो खेलत हारा।।
सँवरिहि साँवरि, गोरिहि। आपनि लीन्ह सो जोरी।।
बूझि खेल खेलहु एक साथा। हार न होइ पराए हाथा।।
आजुहि खेल, बहुरि कित होई खेल गए कित खेलै कोई।।
धनि सो खेल खेल सह पेमा। रउताई औ कूसल खेमा।।
मुहमद बाजी पेम कै ज्यों भावै त्यों खेल।।
तिल फूलहि के सँग ज्यों होइ फुलायल तेल।।6।।

शब्दार्थ – मझ = मध्य में, कौतुक = देखने के लिए, साखी = साथी, बदि = बादी (शर्त), मेलि = लगाकर, रउताई = स्वामी होने का भाव, फूलायत = फूल की सुगन्ध वाला।

सन्दर्भ – पूर्ववत् ।

प्रसंङ्ग – कवि जायसी ने पद्मावती और सखियों के खेल के माध्यम से जीवन के खेल को सावधानी से खेलने का संकेत दिया है।

व्याख्या – सभी सखियाँ मानसरोवर के जल के मध्य क्रीड़ा करने लगी इस क्रिया को देख मानसरोवर के हंस लज्जित होकर किनारे जाकर बैठ गए। सखियों

ने पद्मावती को प्रेक्षक के रूप में खेल खेलने के लिए अलग रखा और कहा कि चन्द्रमा के समान तुम हम तारामण्डल के खेल की साक्षी बनो। सभी सखियों ने यह बाजी लगाकर खेल प्रारम्भ किया कि जो खेल में हार जाएगा उसे अपना हार देना पड़ेगा। साँवली ने साँवली को और गोरी ने गोरी को अपनी जोड़ी बनाकर साथ रख लिया। और परस्पर कहा कि बहुत समझ–बूझ कर खेल खेलना जिससे विपक्षी पक्ष से पराजय का मुँह न देखना पड़े। जायसी यहाँ जीवन के खेल को संयमित रूप से खेलने का संकेत भी देते हैं। सखियाँ कहती हैं, जो खेल आज अर्थात् जीवन के रहते खेल लेंगी वह दुबारा कहाँ सम्भव है यदि खेल समाप्त होने पर फिर कौन खेल पाता है। वह खेल धन्य है जो प्रेम के साथ खेला जाए उसी खेल में ठकुराई और अपनी कुषल क्षेम समाहित है। जायसी कहते हैं जीवन एक खेल ही है जीवन की वास्तविकता और अवास्तविकता को समझकर कार्य करना चाहिए तथा प्रेम से खेली गई बाजी को जैसे इच्छा हो खेला जा सकता है जिस प्रकार तिल और फूल के संयोग से उत्तम फुलैल तेल बनता है उसी प्रकार आत्मा जगत् जीवन के संसर्ग से ही परमात्मा तक पहुँच कर मुक्ति प्राप्त कर सकती है।

विशेष– रस – शान्त, छन्द दोहा, चौपाई, अलंकार तद्गुण उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यगुण प्रसाद, शब्दशक्ति लक्षण ।

सखी एक तेइ खेल ना जाना। भै अचेत मनि–हार गवाँना।।
कवँल डार गहि भै बेकरारा। कासौं पुकारौं आपन हारा।।
कित खेलै अइउँ एहि साथा। हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा।।
घर पैठत पूँछब यह हारू। कौन उतर पाउब पैसारू।।
नैन सीप आँसू तस भरे। जानौ मोति गिरहिं सब ढरे।।
सखिन कहा बौरी कोकिला। कौन पानि जेहि पौन न मिला?।।
हार गँवाइ सो ऐसै रोवा। हेरि हेराइ लेइ जौं खौवा।।
लागीं सब मिलि हेरै बूडि बूडि एक साथ।।
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ।।7।।

अर्थ– उनमे एक सखी को खेलना नहीं आता वह अपनी असावधानी के कारण अपना हार खो बैठती है. वह बेचौन होकर कमल नाल पकड़कर रोने लगती है– "मैं किससे अपना हार मांगूँ? मैं इनके साथ खेलने ही क्यों आई कि अपना हार खो बैठी. घर जाते ही जब घरवाले हार के बारे में पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूँगी?" उसकी सीप जैसी आँखों से आँसू गिरने लगे. ऐसा लग रहा, जैसे मोती गिर रहे हों सखियों ने समझाने की कोशिश की "अरी भोली कोयल, ऐसा कौन सा पानी होता, जिसमें हवा के कारण लहरें नहीं उठतीं अर्थात ऐसा कौन सा सुखी जीवन है, जिसमें दुःख के पल न हों हार गँवाने के बाद ऐसे ही रोने से क्या होगा? हार को तुम भी ढूंढो, हम भी ढूंढती हैं।

सभी सखियाँ एक साथ डुबकी लगाकर हार ढूँढने लगीं. उनमें से कोई मोती लेकर निकली तो किसी के हाथ सिर्फ घोंघा ही लगा।

कहा मानसर चाह सो पाई।पारस–रूप इहाँ लगि आई।।
भा निरमल तिन्ह पायँन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे।।
मलय–समीर बास तन आई। भा सीतल, गै तपनि बुझाई।।
न जनौं कौन पौन लेइ आवा। पुन्य–दसा भै पाप गँवावा।।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।।
बिगसा कुमुद देखि ससि–रेखा। भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।।
पावा रूप रूप जस चहा। ससि–मुख जनु दरपन होइ रहा।।
नयन जो देखा कवँल भा, निरमल नीर सरीर।।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन–जोति नग हीर।।8।।

शब्दार्थ– भा = हुआ। पुन्नि = पुण्य की । ततरवन = तत क्षण। उतिराना = तैर आया। निरमर = निर्मल ।

भावार्यः– मानसरोवर ने कहा मैं जिसे चाहता था, वह मुझे पा गई। पारस रूपी पद्मावती मेरे यहाँ आ पाई। उसके चरण स्पर्श से मैं निर्मल हो गया। उसके रूप दर्शन से मेरा भी स्वच्छ रूप हुआ। उसके शरीर से मलयानिल की सुगन्धि आयी, उसके स्पर्श से मैं भी शीतल हो गया और मेरा ताप बुझ गया। न जाने कौन सी वायु चली जो इसे यहाँ ले आयी, मेरी पुण्य की दशा हुई और पाप नष्ट हो गये। उसी क्षण शीघ्रता से हार उत्पर तैर आया और सखियों को मिल गया। उसे देख कर चन्द्रमा रूपी पद्मावती हँस पडी।

चन्द्रमारूप पद्मावती की मुस्कान देखकर कुमुदिनी रूप सखियाँ भी मुस्कराने लगीं। पद्मावती ने जहाँ–जहाँ जो– जो देखां वह सब उसके रूप के समान ही बना। अन्य वस्तुओं के रूप भी पद्मावती के मुख के समान हुए। इस तरह पद्मावती के मुख के लिए सारे पदार्थ मानो दर्पण हे रहे थे। सब मे पद्मावती का ही रूप चमकता था।

पद्मावती का मुख सरोवर की वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होकर दिखलाई देता था। कविवर जायसी यहाँ पदमावती की रूप– विशेषता प्रकट करते हैं। पदमावती के नेत्र सरोवर में कमलों के रूप में पतिबिम्बित थे। उसका शरीर ही सरोवर में प्रतिबिंबित निर्मल जल था। उसका हास ही मानो सरोवर में प्रतिबिम्बित हंस थे। उसके दाँत सरोवर में नग और हीरों के रूप में प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

विशेषताः–

1. यहाँ परमात्मा का विश्व – प्रतिबिम्बि भाव व्यक्त होता है।
2. पद्मावती के परमात्मा तत्व की चर्चा हुई है।

अध्याय – 8

सूरदास और उनका काव्य

हिंदी साहित्य के मध्यकालीन भक्ति–आंदोलन में जिन कवियों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा, गहन संवेदना और अनुपम काव्य–कला के माध्यम से जन–मानस को प्रभावित किया, उनमें सूरदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण है। वे कृष्णभक्ति की सगुण धारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं, जिनकी काव्य–साधना में भक्ति, प्रेम, करुणा और सौंदर्य का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। सूरदास ने अपने काव्य के माध्यम से न केवल भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप और लीलाओं का चित्रण किया, बल्कि मानव जीवन की सूक्ष्म भावनाओं को भी अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया।

सूरदास का जीवन और काव्य उस समय की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का सजीव दर्पण प्रस्तुत करता है। जब समाज में रूढ़ियाँ, अंधविश्वास और वर्ग–भेद की गहरी जड़ें थीं, तब भक्ति आंदोलन ने लोगों को एक सरल और सहज मार्ग प्रदान किया ईश्वर के प्रति निष्कपट प्रेम और समर्पण का मार्ग। सूरदास ने इसी भक्ति भावना को अपनाकर अपनी रचनाओं में कृष्ण के बाल–लीला, वात्सल्य–रस, श्रंगार–रस तथा गोपियों के प्रेम का अत्यंत प्रभावशाली और जीवंत चित्रण किया।

विशेषतः सूरदास की काव्य–प्रतिभा का उत्कर्ष उनके द्वारा रचित 'सूरसागर' में देखने को मिलता है, जो कृष्ण–भक्ति साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके बाल्यकाल, किशोर अवस्था तथा विविध लीलाओं का अत्यंत भावपूर्ण और कलात्मक वर्णन है। उनके काव्य में ब्रजभाषा की मधुरता, सरलता और प्रवाहमयता पाठकों को सहज ही आकर्षित करती है। भाषा की यह विशेषता उनके काव्य को जन–सामान्य तक पहुँचाने में अत्यंत सहायक रही है।

सूरदास की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने काव्य में केवल धार्मिक भावनाओं को ही नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों की गहराई को भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। यशोदा और कृष्ण के वात्सल्य संबंध, गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, तथा राधा–कृष्ण के दिव्य प्रेम का चित्रण उनके काव्य को भावनात्मक ऊँचाइयों तक पहुँचाता है। उनके पदों में भावों की सघनता, चित्रात्मकता और संगीतात्मकता का अद्‌भुत समन्वय है, जो उन्हें अन्य कवियों से विशिष्ट बनाता है।

अतः प्रस्तुत अध्याय में सूरदास के जीवन–वृत्त, उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं, विषय–वस्तु, भाषा–शैली तथा साहित्य में उनके योगदान का विस्तृत विवेचन किया जाएगा। साथ ही, उनके पदों के माध्यम से उनकी काव्य–प्रतिभा और भक्ति–भावना को समझने का प्रयास किया जाएगा, जिससे हिंदी साहित्य में उनके अद्वितीय स्थान का सम्यक् आकलन किया जा सके।

8.1 सूरदास का जीवन परिचय

सूरदास, हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति के भक्त कवियों में अग्रणी है। महाकवि सूरदास जी वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं। उन्होंने श्रंगार और शान्त रसों का भी बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। उनका जन्म मथुरा–आगरा मार्ग पर स्थित रुनकता नामक गांव में हुआ था। कुछ लोगों का कहना है कि सूरदास जी का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाद में वह आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 विक्रमी के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 विक्रमी के आसपास मानी जाती है। सूरदास जी के पिता रामदास गायक थे। सूरदास जी के जन्मांध होने के विषय में भी मतभेद हैं। आगरा के समीप गऊघाट पर उनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षा दे कर कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास जी अष्टछाप कवियों में एक थे। सूरदास जी की मृत्यु गोवर्धन के पास पारसौली ग्राम में 1563 ईस्वी में हुई।

ऐतिहासिक उल्लेख– सूरदास का ऐतिहासिक उल्लेख सूरदास के बारे में 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में थोड़ी–बहुत जानकारी मिल जाती है। 'आईना–ए–अकबरी' और 'मुंशियात अब्बुल फजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे काशी (वर्तमान बनारस) के कोई और सूरदास प्रतीत होते हैं। जनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। 'भक्तमाल' में सूरदास की भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा उनकी अंधता का उल्लेख है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार सूरदास आगरा और मथुरा के बीच साधु के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीला गान का उपदेश पाकर कृष्ण के चरित विषयक पदों की रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें यहाँ कीर्तन का कार्य सौंपा।

जन्म– सूरदास का जन्म कब हुआ, इस विषय में पहले उनकी तथाकथित रचनाओं, 'साहित्य लहरी' और 'सूरसारावली' के आधार पर अनुमान लगाया गया था और अनेक वर्षों तक यह दोहराया जाता रहा कि उनका जन्म संवत 1540 विक्रमी (सन 1483 ई.) में हुआ था, परन्तु विद्वानों ने इस अनुमान के आधार को पूर्ण रूप में अप्रमाणिक सिद्ध कर दिया तथा पुष्टिमार्ग में प्रचलित इस अनुश्रुति के आधार पर कि

सूरदास श्री वल्लभाचार्य से 10 दिन छोटे थे, यह निश्चित किया कि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ल पक्ष पंचमी, संवत 1535 वि. (सन 1478 ई.) को हुआ था। इस साम्प्रदायिक जनुश्रुति को प्रकाश में लाने तथा उसे अन्य प्रमाणों में पुष्ट करने का श्रेय डॉ. दीनदयाल गुप्त को है। जब तक इस विषय में कोई अन्यथा प्रमाण न मिले, हम सूरदास की जन्म–तिथि को यही मान सकते हैं।

जाति– सूरदास की जाति के सम्बन्ध में भी बहुत वाद–विवाद हुआ है। 'साहित्य लहरी' के उपर्युक्त पद के अनुसार कुछ समय तक सूरदास को 'भट्ट' या 'ब्रह्मभट्ट' माना जाता रहा। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इस विषय में प्रसन्नता प्रकट की थी कि सूरदास महाकवि चन्दबरदाई के वंशज थे, किन्तु बाद में अधिकतर पुष्टिमार्गीय स्रोतों के आधार पर यह प्रसिद्ध हुआ कि वे सारस्वत ब्राह्मण थे। बहुत कुछ इसी आधार पर 'साहित्य लहरी' का वंशावली वाला पद अप्रामाणिक माना गया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता में मूलतः सूरदास की जाति के विषय में कोई उल्लेख नहीं था, परन्तु गोसाई हरिराय द्वारा बढ़ाये गये 'वार्ता' के अंश में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कहा गया है। उनके सारस्वत ब्राह्मण होने के प्रमाण पुष्टिमार्ग के अन्य वार्ता साहित्य से भी दिये गये है।

काल–निर्णय– सूरदास के पिता रामदास गायक थे। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में भी मतभेद हैं। आगरा के समीप गऊघाट पर उनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षा देकर कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास 'अष्टछाप' के कवियों में से एक थे। सूरदास की मृत्यु गोवर्धन के पास पारसौली ग्राम में 1563 ईस्वी में हुई। उनकी जन्म–तिथि तथा उनके जीवन की कुछ अन्य मुख्य घटनाओं के काल–निर्णय का भी प्रयत्न किया गया है। इस आधार पर कि गऊघाट पर भेंट होने के समय वल्लभाचार्य गद्दी पर विराजमान थे, यह अनुमान किया गया है कि उनका विवाह हो चुका था, क्योंकि ब्रह्मचारी का गद्दी पर बैठना वर्जित है। वल्लभाचार्य का विवाह संवत 1560–61 (सन 1503–1504 ई.) में हुआ था, अतः यह घटना इसके बाद की है। 'वल्लभ दिग्विजय' के अनुसार यह घटना संवत 1567 विक्रमी के (सन 1510 ई.) आसपास की है। इस प्रकार सूरदास 30–32 वर्ष की अवस्था में पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए होंगे।

8.2 सूरदास की रचनाएँ

सूरदास जी हिन्दी साहित्य के सर्वोत्तम और उच्च कोटी के महाकवि थे। जिनका भगवान श्री कृष्ण में गहरी आस्था और विश्वास था। वे हमेशा श्री कृष्ण की भक्ति में लीन रहते थे, उन्होंने अपनी भक्ति भाव को अपने कृतियों में शानदार तरीके से दर्शाया है।

सूरदास जी भक्ति काल के सगुण धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। सूरदास जी की रचनाओं को जो भी पढ़ता है, श्री कृष्ण की भक्ति में डूबे बिना नहीं रह पाता है। सूरदास जी ने अपनी कृतियों में श्री नाथ जी के अद्भुत एवं सुंदर स्वरुपों का वात्सल्य, श्रंगार और शांत रस में अतिसुंदर वर्णन किया है। इसके साथ ही उन्होंने अपनी कृतियों श्री कृष्ण की लीलाओं और उनकी महिमा का दिल को छू जाने वाला मार्मिक वर्णन किया है।

सूरदास जी ने ब्रज भाषा का इस्तेमाल कर अपनी रचनाओं में भगवान श्री कृष्ण के हर स्वरुप का इतनी सजीवता से वर्णन किया है कि मानो कवि ने अपनी आंखों से नटखट कान्हा को देखा हो। सूरदास जी की रचनाओं में नंदकिशोर का ऐसा वर्णन उनके अंधेपन पर भी संदेह करता है।

सूरदास जी एक महान कवि ही नहीं बल्कि एक अच्छे संत एवं महान संगीतकार भी थे। वे अपने नाम की तरह ही सूर के दास ही थे, जिनके प्रेरणात्मक जीवन में कृष्ण की भक्ति और संगीत का सुर था।

सूरदास का मानना था कि, श्री कृष्ण की भक्ति और उनके प्रति सच्ची आस्था ही किसी भी व्यक्ति को मोक्ष दिलवा सकती है। वहीं सूरदास जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का प्रभाव सम्राट अकबर और महाराणा प्रताप जैसे महान शासकों पर भी छोड़ा था।

इसके अलावा हिन्दी साहित्य के महान कवि सूरदास जी ने अपनी रचनाओं में "भक्ति और श्रंगार" रस को मिलाकर संयोग–वियोग जैसा दिव्य वर्णन किया है, जो कि हर किसी के मन को भाव–विभोर कर देता है और भगवान के प्रति आस्था को और भी ज्यादा बढ़ा देता है।

फिलहाल भगवान की महिमा का ऐसा वर्णन सूरदास की तरह कोई सच्चा एवं विद्धंत भक्त ही कर सकता है।

अष्टछाप के कवियों में सर्वश्रेष्ठ सूरदास जी द्वारा रचित 5 प्रमुख ग्रंथ है। जिसमें ने उनके सूरसागर, साहित्य–लहरी और सूर सारावली के प्रमाण मिलते हैं। जबकि ब्याहलो एवं नल–दमयन्ती का कोई पुख्ता साक्ष्य नहीं मिला है। वहीं नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित हस्तलिखित किताबों की विवरण सूची में महान कवि सूरदास जी के करीब 16 ग्रन्थों का ही वर्णन किया गया है।

सूरदास जी की मशहूर कृति सूरसागर में लगभग एक लाख पद होने का दावा किया जाता है। जबकि अगर "सूरसागर" कृति की वर्तमान संस्करण की बात करें तो इसमें महज अब 5 हजार पद ही मिलते हैं। जबकि सूरदास जी की अन्य प्रसिद्ध रचना "सूरसारावली" को संवत् 1602 में महाकवि सूरदास जी द्वारा लिखा गया है जिसमें करीब 1107 छन्द बेहद शानदार ढंग से लिखे गए हैं। वहीं सूरदास जी की अन्य प्रसिद्ध रचनाओं में से एक साहित्य लहरी उनकी एक छोटी रचना है, जिसमें करीब 118 पद लिखे गए हैं, जिसमें श्रंगार रस का इस्तेमाल कवि ने बेहद

खूबसूरती से किया है। इसके अलावा सूरदास जी द्धारा यशोदा मैया के पात्र के शील गुण पर लिखे चित्रण काफी प्रशंसनीय हैं। सूरदास जी ने अपनी कविताओं में ऐतिहासिक जगहों में प्राचीन आख्यान का भी उल्लेख किया है।

आपको बता दें कि सूरदास जी ने अपने ज्यादातर पदों में ब्रज भाषा का ही इस्तेमाल किया है, क्योंकि सूरदास जी की ब्रज भाषा में बेहद अच्छी पकड़ थी, सूरदास जी की कुछ मशहूर कृतियों का संक्षिप्त वर्णन हम नीचे कर रहे हैं, जो कि इस प्रकार है–

सूरसागर– सूरसागर, महाकवि सूरदास जी द्धारा कृत सबसे मशहूर ग्रंथों में से एक है। अपनी इस कृति में सूरदास जी ने श्री कृष्ण की लीलाओं का बेहद खूबसूरती के साथ वर्णन किया है। आपको बता दें कि महाकवि का यह ग्रंथ भक्तिरस में डूबा हुआ एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें करीब सवा लाख पदों के लिखे होने का दावा किया जाता हैं, हालांकि वर्तमान में सूरसागर में महज 7 से 8 हजार ही पद बचे हुए हैं।

सूरदास जी की इस महान कृति की अलग–अलग स्थानों पर करीब 100 से ज्यादा कॉपियां प्राप्त हुईं हैं। सूरसागर की जितनी भी कॉपियां हासिल हुईं हैं, वे सभी साल 1656 से लेकर 19वीं शताब्दी के के बीच की हैं। सूरदास जी की इस कृति में भक्ति रस की प्रधानता है।

'सूरसागर' नाम से सूचित होता है कि यह सूर की सम्पूर्ण रचनाओं का संकलन है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास की वार्ता के प्रसंग (तीन) के अनुसार 'सूरदास जी ने सहस्रावधि पद किये हैं ताको सागर है यह सो सब जगत में प्रसिद्ध भये' अर्थात् सूरदास ने हजारों की संख्या में पद रचे थे, उन्हीं को 'सूरसागर' में संकलित किया गया है। सूरदास ने अपनी रचना (भागवत) के आधार पर की थी। परन्तु सूरसागर का सूक्ष्म अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि 'सूरसागर' का मुख्य वर्ण्य–विषय ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की लीला का गायन है और यह गायन श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा गमन तथा द्वारका–गमन और फिर कुरुक्षेत्र में ब्रजवासियों से भेंट करने तक की समस्त घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन करता है। इसके अतिरिक्त विनय के पद भी 'सूरसागर' का एक प्रमुख अंग है। सूर की रचना का तीसरा मुख्य अंग राम–कथा संबंधी पदों का है। 'सूरसागर' के शेष अंश में, जिसकी पद संख्या अत्यंत न्यून है, 'भागवत' के विविध स्कन्धों में प्राप्त भक्ति भावसम्बन्धी कथाओं का वर्णन हुआ है। सूरदास ने कृष्ण–लीला का गायन यद्यपि 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित कृष्ण–लीला के आधार पर किया परन्तु यह आधार उन्होंने केवल सूत्र रूप में ही ग्रहण किया। विविध प्रसंगों के विवरणों में उनकी मौलिक कल्पना स्पष्ट प्रकट हो जाती है, साथ ही उन्होंने ऐसे अनेक नवीन प्रसंगों की उद्भावना की, जिनका भागवृत में संकेत भी नहीं मिलता।

यद्यपि कृष्ण–लीला के वर्णन में उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भावों

में ही अपनी तल्लीनता प्रकट की है परन्तु दैन्य भाव इन भावों का विरोधी नहीं है। वस्तुतः दैन्य भक्ति का मूल भाव है, प्रत्येक भाव अनुभूति की चरम स्थिति में दैन्य समन्वित हो जाता है, जैसा कि सूर के सभी भावों के विरह–संबंधी पदों से स्पष्ट सूचित होता है। प्रपत्ति अर्थात् आत्मसमर्पण की भावना दैन्यप्रधान विनय के पदों में अत्यन्त प्रत्यक्ष और अपने शुद्ध रूप में प्राप्त होती है। सत्संग की महिमा तथा हरि–विमुखों की निन्दा की गयी है। भक्ति के लक्षणों का भी यत्र–तत्र उल्लेख है, जिनमें नाम–स्मरण सर्वप्रमुख है परन्तु वस्तुतः भक्ति का मूल लक्षण प्रेमभाव है, जो इन पदों में दैन्यसमन्वित होकर दास्य–रति के रूप में प्रकट हुआ है।

'सूरसागर' के स्फुट पदों में राम–कथा सम्बन्धी पद भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें राम–जन्म, बाल–केलि, धनुभंग, केवट–प्रसंग, पुरवधू–प्रश्न, भरत–भक्ति, सीताहरण पर राम–विलाप, हनुमान द्वारा सीता की खोज, हनुमान–सीता संवाद, रावण–मन्दोदरी संवाद, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम–विलाप, हनुमान का संजीवनी लाना, सीता की अग्नि परीक्षा और राम का अयोध्या प्रवेश करने के ये मार्मिक स्थल हैं, जिन पर सूरदास का ध्यान गया है। सीता उद्धार पर विशेष ध्यान देने के कारण लंका–काण्ड के बाद सुन्दर–काण्ड का विस्तार सबसे अधिक है। उन्होंने राम के शौर्य, पौरुष आदि का उतनी तन्मयता से वर्णन नहीं किया, जितनी तन्मयता और आत्मीयता के साथ सीता और लक्ष्मण के सम्बन्ध में उनकी वेदना का चित्रण किया है, फिर भी सूरदास के राम मर्यादा का सदैव पालन करते हैं। राम कथा–सम्बन्धी पदों की भाव–धारा में भी दैन्य की ही प्रधानता है।

'सूरसागर' में कृष्ण–लीला की दो धाराएँ प्रवाहित होती देखी जाती हैं– एक में कृष्ण के विस्मयकारी संहार कार्यों का वर्णन है, और दूसरी धारा में कृष्ण के शुद्ध परमानन्द रूप की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें कृष्ण की वे सम्पूर्ण लीलाएँ आ जाती हैं, जिन्हें सुख–क्रीड़ाएँ कह सकते हैं और जो वस्तुत 'सूरसागर' की उत्कृष्ट भाव–संपत्ति का निर्माण करती हैं। कृश्ण की इन क्रीड़ाओं का भावात्मक विकास तीन दिशाओं में होता है। एक ओर उनके द्वारा यशोदा, नन्द तथा ब्रज के अन्य वयस्क नर–नारियों के हृदय में कृश्ण के प्रति अनुकम्पा रति की विकास–वृद्धि होती है, दूसरी ओर कृष्ण के सखाओं के हृदय में उनके प्रति प्रेम–रति का उदय होता है तथा तीसरी ओर ब्रज की कुमारी, किशोरी और नवोढ़ा गोपियों के मन में मधुर अथवा कान्ता रति का उदय और उत्तरोत्तर विकास होता है। संयोग के सुख तथा वियोग के दारुण दुःख, दोनों का चित्रण करने में सूरदास ने असंख्य मौलिक प्रसंगों की उद्भावना कर तथा मानव मन में उदय होने वाले असंख्य मनोरागों का बिम्बात्मक चित्रण कर अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। यदि महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा में बताये गये लक्षणों का विचार न किया जाय तो सूरदास के इस गीति–प्रबन्ध को महाकाव्य कहा जा सकता है। इस काव्य की विलक्षण विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न कथानक पृथक व्यक्तित्व रखते हुए भी सम्पूर्ण काव्य के अभिन्न

अंग हैं तथा एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसकी एक अन्य विशेषता यह भी है कि गीति–शैली में रचे जाने के कारण इसमें गीति और प्रबन्ध के परस्पर विरोधी लगने वाले तत्त्व समन्वित होकर एकाकार हो गये हैं।

सूरसारावली– हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास जी द्धारा रचित सूरसारावली उनके प्रसिद्ध ग्रंथों में से एक है, जिसमें उन्होंने 1107 छंदों का वर्णन शानदार तरीके से किया है।

आपको बता दें कि महाकवि सूरदास जी ने अपने इस मशहूर ग्रंथ की रचना अपनी वृद्धावस्था में की थी, जब वे 67 साल के थे, तब उन्होंने सूर सरावली को लिखा। इतिहासकारों के मुताबिक सूरदास जी ने अपनी इस प्रसिद्ध कृति को 1602 संवत में लिखा था।

सूरदास जी का यह ग्रंथ एक "वृहद् होली" गीत के रूप में रचित है। इस ग्रंथ में सूरदास जी का श्री कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम और उनकी गहरी आस्था देखने को मिलती है।

'सारावली' में सार और सरसी नाम के 1107 छन्द हैं। प्रारम्भ में पुरुषोत्तम के नित्य विहार का उल्लेख करके सृष्टि विस्तार का संक्षेप में कथन हुआ है। सृष्टि रचना को कवि ने होली खेलने के रूप में प्रस्तुत किया है। चौबीस अवतारों का संक्षेप में वर्णन करते हुए रामावतार का विस्तार से वर्णन किया गया है। रामावतार के उपरान्त कृष्णावतार की भूमिका देते हुए कृष्ण लीला का क्रमिक वर्णन हुआ है। कृष्ण लीला के वर्णन में 'सूरसागर' की तुलना में 'सारावली' में अनेक नवीन बातें पाई जाती हैं। ग्रन्थ के अन्त में दिये हुए 'इति श्री सूरदास जी कृत संवत्सर लीला तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र' समाप्त कथन से सूचित होता है कि 'सूरसागर' का सार देने के अतिरिक्त इस रचना का उद्देष्य संवत्सर–लीला का वर्णन करना भी है। पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में वार्शिक व्रतोत्सवों की सेवा को ही संवत्सर–लीला की सेवा कहा गया है। 'सूरसागर सारावली' की रचना का उद्देश्य संवत्सर के व्रतोत्सवों की कृष्ण–लीला के आधार पर सूची देना ही है। भाषा और शैली की दृष्टि से 'सारावली' का अधिक महत्त्व नहीं है। परन्तु पुष्टिमार्ग में उसका सांप्रदायिक महत्व असंदिग्ध है।

साहित्य–लहरी– साहित्यलहरी सूरदास का जी का एक अन्य प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पद्य लाइनों के माध्यम से कवि ने अपने प्रभु श्री कृष्ण की भक्ति की कई रचनाएं बेहद शानदार ढंग से प्रस्तुत की हैं।

'साहित्यलहरी' की प्रामाणिकता में सन्देह है। 'साहित्य लहरी' के सभी पदों में सूर, सूरदास, सूरज आदि कवि छापें प्रयुक्त हुई हैं, जिससे यह समझा गया कि यह रचना प्रसिद्ध कवि सूरदास की ही है। इसके एक पद में कवि ने अपना परिचय देते हुए अपनी लम्बी वंशावली दी है। कवि ने अपना नाम सूरजचन्द्र बताते हुए अपने

पूर्वजों में चन्दबरदाई का उल्लेख किया है। 'साहित्य लहरी' के वर्ण्य–विषय, उसके दृष्टिकोण, उसकी भाषा–शैली आदि के आधार पर यह रचना और भी संदिग्ध हो जाती है। इसका रचनाकाल 18 वीं शताब्दी के पहले नहीं माना जा सकता। 'साहित्य लहरी' का वर्य विषय नायिका–भेद, अलंकार अथवा किसी–न–किसी काव्यांग का लक्षण और उदाहरण है। न तो लक्षणों और उदाहरणों की दृष्टि से उसका कोई महत्त्व है और न भाषा–शैली और काव्य–कला की दृष्टि से।

सूरदास जी की यह रचना एक लघु रचना है, जिसमें 118 पद लिखे गए हैं। वहीं इस ग्रंथ की सबसे खास बात यह है कि साहित्यलहरी के सबसे आखिरी पद में अपने वंशवृक्ष के बारे में बताया है। सूरदास जी के इस प्रसिद्ध कृति में श्रंगार रस की प्रधानता हैं।

नल–दमयन्ती– नल–दमयन्ती भी महाकवि सूरदास जी की मशहूर कृतियों में से एक हैं, इसमें कवि ने श्री कृष्ण भक्ति से अलग एक महाभारतकालीन नल और दमयन्ती की कहानी का उल्लेख किया है।

ब्याहलो– ब्याहलो, सूरदास जी का एक अन्य मशहूर ग्रंथ है, जो कि उनका भक्ति रस से अलग है। फिलहाल, महाकवि के इस ग्रंथ का कोई पुख्ता प्रमाण नहीं मिलता है।

8.3 सूरदास काव्य की भाषा शैली

रचना का सबसे सृजनात्मक पक्ष भाषा है। समर्थ भाषा की अभिव्यक्ति से कोई भी काव्य या रचना कालजयी बनती है। सूर की कविता का सबल पक्ष उनकी भाषा है। भावों के अनुकूल काव्य–रूप और काव्य–भाषा का चुनाव सूर के काव्य का वैशिष्ट्य है। ब्रजभाषा में निहित संगीतात्मकता, गीतात्मकता और सृजनात्मकता की तलाश कर सूर ने अपनी रचनाओं में सफलता से प्रयोग किया है। सूरदास ने कबीर की भाँति न संस्कृत की श्रेष्ठता को नकारा, न ही लोकभाषा के यथारूप को ही स्वीकार किया, बल्कि इन दोनों के बीच में भाषाई संतुलन स्थापित किया। यहाँ हम सूर की रचनाओं के काव्य–रूप और काव्य–भाषा का विवेचन विश्लेषण करेंगे।

सूरदास की रचनाओं का काव्य–रूप– काव्य–रूप, काव्य के अभिव्यंजना पक्ष का सबसे सबल पक्ष है। यह कविता की रचना प्रक्रिया के साथ उसके रचना–दृष्टि की ओर भी संकेत करता है। कविता में जितना महत्त्व अनुभूति का है, उतना ही महत्त्व अभिव्यक्ति का भी है। भाषा, छन्द, अलंकार, गीत और संगीत की सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही अनुभूति के साथ कविता की संगति बनाते हैं। कविता में इनका समानुपातिक सम्बन्ध और योगदान होता है। कविता के काव्यरूप में अनुभूति और अभिव्यक्ति का यही सामंजस्य होता है। सूर की कविता भी इसी अनुभूति एवं अनुभवों का बिम्ब है। जहाँ चारित्रिक गुण भी सहज रूप में प्रकट होते हैं।

सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य–लहरी का काव्यरूप– सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ तीन हैं– सूरसागर, सूरसारावली, और साहित्य–लहरी। सूरसागर

सूर की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है, सूरसारावली और साहित्य–लहरी इसी के पूरक हैं। साहित्य–लहरी तो सूरसागर के खास अंशों का संग्रह है।

काव्य–रूप के सृजन में अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते हैं– **बाह्य,** जिसमें संरचना और शैली मुख्य हैं और **आन्तरिक** तत्त्वों में लय, छन्द, बिम्ब एवं प्रतीक मुख्य हैं। काव्य–रूप कविता के इन्हीं अनुभूति और अभिव्यक्ति के समन्वय से निर्मित होता है। सृजनशील कवि काव्य–शास्त्र के बँधे–बँधाए मानदण्डो से मुक्त होकर अपनी काव्य अनुभूति के अनुकूल अभिव्यक्ति के नए प्रयोग करता है। हर महान कवि काव्य संवेदना के साथ काव्य–रूप का भी विस्तार करता है।

सूरदास की सबसे महत्त्वपूर्ण कृति सूरसागर है। सूरसागर अपने सम्पूर्ण रचाव में एक 'महाकाव्य' की समस्त विशेषताओं को समेटे हुए है। 'महाकाव्य' की संरचना युग और परिवेश के अनुरूप बदलती रही है। भारतीय काव्य–परम्परा में वाल्मीकि के रामायण से लेकर आधुनिक कविता में कामायनी के महाकाव्यत्व की कसौटी एक–सी नहीं हैं। महाकाव्य के आन्तरिक और बाह्य नियामक तत्त्वों के आधार पर सूरसागर 'महाकाव्य' की श्रेणी में आता है। यह जीवन के सामूहिक भाव और अनुभूतियों का 'महाकाव्य' है। काव्य–शास्त्र की मान्य धारणाओं को भी वह अपनी सम्पूर्णता में पूरा करता है।

'महाकाव्य' होने के बारे में मैनेजर पाण्डेय का यह कथन उल्लेखनीय है– ''सूरसागर के काव्य–रूप की यह विशेषता है कि वह अपनी सम्पूर्णता में एक महाकाव्य है, उसके भीतर अनेक खण्डकाव्यों का नियोजन है, उसके सन्दर्भ सापेक्ष पद गेय गीत के लक्षणों से युक्त हैं और विनय के पद विशुद्ध चिन्तनमूलक अन्तवृत्ति निरूपक गेय मुक्तक हैं। गीतात्मकता, प्रबन्धात्मकता सूरसागर के काव्य–रूप की अपनी मौलिक विशेषता है। संगीत सूरसागर के निर्माण में नियामक तत्त्व हैं। सूरसागर में प्रबन्ध का आधार लोक–जीवन में प्रचलित कृष्ण–कथा है, इसमें कथा की पुर्नरचना और प्रगति की तन्मयता की अभूतपूर्व एकता है, इसलिए पाठक कथारस और अनुभूति की तीव्रता का एक साथ अनुभव करते हैं।''

काव्य–शास्त्रीय दृष्टि से सूरसागर में नायक श्रीकृष्ण हैं, जिनके व्यक्तित्व में ईश्वर और मानव का अद्वैत भाव है। अंगीरस शृंगार है। बीज भाव 'प्रेम' है। प्रकृति का मनोहारी चित्रण है। शैली की दृष्टि से सूरसागर को 'गीतात्मक महाकाव्य' कहा जा सकता है। लोक–गीत और शास्त्रीय–संगीत की राग–रागीनियों को इसमें विन्यस्त किया गया है। सूरदास के आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और बृजेश्वर वर्मा सूरसागर को कृष्ण चरित का महाकाव्य कहते हैं।

सूर–सारावली में कुल मिलाकर 1107 युग्म हैं। अन्तिम पंक्तियाँ बड़े महत्त्व की हैं। इन पंक्तियों से सूर के दीक्षाकाल, कविकर्म, लीलागान–तत्त्वगान, फलश्रुति का संकेत किया गया है। सूरसारावली एकलक्ष्य पदबन्ध वाली हरि–लीला का सार है। सार लिखने की यह परम्परा भारतीय वांग्मय से जुड़ी है, सूरसारावली की रचना

स्कन्धात्मक क्रम से है, जबकि सूरसागर में लीला–क्रम को महत्त्व दिया गया है। यह रचना सूरसागर का सार होते हुए भी एक स्वतन्त्र रचना की तरह है। भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से यह रचना सूर की ही है। यह रचना आचार्य वल्लभ के पुरुषोत्तमसहस्रनाम की रचना पद्धति की तरह है। इसी से प्रेरित होकर यह रचना रूपायित हुई।

साहित्य–लहरी का काव्य–रूप दृष्टि–कूट के मुक्तक पदो के लिए प्रसिद्ध है। इन पदों में चमत्कारिकता और दुरूहता अधिक है। भक्त कवियों ने भक्तिभाव के लिए साधारण गेय शैली अपनायी है और रहस्यात्मक भावों के लिए दृश्टि–कूट षैली को अपनाया है। 'दृष्टि–कूट' की यह शैली सिद्धों, नाथों, और कबीर की कविता से होते हुए आगे विकसित हुई। सूर ने इस परम्परा से जुड़ते हुए भी इसमें मौलिकता के साथ इसको विरह और संयोग के पदों में अपनाया है। इन पदों को 'सहज समाधि' का पद कहा जाता है।

भ्रमरगीत का काव्य–रूप– भ्रमरगीत को कुछ आलोचक खण्डकाव्य मानते हैं तो कुछ उसे स्वतन्त्र रूप से लिखे मुक्तक प्रगीतों का संकलन मानते हैं। विदित है सूर ने भ्रमरगीत में विभिन्न प्रकार के काव्य–रूपों और काव्य–प्रकारों का प्रयोग किया है। भ्रमरगीत में गीत, संगीत और नृत्य कला की शैली का सृजनात्मक प्रयोग सूर ने सफलता के साथ किया है। भ्रमरगीत कई समन्वित काव्य–रूपों की रचना हैं। भ्रमरगीत मूलतः प्रगीतात्मक काव्य है। गीत के पहले टेक में गीत का सार सूक्ति परक ढंग से कह दिया जाता है फिर सम्पूर्ण पद में उसका विस्तार किया जाता है।

इस प्रक्रिया में गीत की कथात्मकता का विस्तार होता चलता है। कहीं–कहीं इस रचना–प्रक्रिया का अतिक्रमण होता है, लेकिन इसी अतिक्रमण में सूर की रचनात्मकता का दर्शन होता है। भ्रमरगीत के पदों को पढ़ने के बाद यह मुक्तक परम्परा की रचना की तरह लगता है लेकिन भ्रमरगीत अपने सम्पूर्ण रचाव में एक कथा की एकान्विति की तरह है। कथा का यह क्रम स्वतन्त्र कथा–काव्य में रूपायित होता है। भ्रमरगीत की संवाद शैली 'उद्धव–गोपियों' के वाद–विवाद के बाद संवाद में परिणत होती है फिर संवाद के बाद वाद–विवाद का रूप उपस्थित होता है। उद्धव के एक संवाद के उत्तर में गोपियाँ अनगिनत प्रतिसंवाद करती हैं। उद्धव के संवाद में तर्क और ज्ञान का आधिक्य है तो गोपियों के संवाद में लोकानुभव और लोक–जीवन का तर्क है जिसमें सहृदयता और भावुकता के साथ वाक चातुर्य की कला है। गोपियों के संवादो में अधिक कविताई है। सहृदयता और वाग्विदग्धता के इस संयोजन से गोपियों के सामने उद्धव फीके नजर आते हैं।

भ्रमरगीत एक सफल गीतिकाव्य है। गीतिकाव्य की सारी संवेदना भ्रमरगीत में व्याप्त है। सूर की निजता, संवेदनषीलता और प्रेम की आकुलता गोपियों के बहाने भ्रमरगीत में प्रकट होती है। भावों के अनगिनत रूप गीत–संगीत और विभिन्न रागों में मिलकर भ्रमरगीत की काव्य–संवेदना को उदात्त काव्य–रूप बना देता है। भ्रमरगीत में

लोक–गीत के तत्त्वों का मिश्रण कर सूर ने इसमें विशिष्ट वातावरण का निर्माण किया है।

भ्रमरगीत एक विरह काव्य है, लेकिन यहाँ विरह का रोना नहीं है। गोपियाँ कृष्ण से भले दूर हों, लेकिन वह कृष्ण की उपस्थिति को सदैव अपने हृदय में महसूस करती हैं। विरह को उन्होंने जीवन का स्थायीभाव बना लिया है जिसमें वह किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करना चाहती, फिर चाहें कृष्ण हो या उनके द्वारा भेजे गए उद्धव। भ्रमरगीत में भ्रमर के प्रतीक के रूप में कृष्ण, उद्धव, भ्रमर, भ्रमित करने वाला और प्रेमी का आशय प्रकट होता है। 'भ्रमर' मूलतः सामन्ती प्रवृत्ति का द्योतक है। जब कि गोपियाँ लोक–समूह या जन–समूह की द्योतक हैं।

सूरदास की काव्यभाषा– भाषा रचना का सबल और सृजनात्मक पक्ष है। समर्थ रचनाकार भावों के अनुकूल भाषा का सृजन करता है। काव्यभाषा में लोक और शास्त्र के सफल सामंजस्य से सूर ने श्रेष्ठ काव्य का रूपायन किया है। चाहे गोपियों का उद्धव पर किया गया व्यंग्य हो, यशोदा और कृष्ण के बीच के प्रेम एवं खीज का वर्णन हो, भाषा अपने सहज रूप में अभिव्यक्त होती है। लोकभाषा से निकटता ने सूर को काव्यगत दुरूहता से मुक्त रखा है। इतना ही नहीं उन्होंने ब्रजभाषा को कृष्ण–कथा की गीतात्मक अभिव्यक्ति के योग्य बनाया। सुरों एवं रागों में तराशकर कविता को सहज लोककण्ठ तक पहुँचाया। चूंकि सूरदास मूलतः भजनानन्दी थे, उन्हें हर रोज मन्दिर में कीर्तन हेतु पद की रचना करनी थी इसलिए पदों में गीतात्मकता का यह अद्‌भुत संयोजन कोई विस्मय की बात नहीं है। उन्होंने ब्रजभाषा में निहित लोकसंगीत के तत्त्व से अपने पदों को इस प्रकार संयोजित किया है मानो ब्रजभाषा और संगीत की भाषा का भेद मिट गया हो। हालाँकि उनकी भाषा रागबद्ध है, जिसमें केदार, सोरठा, कैफी, सारंग, कान्हरो, जैतश्री, रामकली आदि प्रमुख राग हैं। तुकों की सटीक योजना भी सूर की भाशा को संगीतधर्मी बनाती है।

ब्रजभाषा की सृजनात्मकता– सूरदास की काव्य–भाषा ब्रज है। सूर की काव्यभाषा का निर्माण शास्त्र और लोक के सहज समन्वय से हुआ है। सूर की ब्रजभाषा में जीवन व्यवहार की, सामाजिक जीवन के विविध सन्दर्भों की और सूचनाओं की सम्पदा है। उनकी काव्य–भाषा में उस युग का समाज और संस्कृति का दर्शन होता है। सूरदास ने राधा–कृष्ण की पौराणिक कथा की जगह लोक में प्रचलित कथा का संयोजन सूरसागर में अधिक किया है। लोक की इस प्रेम–कथा को लोक भाषा में सूर ने ऐसा प्रस्तुत किया कि वह जन–जन में व्याप्त हो गयी। सूर के काव्य से ब्रजभाषा की काव्य परम्परा में सृजनात्मक शक्ति पैदा हुई। सृजनात्मकता का यह रंग शब्द–चयन, गीत–संगीत और वचन–वक्रता में दिखाई देता है।

आचार्य शुक्ल के षब्दों में ''चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है, जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है। पहली

साहित्य–रचना और इतनी प्रचुर प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण कि अगले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती है।''

सूर ने अपने काव्य में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह उस क्षेत्र की जन–भाषा या लोक–भाषा थी। लोक–भाषा को सरस और संगीतमय बनाकर इतना समृद्ध कर दिया कि ब्रजभाषा का काव्य–सौष्ठव देखते ही बनता है। ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में रूपान्तरित करने का काम सूर ने ही किया।

हरबंश लाल शर्मा सूर की काव्य भाषा की साहित्यिकता के बारे में लिखते हैं, ''जो कोमलकान्त पदावली, भावानुकूल शब्द–चयन, सार्थक अलंकार योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता और सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्वप्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया।''

सूर ने ब्रजभाषा में निहित लोक संगीत और गीत के तत्त्वों को पदों में सहजता से विन्यस्त कर दिया है। गीतात्मकता और संगीतात्मकता से सूर ने काव्यभाषा में नया आयाम रचा। लोक के सांस्कृतिक तत्त्वों से सूर अपनी काव्य–भाषा की अनुभूति को समृद्ध करते हैं। लोक–जीवन का यह रंग काव्य–भाषा में होली, सावन और अन्य पर्वों और त्योहारों के वर्णन में दिखाई देता है।

उड़त गुलाल लाल भए बादर
रंगि गए सिगरे अटा अटारी।

सूर की काव्य भाषा– रूपक प्रधान भाषा है। उनके काव्य के रूपक का आधार विस्तृत है। प्रकृति, मनुष्य, समाज, और लोक–संस्कृति इसके मुख्य स्रोत हैं। उनके भाषा के रूपक प्रधान होने की बात करते हुए।

मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, ''सूरदास की काव्य–भाषा रूपक प्रधान भाषा है। यहाँ रूपक केवल अलंकार मात्र नहीं है। भाषा का रूपात्मक चरित्र एक विशेष प्रकार की चिन्तन पद्धत्ति का लक्षण है। चूँकि भाषा में ही चिन्तन सम्भव है इसलिए भाषा का स्वरूप चिन्तन के स्वरूप को जाहिर करता है। सूरदास के रूपक प्रधान या लाक्षणिक चिन्तन के अनुरूप ही उनकी काव्य–भाषा की संरचना निर्मित हुई है। इसी रूपक प्रधान भाषा में वे जीवन के यथार्थ, अनुभूति, विचार आदि की पुनर्रचना और अभिव्यक्ति करते हैं। वे राधा और कृष्ण के चरित्र, व्यवहार सौन्दर्य, भाव आदि की व्यंजना भी लाक्षणिक भाषिक संरचना में ही करते हैं। भ्रमरगीत में भावों की गहराई और वैचारिक द्वन्द्वों की जटिलता की अभिव्यक्ति रूपक प्रधान भाषा में हुई है। सूरदास रूपक प्रधान चिन्तन के सहारे ही अलंकारों का प्रयोग करते हैं और बिम्ब, प्रतीक, अन्योक्ति आदि की रचना भी करते हैं। इस पद्धति से काव्य–भाषा में वाग्विदग्धता, उपचार वक्रता और अभिव्यक्ति के सौन्दर्य का विकास हुआ है।''

सूर की काव्य–भाषा में अपने युग के सामाजिक सरोकार की छाया है, तो

उस पर विचार और दर्शन का भी प्रभाव है। सूर की काव्य–भाषा का सौन्दर्य, ज्ञान, विचार और भाव–पक्ष एक दूसरे से जुड़े हैं। ये सभी मिलकर सूर के काव्य की अभिव्यक्ति पक्ष को विशिष्ट बनाते हैं।

आंचलिक और लोक–भाषा के शब्दों का प्रयोग सूर के काव्य–भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है। आंचलिक शब्दों को भाव और सौन्दर्य तत्त्व से सुसज्जित कर सूर जब कविता रचते हैं। तब ऐसा लगता है, जैसे ब्रज का सम्पूर्ण लोक उसमें जाग्रत हो गया है।

जोरति छाक प्रेम सौ भैया
ग्वालनि बोलिलियौ अधजेंवत, उठि दोउ भैया।
तबहिं तै मैं भोजन्ह कीन्हौ, चाहति दियौ पठाई।

तद्भव शब्दों का प्रयोग सूर के काव्य की विशिष्टता है। पूरी ध्वन्यात्मकता से यहाँ इसका प्रयोग किया गया है।

आवहुँ कान्ह साँझ के बेरिया।
गाइनि माँझ भए हौं ठाढैढ कहति जननि यह बड़ी कुबेरिया।
सूर स्याम कहत–कहत ही बस करि लीन्हे आइ निदेरिया।

सूर–काव्य में तद्भव और तत्सम शब्दावली का प्रयोग भावों और प्रसंगों के अनुकूल हुआ है। कृष्ण–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए तत्सम के पारम्परिक रूपों का प्रयोग है। वहीं बाल लीला के वर्णन में तद्भव शब्दों की अधिकता है। अर्थ की गत्यात्मकता और स्थिरता द्वारा भी तत्सम–तद्भव शब्दों का चुनाव सूर ने बड़ी सजगता से किया है। तत्सम शब्दों के प्रयोग का उदाहरण–

सोभा कहत कहे नहिं आवै।
अँचवत अति आतुर लोचन पुट मन न तृप्ति कौ पावै।।
सजल मेघ घनस्याम सुभग बपु तडित न बन मातै
मैया बहुत बुरौ बलदाऊ
कहन लग्यौ बन बडौ तमासौ सब मोड़ा मिलि आई।
मोहूँ कौ चुचकारि गयौ लै जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चल्यों कहि गयौ उहाँ ते काटि खाई रे हाऊ।।

पहले पद में तत्सम–बहुल शब्दों का और दूसरे पद में तद्भव शब्दों का विरल प्रयोग है। परिवेश और संवेदना की दृष्टि से तत्सम, तद्भव का सार्थक प्रयोग अधिक काव्यात्मक बन गया है।

बिम्ब–प्रयोग– में सूर अग्रणी कवि हैं। गतिशील और गत्यात्मक भावों को बिम्ब द्वारा व्यक्त करना, सम्पूर्ण अर्थ संश्लेषण करता है। जटिल और सूक्ष्म भावों को प्रगट करने के लिए सूर ने अपने काव्य में कई जगह बिम्बों का सफल प्रयोग किया

है। भ्रमरगीत के जिस प्रसंग में गोपियाँ उद्धव के योग को अस्वीकार करने के लिए मार्मिक भावों को व्यक्त करती हैं, वहाँ बड़ी सजगता दिखती है। ऐसी सजगता जिसमें अस्वीकार हो, लेकिन उद्धव का अपमान न हो। ऐसे भावों को सूर ने विलक्षणता से व्यक्त किया है–

जो हितकरि पढ्यौ मनमोहन
से हम तुमकौं दीनौ।
सूरदास ज्यों बिप्र नारियर
करहीं बन्दन कीनौ।।

'बिप्र नारियर' का बिम्ब पूरे भाव को उसी संजीदगी से प्रगट करता है। बिम्ब–विधान का प्रयोग सूर के काव्य में सहज अंग बनकर आता है। वे बिम्बों की योजना सायास नहीं करते।

किसान–जीवन की संस्कृति– से सूर के काव्य का गहरा जुड़ाव है। उनके काव्य में किसानी जीवन संवेदना से जुड़े मुहावरों और लोकोक्तियों का भाषिक प्रयोग सूर के किसानी जीवन से गहरे सम्बन्ध को प्रकट करता है। गोपी–उद्धव संवाद, किसान–जीवन से जुड़े शब्दों के प्रयोग से अधिक जीवंत और अर्थधर्मी हो उठा है। गोपियाँ उद्धव के प्रति अपने खीज को कुछ ऐसे प्रगट करती हैं–

धान को गाँव पयार तैं जानों,
ज्ञान विषय रस भोरे।
सूर सूर बहुत कहे न रहै रस,
गूलर को फल फोरे।।

भाशा में लोक–प्रचलित शब्दों का प्रयोग सूर की कविता में अर्थ–विस्तार देता हैं। काव्य–भाषा की सृजनात्मकता के ऐसे प्रसंग सूर के काव्य में बहुलता में हैं।

सूर–काव्य में औकारान्त– रूपों का प्रमुखता से प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग संज्ञा में ही नहीं विशेषण और क्रिया के भूतकालिक कृदन्त रूपों में भी देखा जा सकता है। परसर्गों का प्रयोग प्रसंगों और भावों के अनुकूल किया गया है। कभी–कभी परसर्ग संज्ञा के साथ जुड़कर संश्लष्टि रूप में प्रयोग किए गए हैं। 'गुपालहि स्रवननि' जैसे प्रयोग उल्लेखनीय हैं। नाम धातु उपजाए, रिसाए और संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग विशिष्टता के साथ किया गया है।

अलंकार, छन्द, लोकोक्तियाँ और मुहावरे– सूरदास की कविता में अलंकारों का प्रयोग चमत्कार पैदा करने के लिए नहीं किया गया है। उनका प्रयोग भाव और कथ्य के अनुकूल प्रभाव पैदा करने के लिए किया गया है।

सूर के अलंकार प्रयोग के बारे में हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है, ''सूर के काव्य में शब्दालंकारों की जगह अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है, क्योंकि शब्दालंकार तो वर्ण–सौन्दर्य को ही विशेष रूप से प्रस्फुटित करते हैं। रूप सौन्दर्य

के लिए उनका इतना महत्त्व नहीं, जबकि सूर का उद्देश्य रूप–सौन्दर्य चित्रण और उसके द्वारा भाव–सौन्दर्य का पोषण करना था।''

कृष्ण के रूप–सौन्दर्य का यह वर्णन रूपक, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक के समन्वित प्रयोग से किया गया है।

देखि सखी अधरन की लाली
मनि मरकत तै सुभग कलेवर ऐसे हैं वन माली।
मनो प्रात की घटा साँवरी तापै अरुण प्रकाश
ज्यों दामिनि बिचि दमकि रहत है कहरत पीत सुबास।

उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकारों का भरपूर उपयोग– सूर ने रूप चित्रण में किया है। राधा और कृष्ण की अंग–छवि की मनोहर झाँकी को रूपायित करने में उन्होंने उपमा एवं उत्प्रेक्षा का मुक्त–हस्त प्रयोग किया है। भ्रमरगीत में भी उन्होंने कई अलंकारों का सहारा लिया है। असंगति, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकारों के अतिरिक्त और कई प्रकार के दृष्टान्त, समुच्चय आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

छन्द– काव्य की कलात्मकता में छन्द का विशेष महत्त्व होता है। सूर ने राग–रागिनियों के भीतर छन्द की योजना की है। पदों के ऊपर गति का सृजनात्मक प्रयोग फिर दोहों की योजना उल्लेखनीय है। दोहा, रोला, और चौपाई का प्रयोग भी सूरसागर में है। इनके अलावा सूरदास ने जिन छन्दों का अधिक प्रयोग किया है, उनमें सार, सरसी, लवनी, समान सवैया प्रमुख हैं। छन्द की पारम्परिक योजना के साथ नए छन्दों का प्रयोग भी सूर के काव्य में मौजूद है।

लोकोक्तियों और मुहावरों– काव्य–भाषा को स्वाभाविक और जनधर्मी बनाने के लिए सूर ने लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया है। लोक और ग्राम्य जीवन में बिखरे लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में अर्थ–गाम्भीर्य तो पैदा होता है। काव्य में मिठास भी भर जाता है। भ्रमरगीत में गोपियाँ जब उद्धव पर व्यंग्य करती हैं, तब भाषा में मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग देखने लायक होता है। गोपियों के इस उपालम्भ में मुहावरे स्वतः दिखाई पड़ने लगते हैं। उदाहरणार्थ यह पद देखा जा सकता है–

वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे, सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भँवारे।।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि वह मथुरा नगरी काली कोठरी के समान है, वहाँ से जो भी आता है, वह काला ही आता है। यहाँ गोपियों का आशय रंग विशेष से न होकर मनुष्य की उस कपटपूर्ण प्रवृत्ति से है जो उन्हें उद्धव, अक्रूर एवं भ्रमर में दिखाई देता है। हालाँकि यह भाषायी प्रहार सहज नहीं है, किन्तु भाषा के मुहावरेदार प्रयोग ने संवाद को सरस बना दिया है। सूरदास प्रसंग के अनुसार मुहावरे चुनने में सिद्धहस्त कवि हैं। दृष्टव्य हैं–

अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै, खारे कूप कौ बारी।

वाक्चातुर्य के साथ हास्य– सूर की भाषा में वाक्चातुर्य के साथ हास्य भी समाहित है। काव्य–भाषा में किसान जीवन से जुड़े मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से सूर की लोक संस्कृति सम्बन्धी गहरी समझ का पता चलता है। उनकी भाषा में बातचीत की सहजता और चतुराई एक साथ मिल जाती है। जिसका जिक्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी आलोचना में बार–बार किया है। भ्रमरगीत तो सूर की काव्यभाषा की सृजनात्मकता का चरम विकास है। यहाँ गोपियों की सहृदयता और वाग्विदग्धता में भाषा की संवेदना और वक्रता का रूपायन होता है।

सूर अपने काव्य में अनुभूति की व्यापकता और गहराई को गुणवत्ता प्रदान करते हैं। वहाँ अपने विलक्षण अभिव्यंजना–शिल्प सृजनात्मकता का उत्कर्ष आ जाता है। काव्य–रूप, काव्यभाषा, छन्द, अलंकार और मुहावरों की योजना उसके काव्य–सौन्दर्य को समृद्ध करते हैं। उनके काव्य–रूप में गीतात्मकता की गहन संवेदना है, काव्य–भाषा में लोक और शास्त्र का सहज संयोजन है। परम्परा से काव्य–भाषा ग्रहण करते हुए सूर, उसमें मौलिकता और नयापन भर देते हैं। ब्रजभाषा का काव्य–वैभव बढ़ जाता है। सूर के काव्य–रूप और काव्य–भाषा के सृजनात्मक पक्ष का यह वैशिष्ट्य प्रशंसनीय है।

8.4 सूरदास काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

सूर की हिन्दी साहित्य को देन उनकी अमर कृति 'सूरसागर' है। श्रीमद्–भागवत के आधार पर 'सूरसागर' में सवा लाख पद थे। किन्तु वर्तमान संस्करणों में लगभग सात हजार पद ही उपलब्ध बताये जाते हैं, 'सूरसागर' में श्री कृष्ण की बाल–लीलाओं, गोपी–प्रेम, उद्धव–गोपी संवाद और गोपी–विरह का बड़ा सरस वर्णन है। इसके अतिरिक्त सुरसारावली और साहित्य लहरी इनकी प्रमुख काव्य रचनाएं है। इन्हें वात्सल्य रस का सम्राट भी कहा जाता है। इनकी काव्यगत विशेषताएँ इस प्रकार है–

1. कृष्ण लीलाओं का वर्णनः– कृष्ण भक्त कवि लोकरंजनकारी कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गायन किया है। सूरदास की एक ही आशा और अभिलाषा है– कृष्ण–लीलागान। कृष्ण भक्ति के अनुसार कृष्ण ही केवल मात्र पुरुष है, शेष सभी जीवात्माएं हैं जो कि सदा कृष्ण लीला और बिहार में लिप्त रहती हैं।

कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण की बालरुप में वात्सल्य रस से पूर्ण लीलाएँ, सख्य रूप में लीलाएँ, गोपियों के साथ माधुर्य भावपूर्ण लीलाएँ समस्त कृष्ण भक्ति काव्य में व्याप्त है। सूर ने शुद्ध भक्ति भाव से कृष्ण की बाल लीलाओं के साथ–साथ राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं का अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है। सूर के लीला वर्णन का एक उदाहरण देखिए–

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज की पंछी, फिरि जहाज पै आवै।।
कमल–नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै।।
जिहिं मधुकर अंबुज–रस चाख्यो, क्यों करील–फल भावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

2. बालमनोविज्ञान का अद्‌भूत चित्रणः– कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के बाल–जीवन को जितने विशद्, सूक्ष्म और स्वाभाविक ढंग से वर्णित किया है, वैसा मनोवैज्ञानिक चित्रण अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है। बाल मनोविज्ञान की जितनी गहरी पकड़ सूरदास के काव्य नहीं है, उतनी किसी अन्य हिंदी के कवि के काव्य में दिखाई नहीं पड़ती। उन्होंने कृष्ण के बाल्य जीवन की विविध मानसिक अवस्थाओं को बड़े ही सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। बच्चे के मन में ईर्ष्या, स्पर्धा, विस्थापन जिज्ञासा, भय, रूठना, मनाना, मानना, लज्जा आदि जो भाव रहते हैं उनका अत्यंत प्रभावशाली चित्रण उनके काव्य में मिलता है। बालकृष्ण को गोद में लेकर नंद बाबा ने घड़े में झांका तो कृष्ण को लगा कि नंद बाबा ने किसी और को गोद में उठा लिया है और अपना बेटा बना लिया है। बालकृश्ण ईर्ष्या वश मां के पास चले जाते हैं और कह देते हैं कि अब मैं नंद का बेटा नहीं हूं। इस प्रसंग को सूरदास ने अत्यंत सुंदर ढंग से वर्णित किया है–

कहियो जाई जसुमति सो तांछन, मैं जनति सुत तेरो
आजु नंद सुत और कियो, कुछ कियौ न आदर मेरौ।

इसी प्रकार बालकृष्ण चाहते हैं कि उनकी छोटी एक बड़े भाई की चोटी की तरह लंबी और मोटी हो जाए इसी स्पर्धा भाव के कारण हो मां यशोदा से कहते हैं–

मैया कबहुं बढ़ैगी चोटी।
किती बेर मोहि दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी।।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत जैहै नागिन–सी भुई लोटी।।
काचो दूध पियावति पचि पचि देति न माखन रोटी।
सूरदास त्रिभुवन मनमोहन हरि हलधर की जोटी।।

3. अद्वितीय वात्सल्य चित्रणः– कृष्ण के बाल वर्णन में वात्सल्य वर्णन का अनूठा स्थान है। विशेष रुप से सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य अद्वितीय काव्य है। सूर वात्सल्य है और वात्सल्य सूर है। हिंदी साहित्य में सूरदास का वात्सल्य रस का सम्राट कहा जाता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि सूरदास बंद आंखों से

वात्सल्य रस का कोना कोना झांक आए हैं। यशोदा के हृदय की सहजता और सरलता का कवि अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन करते हैं। माँ यशोदा अपने शिशु को पालने में सुला रही हैं और निंदिया से विनती करती है की वह जल्दी से उनके लाल की अंखियों में आ जाए–

जसोदा हरी पालनै झुलावै
हलरावै दुलराय मल्हरावै जोई सोई कछु गावै
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै मात्र आनि सुलावै
तू काहे न बेगहि आवे, तो का कान्ह बुलावें

कृष्ण का शैशव रूप घटने लगता है तो माँ की अभिलाषाएं भी बढ़ने लगती हैं उसे लगता है कि कब उसका शिशु उसका उसका आँचल पकड़कर डोलेगा, कब उसे माँ और अपने पिता को पिता कहके पुकारेगा। सूरदास लिखते है–

जसुमति मन अभिलाष करै,
कब मेरो लाल घुतरुवनी रेंगै, कब घरनी पग द्वैक भरे,
कब वन्दहिं बाबा बोलौ, कब जननी काही मोहि ररै,
रब घौं तनक–तनक कछु खैहे, अपने कर सों मुखहिं भरे
कब हसि बात कहेगौ मौ सौं, जा छवि तै दुख दूरि हरै

4. सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्तिः– कृष्ण भक्त कवि यद्यपि कृष्ण की लीला वर्णन में तल्लीन रहे परंतु उनके काव्य में तत्कालीन समाज व संस्कृति का भी संयोगवश चित्रण हुआ है। तत्कालीन युग में प्रचलित धर्म साधना अनेक संप्रदाय के साधकों की वेशभूषा, खानपान आदि का वर्णन इन कवियों ने किया है। सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में अलख वादियों, निर्गुण संतो तथा अद्वैतवादियों की अच्छी खबर ली है, साथ ही साथ उन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़ियों व कुरीतियों पर भी प्रहार किया है। गोपियों के निम्न संवाद के माध्यम से सूरदास ने योग साधकों की वेशभूषा का वर्णन किया है–

सुंगी, मुद्रा, भस्म, त्वचा मृग, अरू अवधारन पौन
हम अबला अहीरी सठ मधुकर, धीर जनहिं कहीं कौन।

5. भक्ति भावनाः– सूरदास श्री कृष्ण के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों के आधार पर कृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार कर उनकी लीलाओं का गान किया है। उनकी भक्ति सगुण भक्ति है। उनकी रचनाओं में प्रेम भक्ति के साथ–साथ दास्य, सख्य, माधूर्य तथा वात्सल्य भावों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। उनकी दास्य भक्ति का एक उदाहरण देखिए–

प्रभु, हौं सब पतितन कौ राजा।
परनिंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा।।

सूरदास की भक्ति विशेष रूप से सख्य भाव लिए हुए हैं। माधूर्य या प्रेम

भाव की भक्ति के कारण धीरे–धीरे कृष्ण भक्ति धारा में श्रृंगारिकता का विकास होता चला गया। सूरदास अपने आराध्य को संसार के समस्त कष्टों को तारणहार के रूप में चित्रित करते हुए कहते हैं–

चरन कमल बंदौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कछु दरसाई।।
बहरो सुने मूक पुनि बोले,रंक चले सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुणामय, बारबार बंदौ तिहिं पाई।।

6. श्रंगार वर्णनः– सूरदास कृष्ण भक्त कवि के साथ–साथ भक्ति रस के कवि थे। उनके काव्य में श्रृंगार रस का अद्‌भुत चित्रण हुआ है। सर्वप्रथम तो स्वयं भगवान कृष्ण का चरित्र श्रृंगार प्रधान है। अतः उनकी लीलाओं के वर्णन में श्रृंगार के लिए पर्याप्त स्थान था। इन कवियों ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुंदर वर्णन किया है। ब्रज की गोपियां श्री कृष्ण के रूप माधुर्य पर आसक्त हो जाती है। श्री कृष्ण की बांसुरी तो मानो गोपियों के लिए जादू का काम करती है। कृष्ण और राधा की प्रथम मिलन का बड़ा सुंदर वर्णन सूरदास द्वारा किया गया है–

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूं ब्रज खोरी।।
काहे कों हम ब्रजतन आवतिं खेलति रहहिं आपनी पौरी।
सुनत रहति स्त्रवननि नंद ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी।।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी।।

7. भ्रमरगीत काव्य परंपराः– कृष्ण काव्यधारा के सभी कवियों ने भ्रमरगीत परंपरा को अपनाया। भ्रमरगीत काव्य का आधार कृष्ण के मित्र उद्धव और गोपियों का संवाद है। भ्रमरगीत का मूलस्रोत, श्रीमद्‌भाग्वत पुराण का दशम स्कंध है। श्रीकृष्ण गोपियों को छोङकर मथुरा चले गए और गोपियां विरह विकल हो गई। कृष्ण मथुरा में लोकहितकारी कार्यों में व्यस्त थे किन्तु उन्हें ब्रज की गोपियों की याद सताती रहती थी। उन्होंने अपने अभिन्न मित्र उद्धव को संदेशवाहक बनाकर गोकुल भेजा। गोपियों ने उद्धव को भ्रमर को प्रतीक बनाकर अन्योक्ति के माध्यम से उद्धव और कृष्ण पर जो व्यंग्य किए एवं उपालम्भ दिए उसी को 'भ्रमरगीत' के नाम से जाना गया। भ्रमरगीत प्रसंग में निर्गुण का खण्डन, सगुण का मण्डन तथा ज्ञान एवं योग की तुलना में प्रेम और भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया गया है। भ्रमर गीत का मूल उद्देश्य निर्गुण पर सगुण की विजय दर्शाना है–

निरगुन कौन देश कौ बासी।
मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति सांच न हांसी।।

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी।।

8. प्रकृति चित्रणः– कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में प्रकृति का व्यापक चित्रण हुआ है। इन कवियों ने कृष्ण की लीलाओं की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। वृंदावन के वन, नदी, पर्वत, झरने, कुंज–लियां सभी कुध कृष्ण के रंग में रंगे नजर आते हैं। जब तक कृष्ण गोकुल में रहे प्रकृति भी उन्हीं के रास–रंग में रंगती रही। जैसे ही कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रस्थान किया प्रकृति का रुप भी मुरझाने लगा। सूरदास ने गोपियों के सुख–दुख की अनुभूतियों को व्यक्त करते समय प्रकृति का हृदय विदारक वर्णन किया है–

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
बष्था बहति जमुना खग बोलत बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवनय पानीय धनसार संजीवनि दधिसुत किरनभानु भई भुंजैं।
ये ऊधो कहियो माधव सोंय बिरह करद करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अंखियां भई बरन ज्यौं गुजैं।

9. बृजभाषा का अप्रतिम काव्यः– कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने बृजभाषा को ही अपनी काव्यभाषा बनाया है। सूरदास बृजभाषा के पहले कवि माने जाते हैं जिन्होंने बृजभाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया। कृष्ण की ब्रजभूमि की मधुर भाषा को अपने काव्य का आदार बनाकर इन कवियों ने बृजभाषा को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इनकी भाषा में संगीतात्मकता का गुण विद्यामान है। यह काव्य मुक्तक और गेय काव्य है। अलंकारों की दृष्टि से इसमें रुपक, उपमा, दृष्टांत और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग हुआ है तथा छंदों में चौपाई, चौबोला, कवित्त, सवैया, गीतिका, छप्पय तथा हरिगीतिका आदि का प्रयोग हुआ है।

अंखियां हरि–दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप–रस रांची ये बतियां सुनि रूखी।।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं झूखी।
अब इन जोग संदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखावहुदुहि पय पिवत पतूखी।
सूर, जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी।।

अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में कृष्ण की लीलाओ के गान, कृष्ण के प्रति सख्य भावना आदि की दृष्टि से कृष्ण काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सूरदास इस काव्य की आधारशिला है। उनका काव्य हिंदी साहित्य की अद्वितीय निधि है।

8.5. सूरदास के काव्य से चयनित पद

1. विनय के पद संख्या – 1,2,23,24,25,39,44,45,46,52

2. भ्रमर गीत संख्या– 6,7,11,13,23,24,25,28,34,52,64

1. विनय के पद संख्या – 1,2,23,24,25,39,44,45,46,52

(विनय के पद)

चरन कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, आंधर कों सब कछु दरसाई।।
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार–बार बंदौं तेहि पाई।।

शब्दार्थ –राई= राजा। पंगु = लंगड़ा। लघै =लांघ जाता है, पार कर जाता है। मूक =गूंगा। रंक =निर्धन, गरीब, कंगाल। छत्र धराई = राज–छत्र धारण करके। तेहि = तिनके। पाई =चरण।

भावार्थ –– जिस पर श्रीहरि की कृपा हो जाती है, उसके लिए असंभव भी संभव हो जाता है। लूला–लंगड़ा मनुष्य पर्वत को भी लांघ जाता है। अंधे को गुप्त और प्रकट सबकुछ देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। बहरा सुनने लगता है। गूंगा बोलने लगता है कंगाल राज–छत्र धारण कर लेता हे। ऐसे करूणामय प्रभु की पद–वन्दना कौन अभागा न करेगा।

अबिगत गति कछु कहति न आवै।
ज्यों गूंगो मीठे फल की रस अन्तर्गत ही भावै।।
परम स्वादु सबहीं जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कों अगम अगोचर सो जाने जो पावै।।
रूप रैख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं, तातों सूर सगुन लीला पद गावै।।

शब्दार्थ – अबिगत = अव्यक्त, अज्ञेय जो जाना न जा सके। गति = बात। अन्तर्गत = हृदय, अन्तरात्मा। भावै = रुचिकर प्रतीत होता है। अमित =अपार। तोष =सन्तोष, आनन्द। अगोचर = इन्द्रियजन्य ज्ञान से परे। गुन =गुण, सत्व, रज और तमो गुण से आशय है। निरालंब = बिना अवलंब या सहारे के। सगुन =सगुण, दिव्यगुण संयुक्त साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण।

भावार्थ– यहां अव्यक्तोपासना को देहाभिमानियों के लिए क्लिष्ट बताया है। निराकार निर्गुण ब्रह्म का चिंतन अनिर्वचनीय है। वह मन और वाणी का विश्षय नहीं। गूंगे को मिठाई खिला दी जाय और उससे उसका स्वाद पूछा जाय, तो वह कैसे बतला सकता है, वह रसानंद तो उसका अन्तर ही जानता है। अव्यक्त ब्रह्म का न रूप है, न रेख, न गुण है, न जाति। मन वहां स्थिर ही नहीं हो सकता। सब प्रकार से वह अगम्य है, अतः

सूरदास सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण की लीलाओं का ही गायन करना ठीक समझते हैं।

अब हों नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।।
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भरम भयौ मन भयौ पखावज, चलत कुसंगति चाल।।
तृसना नाद करति घट अन्तर, नानाविध दै ताल।
माया कौ कटि फैंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल।।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नंदलाल।।

शब्दार्थ – चोलना = नाचने के समय का घेरदार पहनावा। पखावज =मृदंग। विशय = कुवासना। फैंटा =कमरबंद। अविद्या =अज्ञान।

भावार्थ – संसार के प्रवृति मार्ग पर भटकते–भटकते जीव अन्त में प्रभु से कहता है, तुम्हारी आज्ञा से बहुत नाच मैंने नाच लिया। अब इस प्रवृति से मुझे छुटकारा दे दो, मेरा सारा अज्ञान दूर कर दो। वह नृत्य कैसा? काम–क्रोध के वस्त्र पहने। विषय की माला पहनी। अज्ञान के घुंघरू बजे। परनिन्दा का मधुर गान गाया। भ्रमभरे मन ने मृदंग का काम दिया। तृष्णा ने स्वर भरा और ताल तद्रुप दिये। माया का फेंटा कस लिया था। माथे पर लोभ का तिलक लगा लिया था। तुम्हें रिझाने के लिए न जाने कितने स्वांग रचे। कहां–कहां नाचना पड़ा, किस–किस योनि में चक्कर लगाना पड़ा। न तो स्थान का स्मरण है, न समय का। किसी तरह अब तो रीझ जाओ, नंदनंदन।

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुहारौ, सोई पार करौ।।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक–वरन ह्वै, सुरसरि नाम परौ।।
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै कै प्रन जात टरौ।।

अर्थ– भक्त और भगवान् के बीच कितना मधुर संबंध दर्शाया है इस पद के माध्यम से सूरदास जी ने। यह सर्वविदित है कि पूर्णता केवल ईश्वर को प्राप्त है। अपूर्णता के कारण मनुष्य से त्रुटि स्वाभाविक है। इसलिये सूरदास ने भगवान् से अवगुण समाप्त करने नहीं बल्कि इसे हृदय में न धरने की प्रार्थना की है। सूरदासजी कहते हैं – मेरे स्वामी! मेरे दुर्गुणों पर ध्यान मत दीजिये! आपका नाम समदर्शी है, उस नाम के कारण ही मेरा उद्धार कीजिये। एक लोहा पूजा में रखा जाता है (तलवार की

पूजा होती है) और एक लोहा (छुरी) कसाई के घर पड़ा रहता है, किंतु (समदर्शी) पारस इस भेद को नहीं जानता, वह तो दोनों को ही अपना स्पर्श होने पर सच्चा सोना बना देता है। एक नदी कहलाती है और एक नाला, जिसमें गंदा पानी भरा है, किंतु जब दोनों गंगा जी में मिल जाते हैं, तब उनका एक–सा रूप होकर गंगा जी नाम पड़ जाता है। इसी प्रकार सूरदासजी कहते हैं– यह शरीर माया (माया का कार्य) और जीव ब्रह्म (ब्रह्म का अंश) कहा जाता है, किंतु माया के साथ तादात्म्य हो जाने के कारण वह (ब्रह्मरूप जीव) बिगड़ गया (अपने स्वरूप से च्युत हो गया।) अब या तो आप इनको पृथक् कर दीजिये (जीव की अहंता–ममता मिटाकर उसे मुक्त कर दीजिये), नहीं तो आपकी (पतितों का उद्धार करने की) प्रतिज्ञा टली (मिटी) जाती है।

मेरो मन अनत कहां सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै।।
कमलनैन कौ छांड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परमगंग कों छांड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै।।
जिन मधुकर अंबुज–रस चाख्यौ, क्यों करील–फल खावै।
सूरदास, प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।।

शब्दार्थ– अनत =अन्यत्र। सचु =सुख, शान्ति। कमलनैन = श्रीकृष्ण। दुर्मति= मूर्ख खनावै = खोदता है। करील –फल = टेंट। छेरी =बकरी।

भावार्थ– यहां भक्त की भगवान् के प्रति अनन्यता की ऊंची अवस्था दिखाई गई है। जीवात्मा परमात्मा की अंश–स्वरूपा है। उसका विश्रान्ति–स्थल परमात्माही है अन्यत्र उसे सच्ची सुख–शान्ति मिलने की नहीं। प्रभु को छोड़कर जो इधर–उधर सुख खोजता है, वह मूढ़ है। कमल–रसास्वादी भ्रमर भला करील का कड़वा फल चखेगा? कामधेनु छोड़कर बकरी को कौन मूर्ख दुहेगा ?

जा दिन मन पंछी उड़ जैहैं।।
ता दिन तेरे तन तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं।
या देही का गर्व न कीजै, स्यार काग गिध खैहैं।।
तन गति तीन विष्ठा कृमि हवै, ना तर खाक उड़ैहैं।
कहँ बड़ नैन कहाँ वह शोभा, कहँ वह रूप दिखैहैं।।
जिन लोगन से नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं।
घर के कहत सवेरे काढ़ो, भूत होय धरि खैहैं।।
जिन पूतन को बहु प्रतिपाल्यो, देवी देव मनैहैं।
ते लइ बाँस दियो खोपरि में, सीस फोर बिखरैहैं।।
अजहूँ मूढ़ करै सतसंगति, सन्तन में कुछ पैहैं।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, आवागमन नसैहैं।।

सूरदास जी कहते हैं – हे मानव! जिस दिन मन (आत्मा) रूपी यह पंछी उड़ान भरेगा उस दिन देह रूपी इस वृक्ष के सभी पत्ते टूटकर बिखर जाएंगे अर्थात् यह शरीर प्राणहीन हो जाएगा। इसलिए इस पंचभौतिक शरीर का तू गर्व न कर। इस शरीर को सियार, गिद्ध व कौवे ही खाएंगे। प्राणहीन होने पर शरीर की तीन ही गतियां होंगी अर्थात् या तो वह विष्ठा रूप हो जाता है या कीड़े पड़ जाते हैं या फिर भस्म बनकर उड़ जाता है। तब स्नान करना, सजना–संवरना, रंग–रूप सभी नष्ट हो जाएगा। हे मानव! मरने के पश्चात वही लोग तुझसे घृणा करने लगेंगे जिन्हें तू अपना मानकर प्यार किया करता था। ऐसी स्थिति होने पर घर के लोग तुझे घर से निकाल बाहर करेंगे। इस पर भी उनका कथन यह होगा कि कहीं भूत बनकर यह घर को न खा जाए। जिन पुत्रों की प्राप्ति के लिए हे मानव! तूने देवी–देवताओं को मनाया और जिन पुत्रों को तूने लाड़–प्यार से पाला वही पुत्र तेरी खोपड़ी फोड़ेंगे अर्थात् कपाल क्रिया करेंगे। इसलिए हे मूढ़ मानव! तू संतों का संग कर। ऐसा करने से तुझे कुछ ज्ञान ही प्राप्त होगा। यदि तूने मनुष्य का चोला धारण करके भी हरि भजन नहीं किया तो मरणोपरांत यम के कोड़े खाएगा। सूरदास जी कहते हैं कि ईश्वर के भजन बिना मनुष्य का यह तन रूपी धन पाना निरर्थक ही है।

तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग।
जिनकै संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग।
कहा होत पय पान कराएं, बिश नही तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाएं, स्वान न्हवाएं गंग।
खर कौ कहा अरगजा–लेपन, मरकट भूषण अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाएं, बहुरि धरै वह ढंग।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कमरि पै, चढत न दूजौ रंग।

कठिन शब्दार्थ– हरि बिमुख– भगवान से विमुख (दूर), कुमति– बुरी बुद्धि, भुजंग– साँप, स्वान– कुत्ता, अरगजा–चंदन, मरकट– बंदर, पाहन– पत्थर, निशंग–तरकश, कामरि– कमली (कंबल)।

संदर्भ– प्रस्तुत पद भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है। इसमें कवि ने बुरे संग (कुसंगति) के दुष्प्रभावों को स्पष्ट करते हुए सत्संग की महत्ता पर बल दिया है।

प्रसंग– इस पद में सूरदास मन को संबोधित करते हुए उसे समझाते हैं कि उसे भगवान से विमुख (दूर) लोगों की संगति त्याग देनी चाहिए, क्योंकि ऐसी संगति से बुद्धि भ्रश्ष्ट हो जाती है और भक्ति में बाधा उत्पन्न होती है।

भावार्थ– हे मन! तू भगवान से दूर रहने वालों की संगति छोड़ दे। जिनके साथ रहने से बुरी बुद्धि उत्पन्न होती है और भजन में बाधा पड़ती है। जैसे साँप को दूध पिलाने

से भी वह विष नहीं छोड़ता, कौए को कपूर खिलाने से भी वह नहीं बदलता, कुत्ते को गंगा में नहलाने से भी वह शुद्ध नहीं होता। गधे पर चंदन लगाने से, बंदर को आभूषण पहनाने से, या हाथी को नदी में स्नान कराने से भी उनका स्वभाव नहीं बदलताय वे फिर वही व्यवहार करते हैं। पत्थर पर बाण चलाने से वह नहीं छिदता, केवल तरकश ही खाली होता है। उसी प्रकार, काली कमली (काले वस्त्र) पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता।

व्याख्या– सूरदास इस पद में कुसंगति (बुरी संगति) के दुष्परिणामों को अत्यंत प्रभावशाली उपमाओं और रूपकों के माध्यम से समझाते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य को ऐसे लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए जो भगवान से विमुख हैं, क्योंकि उनका साथ मन में बुरे विचार उत्पन्न करता है और भक्ति के मार्ग में बाधा डालता है। कवि ने अनेक उदाहरणों के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि स्वभाव बदलना अत्यंत कठिन होता है। जैसे साँप को दूध पिलाने पर भी वह विष ही उगलता है, उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति अपनी बुरी प्रवृत्तियों को नहीं छोड़ता। कौए को कपूर खिलाने या कुत्ते को गंगा में नहलाने से भी उनकी प्रकृति नहीं बदलती वे वही रहते हैं।

इसी प्रकार गधे पर चंदन लगाने या बंदर को आभूषण पहनाने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि उनके स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता। हाथी को बार–बार स्नान कराने पर भी वह फिर गंदगी में लोट जाता है। इन सभी उदाहरणों द्वारा कवि यह बताना चाहते हैं कि कुसंगति का कोई सुधार नहीं होता, बल्कि वह व्यक्ति को भी अपने जैसा बना लेती है।

अंत में कवि कहते हैं कि जैसे पत्थर पर बाण चलाने से कुछ नहीं होता, वैसे ही दुष्टों पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'काली कमली' पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता अर्थात् बुरे स्वभाव वाले व्यक्ति पर अच्छे गुणों का प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार सूरदास का यह पद हमें यह शिक्षा देता है कि हमें सदैव सत्संग अपनाना चाहिए और कुसंगति से दूर रहना चाहिए, क्योंकि संगति का मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

रे मन मूरख, जनम गँवायौ।
करि अभिमान विषय–रस गीध्यौ, स्याम सरन नहिं आयौ।।
यह संसार सुवा–सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उडिढ, हाथ कछू नहिं आयौ।।
कहा होत अब के पछिताऐं, पहिलैं पाप कमायौ।
कहत सूर भगवंत भजन बिनु, सिर धुनि–धुनि पछितायौ।।

अर्थ– विषय रस में जीवन बिताने पर अंत समय में जीव को बहुत पश्चाताप होता है। इसी का विवरण इस पद के माध्यम से किया गया है। सूरदास कहते हैं – अरे मूर्ख मन! तूने जीवन खो दिया। अभिमान करके विषय–सुखों में लिप्त रहा, श्यामसुन्दर की शरण में नहीं आया। तोते के समान इस संसाररूपी सेमर

वृक्ष के फल को सुन्दर देखकर उस पर लुब्ध हो गया। परन्तु जब स्वाद लेने चला, तब रुई उड़ गयी (भोगों की निरूसारता प्रकट हो गयी,) तेरे हाथ कुछ भी (शान्ति, सुख, संतोष) नहीं लगा। अब पश्चाताप करने से क्या होता है, पहले तो पाप कमाया (पापकर्म किया) है। सूरदास जी कहते हैं– भगवान् का भजन न करने से सिर पीट–पीटकर (भली प्रकार) पश्चात्ताप करता है।

चकई री, चलि चरन–सरोबर, जहाँ न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम–निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सागर सुख जोग।
जहाँ सनक–सिव हंस मीन मुनि, नख रवि–प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि–डर, गुंजत निगम सुवास।
जिहिं सर सुभग–मुक्ति–मुक्ताफल, सुकृत–अम त–रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै।
लक्षमी सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय–रस छीलर, वा समुद्र की आस।। 9 ।।

कठिन शब्दार्थ– चकई– एक पक्षी, चरण–सरोवर– भगवान के चरणों का प्रेम रूपी सरोवर, निसा–अज्ञान की रात, निगम–वेद, मुक्ताफल–मोती, सुकृत – पुण्य कर्म, छीलर– तुच्छ, नगण्य।

संदर्भ– प्रस्तुत पद सूरदास के काव्य–संग्रह 'सूरसागर' से लिया गया है। इसमें कवि ने जीव को सांसारिक मोह–माया छोड़कर ईश्वर–भक्ति की ओर प्रेरित किया है।

प्रसंग– इस पद में कवि एक 'चकई' (पक्षी) के माध्यम से जीवात्मा को संबोधित करते हुए उसे ईश्वर–प्रेम रूपी सरोवर की ओर जाने का उपदश देते हैं। कवि संसार के दुखों और वियोग की तुलना में भक्ति के आनंद को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं।

भावार्थ– हे चकई (जीवात्मा)! तू उस चरण–सरोवर की ओर चल, जहाँ प्रेम में वियोग नहीं है। वहाँ कभी भ्रम रूपी अज्ञान की रात नहीं होती, वह तो सुख देने वाला सागर है। जहाँ सनकादि, शिव, हंस, मछली और मुनिजन सूर्य के समान प्रकाश में रहते हैं। वहाँ कमल सदैव खिले रहते हैं और चन्द्रमा के भय से (मुरझाने का डर) नहीं होते, वेदों की सुगंध गूंजती रहती है।

जिस सरोवर में सुंदर मुक्ति रूपी मोती और सत्कर्मों के अमृत रस का पान किया जाता है, उस सरोवर को छोड़कर हे मूर्ख पक्षी! तू यहाँ (संसार में) क्यों ठहरा हुआ है? जहाँ लक्ष्मी सहित भगवान सदा क्रीड़ा करते हैं, वह स्थान अत्यंत शोभायमान है। अब विषय–वासनाओं का तुच्छ रस अच्छा नहीं लगता, उस (ईश्वर–प्रेम) रूपी समुद्र की ही इच्छा है।

व्याख्या– सूरदास ने इस पद में अत्यंत प्रभावशाली रूपक का प्रयोग किया है। 'चकई' के माध्यम से जीवात्मा को संबोधित किया गया है, और 'चरण–सरोवर' भगवान

के चरणों में स्थित भक्ति और प्रेम का प्रतीक है। कवि कहते हैं कि यह संसार अज्ञान (भ्रम–निशा) से भरा हुआ है, जहाँ दुख, वियोग और अस्थिरता है। जबकि ईश्वर–भक्ति का मार्ग ऐसा है जहाँ कभी अज्ञान नहीं होता और केवल आनंद ही आनंद है।

'सनक, शिव, हंस, मीन, मुनि' आदि के माध्यम से यह बताया गया है कि महान संत और देवता भी उसी भक्ति रूपी सरोवर में निवास करते हैं। 'प्रफुल्लित कमल' शुद्ध और निर्मल ह्रदय का प्रतीक है, जो भक्ति में सदैव खिला रहता है। 'निगम सुवास' का अर्थ है वेदों की मधुर ध्वनि और ज्ञान का प्रसार।

कवि आगे कहते हैं कि उस भक्ति रूपी सरोवर में 'मुक्ति' रूपी मोती और 'सुकृत' (पुण्य) का अमृत मिलता है। अतः जीव को संसार के मोह–माया रूपी स्थान को छोड़कर उस परम आनंददायक भक्ति मार्ग को अपनाना चाहिए।

अंत में सूरदास कहते हैं कि अब उन्हें विषय–वासनाओं का तुच्छ सुख नहीं भाता, बल्कि वे केवल भगवान के साथ रहने और उनके प्रेम–सागर में डूबने की कामना करते हैं। यह पद भक्ति की सर्वोच्चता और संसार की नश्वरता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है।

जौ लौं मन–कामना न छूटै।
तौ कहा जोग–जज्ञ–ब्रत कीन्हैं बिन कन तुस कौं कूटै।
कहा सनान कियै तीरथ के, अंग भस्म जट जूटै।
कहा पुरान जु पर्दै अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटै।
जग शोभा की सकल बड़ाई इनौं कछू न खूटै।
करनी और, कहैं कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै।
काम, क्रोध, मद लोभ शत्रु हैं, जो इतनति सौं छूटै।
सूरदास तबहीं तम नासै ज्ञान–अगिनि–झर फूटै।। 10 ।।

कठिन शब्दार्थ– कन– अन्न, तुस– भूसा, जट जूटै– जटाएँ धारण करना ऊर्ध्व धूम के घूटै– कठिन तप करना, दसहूँ दिसि– दसों दिशाएँ, तम– अंधकार, ज्ञान–अगिनि– ज्ञान रूपी अग्नि।

संदर्भ– यह पद भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है। इसमें कवि ने बाह्य आडंबरों की अपेक्षा अंतःकरण की शुद्धता और सच्ची भक्ति के महत्व को स्पष्ट किया है।

प्रसंग– इस पद में सूरदास यह बताना चाहते हैं कि जब तक मन की कामनाएँ (इच्छाएँ) समाप्त नहीं होतीं, तब तक जप, तप, योग, यज्ञ आदि सभी साधन व्यर्थ हैं। वे मनुष्य को आंतरिक शुद्धि और विकारों के त्याग का उपदेश देते हैं।

भावार्थ– जब तक मन की इच्छाएँ समाप्त नहीं होतीं, तब तक योग, यज्ञ और व्रत करने से क्या लाभ? यह तो ऐसे ही है जैसे बिना दाने के भूसे को कूटना।

तीर्थों में स्नान करने, शरीर पर भस्म लगाने और जटाएँ धारण करने से क्या लाभ? अठारह पुराणों का पाठ करने और कठिन तप (धुएँ को पीना) करने से भी कुछ प्राप्त नहीं होता। संसार की सारी शोभा और बड़ाई भी इन (आडंबरों) में कोई कमी नहीं छोड़ती, फिर भी ये सब व्यर्थ हैं। मनुष्य कुछ करता है और कुछ और कहता है, उसका मन दसों दिशाओं में भटकता रहता है। काम, क्रोध, मद और लोभ ये सब शत्रु हैं, जब तक इनसे छुटकारा नहीं मिलता, तब तक कुछ भी सार्थक नहीं है। सूरदास कहते हैं कि जब ज्ञान रूपी अग्नि प्रकट होती है, तभी अज्ञान रूपी अंधकार का नाश होता है।

व्याख्या– सूरदास इस पद में स्पष्ट करते हैं कि केवल बाहरी धार्मिक क्रियाएँ (जैसे योग, यज्ञ, व्रत, तीर्थ–स्नान, भस्म लगाना आदि) करने से मनुष्य को वास्तविक शांति या मोक्ष नहीं मिलता, यदि उसके मन में अभी भी सांसारिक इच्छाएँ विद्यमान हैं। वे कहते हैं कि यह सब करना व्यर्थ है, ठीक वैसे ही जैसे बिना अनाज के भूसे को पीटना जिससे कोई फल नहीं निकलता।

कवि आगे बताते हैं कि धर्म के नाम पर किए जाने वाले बाहरी दिखावे, जैसे जटाएँ रखना, पुराणों का पाठ करना या कठोर तप करना, तब तक निष्फल हैं जब तक मन शुद्ध नहीं होता। मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसकी कथनी और करनी में अंतर होता है।वह कुछ कहता है, पर करता कुछ और है, और उसका मन चंचल होकर इधर–उधर भटकता रहता है।

सूरदास मन के चार प्रमुख शत्रुओं काम (वासना), क्रोध, मद (अहंकार) और लोभ को त्यागने की बात करते हैं। जब तक इनसे मुक्ति नहीं मिलती, तब तक सच्ची भक्ति संभव नहीं है। अंत में कवि कहते हैं कि जब मनुष्य के भीतर ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित होती है, तब अज्ञान का अंधकार समाप्त हो जाता है और उसे सच्चा मार्ग मिल जाता है। इस प्रकार, यह पद आंतरिक शुद्धि, आत्मसंयम और सच्चे ज्ञान की महत्ता को उजागर करता है।

1. भ्रमर गीत संख्या– 6,7,11,13,23,24,25,28,34,52,64

भ्रमर गीत

सखा! सुनो मेरी इक बात।
वह लतागन संग गोपिन सुधि करत पछितात।।
कहाँ वह वृषभानुतनया परम सुंदर गात।
सुरति आए रासरस की अधिक जिय अकुलात।।
सदा हित यह रहत नाहीं सकल मिथ्या जात।
सूर प्रभु यह सुनौ मोसों एक ही सों नात।।

भावार्थ– यहाँ कृष्ण की वियोग विह्वलता का मार्मिक चित्रण है। वे मथुरा में रहकर भी मानसिक रूप से ब्रज में ही रमे हैं और सांसारिक मिथ्या के बीच प्रेम–संबंध को ही सत्य मानते हैं।

व्याख्या—श्रीकृष्ण कहते हैं, हे सखा (उद्धव)! मेरी एक बात सुनो। मुझे यहाँ वृंदावन की लताकुंज, गोपियाँ और वृषभानुतनया (राधा जी) का परम सुंदर रूप याद आकर बहुत पश्चाताप हो रहा है। जब भी रासलीला के वे मधुर क्षण याद आते हैं, मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। यह जगत् नश्वर है, यहाँ कुछ भी सदा नहीं रहता, सब मिथ्या (व्यर्थ) है। हे उद्धव! सूरदास के प्रभु कृष्ण कहते हैं कि मेरी आत्मा का नाता तो केवल उन ब्रजवासियों से ही है।

उद्धव! यह मन निस्चय जानो।
मन क्रम बच मैं तुम्हैं पठावत ब्रज को तुरत पलानो।।
पूरन ब्रह्म, सकल, अबिनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख, न रूप, जाति, कुल नाहीं जाके नहिं पितु माता।।
यह मत दै गोपिन कहँ आवहु विरह—नदी में भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसतिम।।

यह पद्यांश सूरदास द्वारा रचित सूरसागर के भ्रमरगीत सार से उद्धत है। इसमें श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि वे मन, कर्म और वचन से उन्हें बृज भेज रहे हैं ताकि गोपियों को निराकार ब्रह्म का ज्ञान देकर उनके विरह—दुःख को शांत किया जा सके। वे गोपियों को प्रेम के बजाय अविनाशी ब्रह्म की उपासना सिखाने को कहते हैं।

व्याख्या— श्रीकृष्ण कहते हैं, हे उद्धव! तुम निश्चित रूप से यह जान लो कि मैं मन, कर्म और वचन से तुम्हें ब्रज भेज रहा हूँ। तुम तुरंत प्रस्थान करो।

तुम उस पूर्ण, संपूर्ण और अविनाशी ब्रह्म के ज्ञाता हो (जिसका कोई आकार, रूप, जाति, कुल या माता—पिता नहीं हैं)। श्रीकृष्ण यहाँ निराकार ब्रह्म का वर्णन कर रहे हैं। यह (योग निराकार) गोपियों को देकर आओ। वे विरह की नदी में डूब रही हैं (दुखी हैं)। सूरदास के अनुसार कृष्ण कहते हैं, तुम तुरंत जाकर उन्हें यह कहो कि ब्रह्म—ज्ञान के बिना उन्हें कोई और सहारा नहीं मिलेगा (अर्थात् प्रेम छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करें)।

उद्धव मन अभिलाष बढ़ायो।
जदुपति जोग जानि जिय साँचो नयन अकास चढ़ायो।।
नारिन पै मोको पठवत हौ कहत लिखावन जोग।
मनहीं मन अब करत प्रसंसा है मिथ्या सुख—भोग।।
आयसु मानि लियो सिर ऊपर प्रभु—आज्ञा परमान।
सूरदास प्रभु पठवत गोकुल मैं क्यों कहौं कि आन।।

यह पद सूरदास द्वारा रचित सूरसागर के भ्रमरगीत प्रसंग से है। इसमें उद्धव के ज्ञान—अभिमान और कृष्ण की आज्ञा मानने का वर्णन है। उद्धव गोपियों को योग सिखाने के लिए गोकुल जाने के लिए तैयार हैं, यह मानते हुए कि कृष्ण उनके ज्ञान को सत्य मानते हैं।

भावार्थ– उद्धव मन ही मन बहुत प्रसन्न हैं और अभिलाषाएं बढ़ा रहे हैं कि श्रीकृष्ण ने उनके ज्ञान (योग मार्ग) को सच्चा माना है। अभिमान और अहंकार वे अहंकार में नयनों को आकाश की ओर उठाकर चल रहे हैं, अर्थात ज्ञान के घमंड में चूर हैं। गोकुल की यात्राः वे सोचते हैं कि कृष्ण ने उन्हें (गोपियों) को योग सिखाने के लिए भेजा है। मिथ्या सुखः वे मन में ही इन सांसारिक सुखों को मिथ्या (व्यर्थ) मानकर अपनी प्रशंसा कर रहे हैं। वे प्रभु कृष्ण की आज्ञा को सिर पर मानकर उसे प्रमाण मान रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि जब स्वयं भगवान ही उन्हें गोकुल भेज रहे हैं, तो वे दूसरी बात (योग के अलावा) क्यों करें?

कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेइ पट, वैसिय रथ–वैठनि, वैसिय है उर दाम।।
जैसी हुतिं उठि तैसिय दौरीं छाँड़ि सकल गृह–काम।
रोम पुलक, गदगद भई तिहि छन सोचि अंग अभिराम।।
इतनी कहत आय गए ऊधो, रहीं ठगी तिहि ठाम।
सूरदास प्रभु ह्याँ क्यों आवै बंधे कुब्जा–रस स्याममम।।13।।

यह पद सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत का हिस्सा है, जिसमें उद्धव के ब्रज आगमन पर गोपियों की व्याकुलता और उनके कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम को दर्शाया गया है। वे कृष्ण समझकर उत्साहित होती हैं, लेकिन उद्धव को देखकर ठगी–सी रह जाती हैं।

अर्थ– गोपियाँ कहती हैं कि (दूर से) कोई सांवले शरीर वाला आ रहा है, वैसे ही पीले वस्त्र हैं, वैसी ही रथ पर बैठने की शैली है और वैसा ही हृदय पर हार धारण किए हुए है। वैसी ही (कृष्ण जैसी) छवि देखकर गोपियाँ अपने सारे घर के काम छोड़ उसी समय दौड़ पड़ीं, उनका रोम–रोम पुलकित हो गया और वे गदगद (भावुक) हो गईं। इतना कहते–कहते ही (उद्धव) पास आ गए और गोपियाँ वहीं ठगी (आश्चर्यचकित) रह गईं कि ये कृष्ण नहीं, उद्धव हैं। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ अंत में कहती हैं, प्रभु (श्रीकृष्ण) यहाँ अब क्यों आएँगे, वे तो कुब्जा के रस (प्रेम) में बंध गए हैं।

आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आन उतारी।।
फाटक दै कर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी।
धुर ही तें खोटी खायो है लये फिरत सिर भारी।।
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी?
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँह माँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।

अर्थ– गोपियाँ उद्धव के संबंध में परस्पर कह रही हैं, देखो सखियो, अहीरों की इस बस्ती में एक बहुत बड़ा व्यापारी आया है। इस व्यापारी ने अपने ज्ञान और योग के माल का भारी बोझ सीधे ब्रज में आकर उतारा। यह हम ब्रजवासियों को सर्वथा भोला–भाला जान कर फटकन देकर हम से महार्थ स्वर्ण को माँग रहा है। इसके माल को किसी ने खरीदा नहीं और आरंभ से ही इसे घाटा उठाना पड़ा है। अब ऐसे माल (ज्ञान) के भारी बोझ को अपने सिर पर लिए घूम रहा है। भला ऐसे खोटे माल को इसके कहने पर खरीदकर कौन अज्ञानी अपने को ठगवाए? ऐसा भी क्या कोई मूर्ख होगा जो अपने घर का मधुर दुग्ध छोड़ कर खारे कुएँ का जल पिएगा! अर्थात् कौन भगवान कृष्ण की मधुर उपासना को त्याग कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर उन्मुख होगा? हे उद्धव, यदि तुम अपना माल बेचना चाहते हो तो यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ और देरी मत करो, और उस महाजन (श्रीकृष्ण) को लेकर हमें दिखाओ, जिसने यह माल देकर तुम्हें भेजा है। तुम्हे इसके बदले मुँह माँगा दाम मिलेगा। तात्पर्य यह है कि यदि तुम निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर हमें लगाना चाहते हो तो पहले हम लोगों को श्रीकृष्ण के दर्षन कराओ जो बहुत समय से हमसे बिछुड़े हैं, उसके पश्चात् हम तुम्हारे ज्ञान को स्वीकार करेंगी।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्योपार तिहारो ऊधो ऐसोई फिरि जैहै।।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छांड़ि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दैहै।
सूरदास प्रभु गुनहिं छांड़ि कै को निर्गुन निरबैहै?।।

अर्थ– गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव, आपका यह ठगपने का सौदा योग यहाँ नहीं बिकेगा। तुम्हारा यह सौदा ज्यों का त्यों वापस चला जाएगा (यहाँ इसकी खपत न हो सकेगी) हे भ्रमर, तुम जिसके पास इसे ले आए हो। वह उसके हृदय में नहीं समा सकेगा। भला कोई अंगूर को छोड़कर अपने मुख में नीम का कड़वा फल ग्रहण करेगा? ऐसा कौन मूर्ख है जो मूली के पत्तों के बदले में (निस्सार निर्गुण व ज्ञान के एवज में) मुक्ता (श्रीकृष्ण की भक्ति) को भेंट करेगा? सूरदास कहते हैं कि भगवान के सगुण रूप को छोड़ कर कौन निर्गुण (गुणहीन) ब्रह्म का निर्वाह (उपासना) करेगा!

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यौं बनजारे टाँड़े।।
हमरे गति–पति कमल–नयन की, जोग सिखें ते राँड़े।
कहौ मधुप कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँडे।।

कहु शट्पद कैसें खैयतु है, हाथिनि कैं सँग गाँड़े।।
काकी भूख गई बयारि भषि, बिना दूध घृत माँड़े ।
काहे कौं झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।।
सूरदास तीनौ तहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाड़े।।

अर्थ– गोपियाँ उद्धव पर तंज कसते हुए परस्पर कह रही हैं हे सखी, देखो तो योगशास्त्र सिखाने के लिए पंडित जी आ गए। ये परमार्थी पुराणों के ज्ञान को इस प्रकार लादे हुए हैं जैसे बनजारे बैलों पर सौदा लादे घूमते फिरते हैं। किंतु हमारे लिए तो प्रियतम श्रीकृष्ण ही शरण हैं और उन्हीं से हमारी प्रतिष्ठा तथा मर्यादा है। योग तो वे ही सीखेंगी जो राँड हैं। हे भ्रमर, यह तो बताओ कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं! हे भ्रमर कहो तो हाथियों के साथ गन्ने के टुकड़े कैसे खाए जा सकते हैं? हमें यह तो बताओ कि बिना दूध, घृत और मीठी रोटी खाए मात्र हवा भक्षण करने से किसकी भूख मिट सकती है? अतः तुम व्यर्थ में बकवाद क्यों कर रहे हो और हमने ऐसा कौन–सा अपराध किया है जिसके लिए तुमने हमें अपनी कठोर और नीरस बातों से दंडित किया? हे उद्धव, तुम्हें जानना चाहिए कि धनिया, धान और कुश्मांड ये तीनों एक ही साथ नहीं उत्पन्न हो सकते। तात्पर्य यह है कि निर्गुणोपासना और सगुणोपासना एक साथ नहीं हो सकती।

हम तो दुहूं भाँति फल पायो।
जो ब्रजनाथ मिलैं तो नीको, नातरु जग जस गायो।।
कहँ वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघुजाती।
कहँ वै कमला के स्वामी सँग मिलि बैठीं इक पाँती।।
निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब साँच कहो धौं मुक्ति कौन की दासी?
जोग–कथा, पा लागों उधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो तानी जननी छारम।।

व्याख्या–गोपियाँ कहती हैं–उद्धव जी ! हमें कृष्ण से प्रेम करने पर कोई पछतावा नहीं है। हमारे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। यदि हमारे निष्कपट प्रेम से प्रभावित होकर कृष्ण हमें फिर से दर्शन दें तो बहुत ही अच्छी बात है। यदि ऐसा नहीं भी हो तो भी संसार में उनका यश गाने का सुफल तो हमें मिलेगा ही। संसार देखेगा कि इस प्रेम प्रसंग में किसका कैसा व्यवहार रहा? हम तो गोकुल गाँव की ग्वालिन हैं। वर्ण और जाति दोनों में ही छोटी हैं। कृष्ण उच्च जाति के हैं। भला उनसे प्रेम करने का हमको क्या अधिकार था पर मथुरा की एक दासी, उन लक्ष्मी के स्वामी नारायण के अवतारे, कृश्ण के साथ बराबरी से एक पंक्ति में बैठी हैं। यह कैसा बड़प्पन हुआ? उद्धव! आप तो ज्ञानी हैं। तनिक बताइए जिस परब्रह्म श्रीकृष्ण को वेदों के अध्ययन कर्ता, ध्यानस्थ

योगी और ज्ञानी मुनि जन भी प्राप्त नहीं कर पाते, वे ही कृष्ण गोपों की बस्तियों में आकर क्यों रहे? केवल गोप–गोपियों की भक्ति और प्रेम के कारण वह निराकार–निर्गुण ब्रह्म सगुण साकार होकर इस ब्रजभूमि में अवतरित हुआ है। अब आप सब छोड़कर यही बता दीजिए कि आप जैसे ज्ञानी और योगी जिसे मुक्ति की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, वह किसकी दासी है? वह भक्ति की दासी है। हम ब्रजवासी प्रेम और भक्ति के उपासक हैं। हमें मुक्ति की आकांक्षा नहीं। अब आपके पैर छूकर रू हमारी यही प्रार्थना है कि आप अपनी योग कथा को बार–बार न सुनाएँ। हमारा तो स्पष्ट और दृढ़ मत है कि श्रीकृष्ण को छोड़ जो व्यक्ति किसी अन्य की उपासना करता है, वह अपनी माता को ही तुच्छ बनाकर लजाता है।

लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत?
कहा कहौं ब्रजनाथ–चरित अब अंतरगति यों लूटत।।
चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुन गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह विनोद गृह वन तें आवत।।
चरनकमल की सपथ करति हौं यह संदेस मोहि विष सम लागत।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत।।

अर्थ– गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव, कृष्ण के प्रति हमारा यह प्रेम भाव आकस्मिक नहीं है, बल्कि इसका उदय बचपन से हुआ है, अतः बचपन का प्रेम कैसे छूट सकता है। (श्रीकृष्ण) के चरित्र की विशेषताएँ हमारी चित्तवर्षत्ति को आज भी अभिभूत कर लेती हैं। उनकी चंचल गति, सुंदर चितवन और वह मुस्कराहट तथा मंद–मंद स्वरों में गानाकृजब वे नटवर वेश में नाना प्रकार के विनोद करते हुए वन से घर लौटते थे, तो हमारा मन श्रीकृष्ण की उस अदा पर मोहित हो जाता था। हम उनके कमलवत चरणों की शपथ खाकर कहती हैं कि उनका यह योग का संदेश श्रीकृष्ण की उस रूप–माधुरी के समक्ष विष के समान दुखद प्रतीत होता है। सूरदास कह रहे हैं कि हे उद्धव, हमें सोते–जागते श्रीकृष्ण की वह माधुर्यपूर्ण मूर्ति एक क्षण के लिए नहीं भूलती।

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नंदनंद सों उर यह दृढ़ करि पकरी।।
जागत, सोबत, सपने सौंतुख कान्ह–कान्ह जक री।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अति! ज्यों करुई ककरी।।
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी।।

अर्थ– गोपियाँ कहती हैं हे उद्धव, हमारे लिए तो श्रीकृष्ण हारिल पक्षी की लकड़ी के समान हैं। जैसे हारिल पक्षी जीते जी अपने चंगुल से उस लकड़ी को नहीं

छोड़ता ठीक उसी प्रकार हमारे हृदय ने मनसा, वाचा और कर्मणा श्रीकृष्ण को दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया है। अतः सोते समय, स्वप्न में तथा प्रत्यक्ष स्थिति में हमारा मन 'कान्ह' 'कान्ह' की रट लगाया करता है। तुम्हारे योग को सुनने पर हमें ऐसा लगता है जैसे कड़वी ककड़ी। तुम तो हमें वही निर्गुण ब्रह्मोपासना या योग–साधना का रोग देने के लिए यहाँ चले आए। जिसे न कभी देखा और न जिसके बारे में कभी सुना और न कभी इसका अनुभव किया। इस ब्रह्मोपासना या योग–साधना का उपदेष तो उसे दीजिए जिसका मन चंचल हो। हम लोगों को इसकी क्या आवश्यकता, हम लोगों का चित्त तो श्रीकृष्ण के प्रेम में पहले ही से दृढतापूर्वक आबद्ध है।

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच, न हाँसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी।।
पावैगो पुनि कियो अपनो जो रे! कहैगो गाँसी।।
सुनत कौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।

अर्थ– गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव, भला हमें यह तो बताइए कि तुम्हारा वह निर्गुण ब्रह्म किस देश का निवासी है। हे भ्रमर, सच में, हम कसम खाकर पूछ रही हैं, मजाक तुमसे नहीं कर रही हैं। हमें तुम हँसकर समझा दो कि निर्गुण ब्रह्म का कौन पिता है और इसकी माता कौन है? इसकी स्त्री कौन है और कौन इसकी दासी है? इसका रंग कैसा है, कैसी इसकी वेष–भूषा है और किस रस में यह डूबा रहता है? हे उद्धव, अब ज्यादा जले–भुने की बात मत करो नहीं तो तुम्हें अपनी करनी का फल भी मिल जाएगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियों की ऐसी बातों को सुनकर उद्धव ठगे से चुप हो गए, उनसे कुछ कहते नहीं बना।

अध्याय – 9

तुलसीदास और उनका काव्य

9.1 तुलसीदास का जीवन परिचय

जन्म– तुलसीदास का जन्म हिन्दू कैलेण्डर माह श्रावण (जुलाई–अगस्त) के उज्ज्वल आधे, शुक्ल पक्ष के सातवें दिन सप्तमी (11 अगस्त 1497) उत्तर प्रदेश के सोरों गाँव मे हुआ था। यद्यपि उनके जन्मस्थान के रूप में तीन स्थानों का उल्लेख किया गया है, वर्तमान विद्वान वर्तमान उत्तर प्रदेश के राजापुर को उनका जन्मस्थान बताते हैं। २०१२ में सोरों को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आधिकारिक रूप से तुलसी दास का जन्मस्थान घोषित किया गया था। उनके माता–पिता हुलसी और आत्माराम दुबे थे। अधिकांश स्रोत उन्हें भारद्वाज गोत्र (वंश) के सनाढ्य ब्राह्मण के रूप में पहचानते हैं।

तुलसीदास और सर जॉर्ज ग्रियर्सन उनके जन्म का वर्ष विक्रम 1568 (1511 ई०) बताते हैं। इन जीवनीकारों में रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, रामगुलाम द्विवेदी, जेम्स लोचटेफेल्ड, स्वामी शिवानंद और अन्य शामिल हैं। वर्ष 1497 भारत में और लोकप्रिय संस्कृति में कई वर्तमान जीवनियों में दिखाई देता है। इस वर्ष से असहमत जीवनीकार तर्क देते हैं कि इससे तुलसीदास का जीवनकाल 126 वर्ष के बराबर हो जाता है, जो उनके विचार में असम्भव नहीं तो कम नहीं है। इसके विपरीत, रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि तुलसीदास जैसे महात्मा (महान् आत्मा) के लिए 126 वर्ष की आयु असम्भव नहीं है। भारत सरकार और प्रांतीय सरकारों ने लोकप्रिय संस्कृति में तुलसीदास के जन्म के वर्ष के अनुसार, वर्ष 2011 ई० में तुलसीदास की 500वीं जयन्ती मनाई।

बचपन– किंवदन्ती है कि तुलसीदास का जन्म बारह महीने गर्भ में रहने के पश्चात् हुआ था, जन्म के समय उनके मुँह में सभी बत्तीस दाँत थे, उनका स्वास्थ्य और रूप पाँच वर्ष के लड़के जैसा था, और वह अपने जन्म के समय रोए नहीं बल्कि राम का उच्चारण किया । इसलिए उनका नाम रामबोला (शाब्दिक रूप से, वह जिसने राम का उच्चारण किया) रखा, जैसा कि तुलसीदास स्वयं विनय पत्रिका में बताते हैं। मूल गोसाईं चरित के अनुसार, उनका जन्म अभुक्तमूल नक्षत्र के तहत हुआ था, जो हिन्दू ज्योतिष के अनुसार पिता के जीवन के लिए तत्काल खतरा पैदा करता है। उनके जन्म के समय अशुभ घटनाओं के कारण, उन्हें चौथी रात को उनके माता–पिता ने त्याग

दिया, अपनी रचनाओं कवितावली और विनय पत्रिका में, तुलसीदास ने अपने माता–पिता द्वारा अशुभ ज्योतिषीय विन्यास के कारण जन्म के बाद उन्हें त्यागने की पुष्टि की है।

चुनिया बच्चे को अपने गाँव हरिपुर ले गई और साढ़े पाँच वर्ष तक उसकी देखभाल की, जिसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। रामबोला को एक दरिद्र अनाथ के रूप में स्वयं की देखभाल करने के लिए छोड़ दिया गया था, और वह भिक्षा मागते हुए दर–दर भटकता रहा। ऐसा माना जाता है कि देवी पार्वती ने एक ब्राह्मण महिला का रूप धारण किया और रामबोला को हर दिन भोजन कराया। या वैकल्पिक रूप से, अनन्ताचार्य के शिष्य। रामबोला को तुलसीदास के नए नाम के साथ विरक्त दीक्षा (वैरागी दीक्षा) दी गई। तुलसीदास ने विनयपत्रिका के एक अंश में अपने गुरु के साथ पहली मुलाकात के दौरान हुए संवाद का वर्णन किया है । जब वे सात साल के थे, तो उनका यज्ञोपवीत (अर्थात् पवित्र धागा समारोह) माघ (जनवरी–फरवरी) के महीने के शुक्ल पक्ष के पाँचवें दिन अयोध्या में नरहरिदास द्वारा किया गया था, जो राम से संबंधित एक तीर्थ स्थल है। तुलसीदास ने अयोध्या में अपनी शिक्षा शुरू की। कुछ समय बाद, नरहरिदास उन्हें एक विशेष वराह क्षेत्र सोरों (वराह को समर्पित मंदिर वाला एक पवित्र स्थान – विष्णु का वराह अवतार) ले गए, जहाँ उन्होंने पहली बार तुलसीदास को रामायण सुनाई। तुलसीदास ने रामचरितमानस में इसका उल्लेख किया है–

मय पुनि निज गुर सना सुनि कथा सो सूकरखेता।
समुझि नहिं तासा बालापना तब अति रहेउ।।

अधिकांश लेखक तुलसीदास द्वारा सन्दर्भित वराहक्षेत्र को सूकरक्षेत्र के साथ आधुनिक कासगंज में सोरों वराह क्षेत्र के रूप में पहचानते हैं, तुलसीदास ने रामचरितमानस में आगे उल्लेख किया है कि उनके गुरु ने उन्हें बार–बार रामायण सुनाई, जिससे उन्हें कुछ हद तक समझ में आया।

तुलसीदास बाद में पवित्र शहर वाराणसी आए और गुरु शेष सनातन से 15–16 वर्षों की अवधि में संस्कृत व्याकरण, चार वेद, छः वेदांग, ज्योतिष और हिंदू दर्शन के छह विद्यालयों का अध्ययन किया, जो वाराणसी के पंचगंगा घाट पर स्थित थे। शेष सनातन नरहरिदास के मित्र और साहित्य और दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान थे।

विवाह और गृह त्याग– तुलसीदास की वैवाहिक स्थिति के बारे में दो विपरीत विचार हैं। तुलसी प्रकाश और कुछ अन्य कार्यों के अनुसार , तुलसीदास का विवाह विक्रम सम्वत् 1604 (1561 ई।) में कार्तिक माह (अक्तूबर–नवम्बर) के शुक्ल पक्ष की ग्यारहवीं तिथि को रत्नावली से हुआ था। रत्नावली, गोण्डा जिले के नारायणपुर गाँव के पराशर गोत्र के ब्राह्मण दीनबन्धु पाठक की पुत्री थीं। उनका तारक नाम का एक पुत्र था, जो बचपन में ही मर गया था। एक बार जब तुलसीदास हनुमान मन्दिर गए थे, रत्नावली अपने भाई के साथ अपने पिता के घर गईं। जब

तुलसीदास को यह पता चला, तो वे अपनी पत्नी से मिलने के लिए रात में सरजू नदी तैरकर पार गए। रत्नावली ने इसके लिए तुलसीदास को डांटा, तुलसीदास ने उसे तुरन्त छोड़ दिया और पवित्र शहर प्रयाग के लिए प्रस्थान किया। यहाँ, उन्होंने गृहस्थ अवस्था को त्याग दिया और एक साधु (तपस्वी) बन गए।

कुछ लेखक तुलसीदास के विवाह प्रसंग को बाद में जोड़ा गया मानते हैं और कहते हैं कि वे ब्रह्मचारी थे। इनमें रामभद्राचार्य भी अनुर्भूक्त हैं, जो विनयपत्रिका और हनुमान बाहुक में दो श्लोकों का हवाला देते हैं कि तुलसीदास ने कभी विवाह नहीं किया और बचपन से ही साधु थे।

भगवान श्री राम जी से भेंट– कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुनः काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम–कथा सुनाने लगे। कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान जी ने कहा– 'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी दर्शन होंगें।' इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष–बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमान जी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमान जी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रातः काल फिर दर्शन होंगे।

संवत 1607 की मौनी अमावस्या को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्री राम जी पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा–'बाबा! हमें चन्दन चाहिये क्या आप हमें चन्दन दे सकते हैं?' हनुमान जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा–

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर।।

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की उस अद्भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध–बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

रामचरितमानस की रचना– संवत 1631 का प्रारम्भ हुआ। देवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम–जन्म के दिन था। उस दिन प्रातः काल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छ्ब्बीस दिन में यह अद्भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। सम्वत 1633

के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम–विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

इसके पश्चात् भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ–मन्दिर में रख दी गयी। प्रातरूकाल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया–सत्यं शिवं सुन्दरम जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम' की ध्वनि भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा समान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी। इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों–दिन बढ़ने लगा।

मृत्यु– तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय–पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया। सम्वत १६८० में श्रावण शुक्ल सप्तमी को तुलसीदास जी ने 'राम–राम' कहते हुए अपना शरीर का परित्याग किया।

9.2 तुलसीदास की रचनाएँ–

अपने ११२ वर्ष के दीर्घ जीवन–काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं –

गीतावली, कृष्ण–गीतावली, रामचरितमानस, पार्वती–मंगल, विनय–पत्रिका, जानकी–मंगल, रामललानहछू, दोहावली, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञा–प्रश्न, सतसई, बरवै रामायण, कवितावली, हनुमानबाहुक।

इनमें से रामचरितमानस, विनय–पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में किसी कवि की यह आर्षवाणी सटीक प्रतीत होती है – 'पश्य

देवस्य काव्यं, न मृणोति न जीर्यति।' अर्थात देवपुरुषों का काव्य देखिये जो न मरता न पुराना होता है।

लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व आधुनिक प्रकाशन–सुविधाओं से रहित उस काल में भी तुलसीदास का काव्य जन–जन तक पहुँच चुका था। यह उनके कवि रूप में लोकप्रिय होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस जैसे वृहद् ग्रन्थ को कण्ठस्थ करके सामान्य पढ़े लिखे लोग भी अपनी शुचिता एवं ज्ञान के लिए प्रसिद्ध होने लगे थे।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में अन्तः साक्ष्य का अभाव दिखायी देता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

श्रीरामचरितमानस, रामललानहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती–मंगल, जानकी–मंगल, रामाज्ञाप्रश्न, दोहावली, कवितावली, श्रीकृष्ण–गीतावली, विनयपत्रिका, सतसई, छन्दावली रामायण, कुण्डलिया रामायण, राम शलाका, संकट मोचन, करखा रामायण, रोला रामायण, झूलना, छप्पय रामायण, कवित्त रामायण, कलिधर्माधर्म निरूपण, हनुमान चालीसा।

9.3 तुलसीदास काव्य की भाषा और शैली

तुलसीदास भाव और भाषा दोनों क्षेत्रों में अद्वितीय कवि हैं। उन्होंने भक्तिकाल के दौर में प्रचलित दोनों भाषाओं में अपनी रचनाएँ की। जहाँ अवधी में रामचरितमानस की रचना की, वहीं कृष्णगीतावली ब्रजभाषा में। उनके यहाँ अवधी एवं ब्रजभाषा के पूर्वी एवं पश्चमी दोनो रूप पाए जाते हैं। कवि ने भाव के दृष्टिकोण से भाशा का विवेकपूर्ण प्रयोग किया है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों, रूपकों, छन्दों का प्रयोग, मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग एवं उचित व्याकरण व्यवस्था उनके साहित्य लेखन की धुरी है।

तुलसी की भाषा– तुलसी की काव्य–भाषा पर बात करने से पहले हमें भक्ति–काव्य की उस भाषा–चेतना को ध्यान में रखना होगा, जिसमें संस्कृत के विरोध के साथ–साथ बोलियों के पक्ष में एक सामान्य सहमति बन चुकी थी। संस्कृत को कुएँ का जल और 'भाषा' को बहता नीर सिद्ध किया जा चुका था। कविता के संसार में तुलसीदास के प्रवेश के समय मलिक मोहम्मद जायसी के जरिए अवधी और सूरदास के जरिए ब्रजभाषा के दो पथ तैयार हो चुके थे। अपनी रचनाओं का जनता से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने के लिए तुलसीदास ने भी लोक–भाषा का चयन किया। हालाँकि उन्होंने विद्वत समाज की उपेक्षा नहीं की। वे संस्कृत का भी प्रयोग मंगलाचरण में करते रहे। भक्ति–आन्दोलन की सफलता का बड़ा कारण कवियों द्वारा लोक–भाषा का चयन भी था। तुलसी भी इसी भाषा के आग्रही थे। भाषा में पांडित्य का बहुधा प्रदर्शन उन्हें काम्य नहीं था। इसलिए बार–बार अपने कवित्त विवेक पर प्रश्न–चिह्न भी खड़ा करते हैं–

कबित बिबेक एक नहिं मोरे, सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।
कबि न होऊँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।।

तुलसी का यह कथन उनके कविता सम्बन्धी अविवेक को नहीं दर्शाता, बल्कि उनके आत्मगोपन की प्रवृत्ति को दिखाता है। भाषा में वे सहजता के आग्रही हैं। वैसी तमाम भाषा जो आम जनजीवन से अपना संवाद स्थापित न कर सके, वह तुलसीदास को प्रिय नहीं थी। वे कहते हैं–

आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।

तुलसीदास ने अवधी के साथ ब्रजभाषा में भी रचनाएँ कीं। संस्कृत पर भी उनका उतना ही अधिकार था। रामचरितमानस के हर सोपानों की शुरुआत तुलसीदास ने संस्कृत में की है। बाकी के दोहे और चौपाई अवधी में हैं। वाणी की देवी और मंगल के देवता गणेश से अपने रामचरितमानस का श्रीगणेश करने वाले तुलसीदास वाणी और मंगल को जिस लोक से जोड़ना चाहते हैं, उसका पूरा साक्ष्य उनके रचना संसार में मौजूद है। मंगल अगर लोक का होना है, तो वाणी भी लोक–वाणी ही होगी।

तुलसीदास की काव्यभाषा पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस तरफ संकेत किया कि जायसी ने सिर्फ अवधी में लिखा और सूरदास ने सिर्फ ब्रजभाषा में, जबकि तुलसी ने दोनों काव्य–भाषाओं में समान रूप से लिखा। जायसी से तुलसी की अवधी और सूरदास से तुलसी की ब्रजभाषा की तुलना करें, तो निश्चय ही तुलसी आगे के कवि सिद्ध होते हैं।

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा कि "इन दोनों भाषाओं को संस्कृत की परिपक्व चाशनी की पाग देकर उन्होंने उन्हें अद्‌भुत मिठास प्रदान की है। उनकी रचनाओं में इन दोनों भाषाओं पर इतना अधिकार दिखाई देता है जितना स्वयं सूरदास का ब्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था।"

श्यामसुन्दर दास ने तुलसी की भाषा–दृष्टि पर विचार करते हुए एक बहुत अच्छी बात कही है। उन्होंने लिखा है कि "संस्कृत, जिसमें अब तक रामकथा संरक्षित थी, अब जनसाधारण की बोलचाल की भाषा न रह कर पण्डितों के ही मण्डल तक बँधी रह गई थी। इससे 'रामचरितमानस' का आनन्दपूर्ण लाभ सर्वसाधारण नहीं उठा सकते थे। इसीलिए गोस्वामी जी को भाषा में रामचरितमानस लिखने की प्रेरणा हुई, पर पण्डित लोगों में उस समय भाषा का आदर न था । भाषा कविता की वे हँसी उड़ाते थे।

भाषा भनिति मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।।

परन्तु गोस्वामी जी ने उनकी हँसी की कोई परवाह नहीं की, क्योंकि वे जानते थे कि वही वस्तु मानास्पद है जो उपयोगी भी हो। जो किसी के काम न आए, उसका मूल्य ही क्या?"

तुलसीदास ने गीतावली, विनयपत्रिका, और कवितावली का अधिकांश बृजभाषा में लिखा, जो फुटकल छन्दों की रचना है। बृजभाषा में महाकाव्य की परम्परा नहीं थी। जब रामचरितमानस जैसा प्रबन्ध–काव्य लिखने बैठे तो उन्होंने तीन कारणों से अवधी का चुनाव किया। एक तो वह उनकी अपनी मातृभाषा थी। दूसरी यह कि उनके काव्य–नायक राम की अयोध्या भी अवधी क्षेत्र था। तीसरा कारण यह कि अवधी में सूफी कवियों ने प्रबन्ध–काव्य की परम्परा का विधिवत विकास कर लिया था। तुलसीदास के तीस वर्श पहले जायसी 'पद्मावत' लिख चुके थे।

शब्द–चयन– तुलसी की काव्य–भाषा पर विचार करते हुए अनेक आचार्यों ने उनके शब्द–चयन में सावधानी की सराहना की है। आचार्य शुक्ल ने उनकी अवधी में चित्रकूट और अयोध्या के आस–पास की बोलियों में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर उनके जन्मस्थान सम्बन्धी विवाद का समाधान किया है। इसके अलावा तुलसी की जो दूसरी विशेषता है, वह दूसरी भाषाओं के शब्दों के उदार उपयोग से जुड़ी है। ब्रज और अवधी के अलावा बुन्देलखण्डी, भोजपुरी और यहाँ तक कि अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग भी तुलसीदास के यहाँ मिलता है। एक बड़े हृदय का कवि ही भाषा के संसार में सम्मिश्रण की सांस्कृतिक शक्ति को स्वीकार करता है। जीवन और जीवन से जुडी हुई भाषा ही यह बोध पैदा कर सकती है–

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहि सुजान

सरल कविता ही श्रेयस्कर होती है, और यह सरलता जीवन में प्रचलित शब्दों के उपयोग से ही सम्भव है। शब्द चयन में तुलसीदास किसी शुद्धता ग्रन्थि के शिकार नहीं दिखाई पड़ते।

नाटकीयता–अमृतलाल नागर ने 'मानस का हंस' में तुलसी के नाटककार रूप का आख्यान प्रस्तुत किया है। यह निश्चय ही तुलसी का अद्भुत प्रयोग था कि एक पूरे नगर को रंगमंच में तब्दील कर दिया। तुलसीदास के सन्दर्भ में विचार करें तो वे नाटक न लिखते हुए भी नाटक और रंगमंच के बीच ऐसा कोई विवाद नहीं देखते। पूरा रामचरितमानस नाटकीयता का अद्भुत प्रयोग है। गौरतलब है कि जिस भाषा में नाटकों की कोई परम्परा नहीं रही हो, उस भाषा में कविता को नाटकीय सम्भावनाओं से परिपूर्ण करना तुलसी मौलिक और ऐतिहासिक महत्त्व का प्रयोग था। विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'लोकवादी तुलसीदास' में तुलसी की इस विशिष्टता को रेखांकित किया है।

"महान कविता में नाटकीयता विद्यमान होती है। यह नाटकीयता कवि कौशल की कसौटी है। नाटकीयता केवल कथानक–विन्यास में नहीं, संवाद, वाक्य गठन, शब्दों की ध्वनि योजना, छन्दों की यति–रचना के प्रत्येक उपकरण में रची बसी होती है। यहाँ एक बात और ध्यातव्य है। नाटकीयता में काव्य–दृश्य होता है,

किन्तु प्रदर्शन, भाषा स्फीति और नाटकीयता एक साथ नहीं चल सकते। अनुभूति की तीव्रता जैसे सघन बनकर उपमा, प्रतीक, बिम्ब बनते हैं, भाषा उसी प्रकार अनुभूति की धार पर कटकर विवरणात्मकता से नाटकीयता में पर्यवसित हो जाती है ।

दशरथ और कैकेयी, कैकेयी और मन्थरा और उसके पहले लक्ष्मण और परशुराम के सिर्फ सवांद ही नहीं, कविता कहने का जो पूरा ढंग है, या यों कहें कि पूरा काव्य विन्यास ही तुलसीदास के यहाँ नाटकीय गुणों से रचा पडा है। अवध में रामलीला की परम्परा और उसकी लोकप्रियता तुलसीदास से नई है या पुरानी, यह तो विचार का विषय है, लेकिन इस परम्परा की लोकप्रियता में तुलसीदास की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। तुलसी की काव्य भाषा में नाटकीयता का यह एक सामाजिक पक्ष है।

रूपक और प्रतीक– तुलसी की काव्यभाषा पर विचार करने के क्रम में सबसे पहले हमारा ध्यान उस प्रसंग की ओर जाता है, जहाँ राम सीता को पहली बार देखकर मन ही मन पुष्पवाटिका में पुलकित हैं। गुरु विश्वामित्र के लिए फूल लेकर लौट रहे हैं, लेकिन इस फूल पर, हृदय की दीवार पर, टंकित सीता का चित्र भारी पड़ रहा है। बात छिपाए नहीं छिपती और गुरु के सामने असलियत जुबान पर आ जाती है। दिन जैसे–तैसे कटता है, लेकिन शाम होते ही पूरब में चन्द्रमा का उदय फिर सीता की याद दिलाता है–

प्राची दिसि ससि उगउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा।।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं।।

राम का यह विचार कि चन्द्रमा सुन्दर हो सकते हैं, लेकिन सीता के समान नहीं हो सकते। तुलसीदास को यह टीस थी कि सीता जैसी स्त्री के सौन्दर्य की तुलना दूसरे कवियों की जूठी की हुई उपमाओं से की जाए।

जनमु सिन्धु पुनि बन्धु विषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रंक।

तुलसीदास की काव्य–चेतना और काव्य–भाषा में फर्क नहीं है। जिस भाषा पर सवार होकर वे राम–कथा कहने चले थे वह भाषा उसी तीर की तरह है, जिससे दूर तक मार करने के लिए कमान को बहुत पीछे तक खींचना होता है। चन्द्रमा को सौन्दर्य का प्रतिमान नहीं बनाना है, तो इतने से काम नहीं चलेगा कि सीता को उनसे सुन्दर मान लिया जाए। बल्कि इससे आगे जा कर वे उनकी पूरी जन्म–कुण्डली पर विचार करते हैं। खारे समुद्र में उनका जन्म, उसी समुद्र, जिसमें उनके साथ विष भी निकला था। निकला तो अमृत भी था, लेकिन वे यहाँ अमृत की चर्चा नहीं करते। विष का असर होने का ही कारण है, कि वे दिन भर निस्तेज पड़े रहते हैं और ऊपर से काले दाग आ जाते हैं। और कहाँ सीता जी? और आगे चलें। अभी चाँद से बहस जारी है। यह उन्हें कुछ तिरछे नजर नहीं आते, बल्कि–

घटइ बढइ बिरहिनि दुख दाई । ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।।

ये चन्द्रमा इतने लाचार और गुणहीन ही नहीं, अवगुण सम्पन्न लगते हैं। उनका बराबर घटना–बढना, विरहिणी सत्रियों को दुख देने वाला इनका रूप, चकवे को दुखी करने वाला उनका रूप, और कमल को मुरझाने वाला रूप ये सब मिलकर चन्द्रमा का 'चरित्र प्रमाण–पत्र' प्रस्तुत ऐसे करते हैं, जिसको अनुसंशित और अग्रसारित करने का साहस कोई न कर सके। तुलसीदास के राम ही जब यह कह रहे हैं तो किसी दूसरे का निहोरा करने की जरूरत क्या?

तुलसीदास ने राम चन्द्रमा प्रसंग में एक नए प्रेमी के मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया है, जहाँ धरती से कम आकाश में ज्यादा दिलचस्पी पैदा हो जाती है। साथ ही एक अद्‌भुत प्रयोग भी किया है। रात के अन्धकार में तुलसी की दिलचस्पी शायद कम है। यही कारण है कि निराला जब राम की शक्ति पूजा लिखते हुए तुलसीदास से लोहा लेने का साहस करते हैं, तब शुरुआत ही रवि के अस्त हो जाने से करते हैं। तुलसी के राम रात भर चन्द्रमा से लड़ते रहे। उन्हें उनकी हैसियत का एहसास कराते रहे, लेकिन जैसे ही रात बीतती है वैसे ही पुनः–

अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलिन

कमल और सूर्य भारत के लिए विशेष अर्थ रखते हैं। इन दोनों प्रतीकों को राम के साथ जोडने के लिए तुलसी ने जिस तरह के प्रयोग किए हैं, वह सिर्फ वही कर सकते हैं। सीता के अपहरण के बाद रामचरितमानस में राम जब साधारण मनुष्य की तरह विलाप कर रहे हैं, तब गोदावरी के तट पर सुन्दरता के अन्य प्रतीकों के साथ 'चन्द्रमा' भी राम की प्रशंसा सुन रहे हैं। इस प्रशंसा का कारण यह है कि जब तक इनके साथ सीता जैसा सौन्दर्य था तब उसका महत्त्व कम था। आज जब सीता नहीं है, तब इन्हें जश्न मनाने का अवसर मिला है। तुलसीदास की प्रतीक–योजना की बहुस्तरीयता के साथ कथानक में नाटकीयता को जोड़कर देखने पर चकित हुए बिना नहीं रहा जा सकता ।

तुलसीदास के काव्यभाषा की जिस महत्त्वपूर्ण विशेषता की ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया था, वह विशेषता थी उनकी प्रसंगानुकूल भाषा। शुक्ल जी ने लिखा है कि,"रसों के अनुकूल कोमल–कठोर पदों की योजना तो निर्दिष्ट रूढ़ि ही है। उसके अतिरिक्त गोस्वामी जी ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि किस स्थल पर विद्वानों या शिक्षितों की संस्कृत मिश्रित भाषा रखनी चाहिए और किस स्थल पर ठेठ बोली। घरेलू प्रसंग समझकर कैकेयी और मन्थरा के संवाद में उन्होंने ठेठ बोली और सत्रियों में विशेष चलते प्रयोगों का व्यवहार किया है।"

हिन्दी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा बनाने का श्रेय आचार्य शुक्ल ने तुलसी को समर्पित किया है। इस साहित्यिक भाषा में जिस सादगी और मर्यादा का निर्वाह हुआ

है, उसमें अलंकारों का, छन्दों का, शब्द शक्तियों का व्यावहारिक और आवश्यक उपयोग ध्यान देने लायक है। इनका उपयोग तुलसीदास ने चमत्कार और प्रदर्शन के लिए नहीं किया है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि "उनकी साहित्य मर्मज्ञता, भावुकता और गम्भीरता के सम्बन्ध में इतना और जान लेना भी आवश्यक है कि उन्होंने रचना नैपुण्य का भद्दा प्रदर्शन कहीं नहीं किया है और न शब्द चमत्कार आदि के खिलवाड़ो में वे फँसे हैं। अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक–दमक दिखाते हुए नहीं। कहीं–कहीं लम्बे–लम्बे रूपक बाँधने में अवश्य उन्होंने एक भद्दी परम्परा का अनुसरण किया है।"

अवधी और बृजभाषा पर तुलसीदास के समान अधिकार की चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल की यह टिप्पणी पढ़े बगैर तुलसी की काव्य–भाषा पर कोई बात पूरी नहीं होती। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उन्होंने लिखा है– " तुलसीदास जी के रचना विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से सौन्दर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्य क्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिन्दी कविता के प्रेमीमात्र जानते हैं कि उनका बृज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। बृजभाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं, वही माधुर्य और भी संस्कृत रूप में गीतावली और कृष्णगीतावली में पाते हैं । ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी की पद्मावत में मिलती है वही जानकी–मंगल, पार्वती–मंगल, बरवै रामायण और रामललानहछू में हम पाते हैं । यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि न तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का बृजभाषा पर।"

भाषा की प्राञ्जलता एवं परिष्कृतता– तुलसी दास की भाषा में प्राञ्जलता एवं परिष्कृतत्व का पूर्ण योग है। वस्तुतः तुलसी ने अवधी एवं बृजभाषा में प्राञ्जलता व परिष्कृतता की वास्तविकता को समावेशित किया। तुलसी की भाषा में ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों गुण हैं। एक ओर अवधी की ठेठ मिठास है तो दूसरी ओर संस्कृत की कोमलकान्त पदावली की नूतन छटा है।

कन्दर्प अगणित अमित छवि, नव नील नीरज सुन्दरम।
पट पीत मानहु ताड़ित रूचि शूचि नौमि जनक सुताम्बरम।।

विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग– तुलसीदास ने अपनी भाषा में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभश, उर्दू, फारसी, राजस्थानी, गुजराती, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया है।

यथा– (संस्कृत) मसक की पाँसुरी पयोधि परियत है।

(अपभ्रंष)– रामबोला नाम हो गुलाम रामसाहिब को–

प्रचलित मुहाबरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग– मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग

से भाषा में सजीवता एव सशक्तता आ जाती है। तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग अपनी भाषा में खूब किया है– एक–एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

बात चले बात को न मानिवो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझि कै निवाजी रघुनाथ जू।।

प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग भी तुलसीदास ने खूब किया हैं इन लोकोक्तियों के प्रयोग ने इनकी भाषा में प्राण डाल दिए है। देखिए–

(अ) अंजन कहा आँख जेहि फूटे बहुतन कहौ कहाँ करै।

(ब) तुलसीदास सावन के अंधेहि जो सूझत रंग हर्यो।

छन्द विधान– भाषा के समान ही छन्दों पर भी तुलसी का अधिकार था। तुलसीदास ने अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया हैं तुलसी के छन्द विधान के सम्बन्ध में डॉ0 गुलाबराय का मत है कि–"प्रबन्धकाव्य के लिए उन्होंने जायसी की दोहा, चौपाई, शैली की प्रतिष्ठा बढ़ाई, नीति के लिए कबीर की और उनसे पूर्व से चली आती हुई दोहा शैली को अपनाया। सहज में याद रखने के कारण नीति के लिए दोहे उपयुक्त ठहरते हैं श्रृंगारिक और अलंकारिक भावनाओं के लिए रहीम के बरवै छंद को अपनाया गया है। राम के यश–गान के अर्थ भाटों की कवित्त शैली को अलंकृत किया है। युद्ध–वर्णन के लिए वीर–गाथा काल की छप्पय शैली को वे काम में लाए।"

तुलसीदास का काव्य–रूप– तुलसीदास अवधी और बृजभाषा के जिस संयुक्त साहित्यिक क्षेत्र में अपनी रचनात्मकता की तलाश करते हैं, उसकी चर्चा काव्यभाषा के प्रसंग में हो चुकी है। बृजभाषा में चूँकि महाकाव्य की कोई परम्परा नहीं थी, इसलिए उन्होंने जो रचनाएँ बृजभाषा में कीं, उन्हें फुटकल छन्दों तक सीमित रखा। महाकाव्यात्मक विस्तार के लिए उन्होंने अवधी का चुनाव किया और इस चुनाव के कारण की चर्चा पूर्व में हो चुकी है। तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य–पद्धतियों का उपयोग किया है, वे प्रमुख पद्धतियाँ हैं–

1. उपदेशात्मक शैली– सिद्धों–नाथों और निर्गुण सन्तों द्वारा दोहों के जरिए इस शैली का उपयोग बेहद प्रचलित था। तुलसी के मित्र रहीम ने भी इसी शैली का प्रयोग किया है। तुलसीदास की दोहावली, वैराग्य संदीपनी और रामाज्ञा प्रश्नावली में यह शैली दिखाई पड़ती है।

2. वीर रस पद्धति– वीरगाथा काल से ही हिन्दी में यह पद्धति प्रारंभ हो गई थी। इसका विकास और विस्तार रीतिकाल तक हुआ है। तुलसीदास ने राम की वीरता और ओज के लिए इस शैली का उपयोग किया है। रामचरितमानस के लंका काण्ड और कवितावली के सुन्दर काण्ड तथा लंका काण्ड में इस पद्धति का ओजस्वी रूप दिखाई पड़ता है।

3. दोहा–चौपाई पद्धति– जिस अवधी में तुलसीदास रचनाशील थे, उस

अवधी में सूफी प्रेमाख्यानक कवियों ने दोहा और चौपाई का अपनी कविता में विधिवत विकास कर लिया था। तुलसी का पूरा रामचरितमानस इस दोहा–चौपाई पद्धति का सुन्दर निदर्शन है। वैराग्य सन्दीपनी में भी इस दोहे–चौपाई शैली का प्रयोग हुआ है।

4. लोक–गीतों की परंपरा– तुलसी काव्य में लोक–गीतों की एक समृद्ध परम्परा दिखाई पड़ती है। किसी भी मांगलिक अवसर पर तुलसीदास लोकपरम्परा से प्राप्त छन्दों और ध्वनियों के पास जाते हैं । पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामललानहछू इसके प्रमाण हैं। कवितावली और गीतावली में भी इसके अनेक उदाहरण मौजूद हैं। पुत्रोत्सव हो या विवाहोत्सव, जो जिन्दगी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवसर हैं, वहाँ इस लोक–संगीत की ठाट तुलसी के यहाँ खुलकर प्रकट होती है। **बरवै रामायण**, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि तुलसीदास ने इसे अपने मित्र रहीम की रुचि के अनुसार लिखा था, वह बरवै भी लोक छन्द ही है। अवधी का यह ललित छन्द सावन के झूले और होली के गीतों से सम्बन्ध रखता है।

5. कवित्त सवैया और पद पद्धति– तुलसीदास ने अपनी कवितावली में ब्रजभाषा के कवित्त और सवैया पद्धति का प्रयोग किया है। गंग और नरहरि जैसे कवियों ने इन छन्दों को लोकप्रिय बनाया था। ये दोनों कवि अकबर के नवरत्न में शामिल थे। तुलसीदास नवरत्नों में शामिल तो नहीं थे, लेकिन वे राज दरबारों की पसंद से परिचित थे, इसलिए उन्होंने कवित्त और सवैया में भी एक नया प्रयोग किया और इन छन्दों को राज दरबार से बाहर निकालकर जनता के बीच पहुँचाया।

6. पद रचना– तुलसीदास ने भक्ति काल में सर्वाधिक प्रचलित पद काव्य–रूप को भी अपनाया है। वही पद जो कबीर जैसे निर्गुण सन्त कवियों के यहाँ मिलते हैं, सूरदास और मीरा के यहाँ मिलते हैं। उन्होंने अपनी गीतावली, विनय पत्रिका और कृष्णगीतावली में इस पद्धति का समावेश किया है।

आशय यह कि तुलसीदास ने अपने समय तक और अपने समकालीन प्रायः सभी प्रमुख काव्य–रूपों का न सिर्फ उपयोग किया, बल्कि सब में अपनी तरह का प्रयोग कर उनमें एक नई ऊर्जा का संचार भी किया है। इन सभी काव्य–रूपों को वे लोकप्रियता के वास्तविक निर्धारक तथा साहित्य के लक्ष्य, जनता तक ले जाने का प्रयास करते हैं।

कथा–सूत्र की दृष्टि से तुलसीदास ने **प्रबन्ध, निबंध और मुक्तक** तीनों का उपयोग किया है। **प्रबन्ध–काव्य** के अन्तर्गत उन्होंने रामचरितमानस की रचना की है। **निबंध** के अन्तर्गत उन्होंने लोकसंस्कृति से रससिक्त जानकी–मंगल, पार्वती–मंगल और रामललानहछू लिखा, **मुक्तक** के अन्तर्गत कवित्त–शैली में कवितावली और हनुमानबाहुक, दोहा शैली में दोहावली और सगुनावली, बरवशैली में बरवै रामायण, गीत शैली में गीतावली, कृष्ण गीतावली और विनय पत्रिका तथा दोहा चौपाई शैली में बैराग्य संदीपनी की रचना की है।

अलंकार–"भूषण बिन न विराजही कविता वनिता–मित्त" की भाँति तो नहीं परन्तु तुलसी ने सभी अलंकारों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। वस्तुतः बात यह है कि वे अलंकारों के आग्रही नहीं थे, बल्कि विषय के वर्णन में जिस प्रकार से भाषा में गति एवं प्रावाह आता गया, विविध अलंकार स्वतः उसमें सन्निविष्ट होते गए। शब्दांलकारों के अतिरिक्त अर्थालकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रांतिमान, प्रतीप, व्यतिरेक, अतिषयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, असंगति आदि अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।

अनुप्रास–'जानकी जावन को जन है जरि जाऊ सो जिह जो जाँचत औरहि।'

व्यतिरेक–"सम सुवम सुषमा का सुखद न थोर।"

उपमा–तुलसीदास के उपमा अलंकार के विषय में महाकवि हरिऔध ने लिखा है। "रामचरित मानस का कोई पृष्ठ कठिनता से मिलेगा जिसमें किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो। उपमाएं साधारण नहीं हैं, वे अमूल्य रत्न हैं देखिए–

"नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुन वारिज नयन।
करहु सो मय उर धाम, सदा क्षीर सागर सयन।"

यमक–'मूरति मधुर मनोहर देखी, भयऊ विदेह विदेह विसेखी।'

विभावना–"बिनु पद चले सुनै बिन काना, कर बिनु कर्म करै विधि नाना।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तुलसी के काव्य–रूप पर विचार करते हुए लिखा है कि, "मुक्तक के क्षेत्र मे तुलसीदास का महत्त्व कम आँका जा सकता है, सूरदास ने उस क्षेत्र में बहुत अधिक क्षमता प्रदर्शित की, पर प्रबन्ध के क्षेत्र में गोस्वामी जी को पार कर जाने वाला हिन्दी में कोई कवि नहीं हो सका। उसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शास्त्र का कोई गहरा आग्रह नहीं है। प्रबन्धकाव्यों में वर्णनात्मक प्रसंगों के संसार की जैसी परिपाटी संस्कृत में भी चल पड़ी थी उसका भी परित्याग कर आवश्यक वर्णनों से ही उन्होंने काम लिया है।"

इस प्रकार तुलसीदास ने न सिर्फ अवधी एवं बृजभाषा का प्रयोग किया बल्कि उनके यहाँ संस्कृत एवं भोजपुरी का भी अल्प प्रयोग दिखाई पड़ता है। छन्दों, अलंकारों एवं रूपकों की सुन्दर योजना उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ती है। हालाँकि तुलसी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है, परन्तु उनके यहाँ तत्सम, तद्भव, देशज, विदेषज आदि शब्दों का प्रचुर भण्डार है। उनकी भाषा एवं भाव का एक मात्र उद्देश्य लोकमंगल है।

9.4 तुलसीदास काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

गोस्वामी तुलसीदास काव्य वह सागर है जो रत्नों से भरा पड़ा है, जिसमें चाहे जहाँ गोता लगाओं रत्न की हत्न हाथ में आते हैं उन्होंने पर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन एवं कार्यों को अपनी अनुभूति में इस प्रकार पचा लिया था कि सारा जग–जीवन उसमें आलोकित होता दिखायी पड़ता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है–

राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि हो जाए सहज संभाव्य है।

इस प्रकार जब एक सामान्य व्यक्ति रामचरित का स्पर्श पाकर कवि बन सकता है, तब महान भावक, भक्त, प्रकाण्ड, पंडित, कुशल उपदेशकर, सौम्य संत, साधक, समाज–सुधारक महात्मा तुलसीदास के लिए महान कवि बन जाना कौन–सी बड़ी बात है।

संक्षेप में तुलसीदास के काव्य की विशेषताएं निम्नलिखित है–

1. राम का लोकरक्षक रूप– महात्मा तुलसीदास ने भगवान राम को भक्ति, शील और सौन्दर्य से मण्डित करने के साथ ही लोकरक्षक के रूप में भी चित्रित किया है। भगवान् तो जब भक्तों पर विपत्ति आती है तब भक्ति के कष्ट निवारण हेतु ही मानव शरीर धारण करते हैं–

जब–जब होइ धरम ही हानी, बाढ़ाहिं असुर अधम अभिमानी।
सीयहिं विप्र, धेनु सुर, धरनी करइ अनीति जाइ नहि बरनीम
तब–तब धरि प्रभु विविध शरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

2. व्यापक भक्ति भावना– महात्मा गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति के क्षेत्र में ऐसी अखण्ड ज्योति जगाई जिससे सारा विश्व चमत्कृत हो उठा। वे तो राम–रूपी मेघ के लिए अपने को तृषित चातक ही बना लेते हैं–

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास,
एक राम घनस्याम हित चालक तुलसीदास।।

3. उदार भक्ति भावना– महात्मा तुलसीदास भगवान राम के भक्त थे, किन्तु उन्होंने अपनी भक्ति को किसी सीमा विशेष से मुक्त करके भगवान शिव एवं कृष्ण की भक्ति महिमा का भी वर्णन मुक्त कण्ठ से किया है। इसमें तुलसी की उदार धार्मिक वृत्ति पर प्रबल मिलता है–

शिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोहि सपनेहूं नहिं भावा।।

4. मर्यादा का उदान्त स्वर– महात्मा तुलसीदास ने काव्य में सर्वत्र का पालन किया है जीवन को उच्चतम बनाने के लिए, जीवन में जिन मर्यादाओं की अपेक्षा होती है, उन सब को अपने काव्य में समन्वित करके तुलसी ने एक महान परम्परा की स्थापना की है। इस प्रकार इन मर्यादाओं की स्थापना करके तुलसीदास ने समाज का जितना कल्याण, किया शायद ही इतना किसी अन्य कवि ने किया होगा।

5. सामाजिक सम्बन्धों में आदर्श की स्थापना– तुलसी ने अपने काव्य में विशेषतः रामचरित मानव में जिस पारिवारिक सम्बन्ध का निरूपण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। राजा दशरथ एक आदर्श पिता हैं, जो पुत्र के वियोग में प्राण तक त्याग देते हैं। कौशल्या एक ऐसी आदर्श माता हैं, जिनके व्यक्तित्व में स्वः पर का

लेश मात्र भी अंश दिखायी नहीं पड़ता है और सीता एक ऐसी आदर्श पत्नी है जो सुख–दुःख में अपने पति का साथ देती हैं, वन–वन की खाक छानती फिरती हैं भारत का चरित एक आदर्श भाई के रूप में चित्रित किया गया जो अपने भाई की मर्यादा का पालन अन्त तक करते हैं आदर्श भक्त एवं सेवक के रूप में हनुमान हैं जो अपने स्वामी की सेवा दत्तचित होकर करते हैं और सेवा में सब कुछ भूल जाते हैं यही कारण है कि तुलसी का रामचरित मानस, जिसमें भारतीय संस्कृति का इतना पावन, इतना व्यापक एवं इतना उदात्त स्वर भरा है, जो सदियों से भारतीयों और विशेषतः हिन्दू परिवारों द्वारा पूजित रहा है तथा भविष्य में भी पूज्य बना रहेगा।

6. मर्मस्पर्शी स्थलों का चुनाव– तुलसी मार्मिक स्थलों के चयन में बड़े प्रवीण हैं। उन्होंने रामचरित मानस में मर्म को छूने वाले ऐसे अनेक प्रसंगों का इतनी बारीकी से चित्रण किया है कि उसे देखकर आत्मा सिहर जाती है। बालवर्णन, पुष्प–वाटिका वर्णन, राम–वनगमन एवं दशरथ–मरण, सीताहरण, लक्ष्मण को शक्ति लगना, भरत–राम का चित्रकुट में मिलन ऐसे मार्मिक स्थल है, जो हृदय को सहसा छू लेते हैं मन आहत पक्षी–सा बिंध जाता है।

7. सफल मुक्तकों की रचना– तुलसी जहाँ एक ओर रामचरित मानव की रचना करके सफल प्रबन्धकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं, वहाँ दोहावली, विनय–पत्रिका आदि की रचना करके हमारे समक्ष एक सफल मुक्तककार के रूप में दर्शित हैं तुलसी का तो काव्य में लगभग सभी रूपों (काव्यरूपों) पर अधिकार था।

8. भाषा– तुलसीदास की भाषा दो रूपों में पायी जाती है प्रथम संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली युक्त साहित्यिक–भाषा और दूसरी लोक में प्रचलि सामान्य बोल–चाल की भाषा। विशेष रूप से तुलसी ने अवधी और ब्रजभाषा को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया है, किन्तु इस दृष्टिकोण से वे बड़ा उदार दृष्टिकोण अपनाये हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में फारसी, अरबी के शब्दों का भी बहुत प्रयोग हमें प्राप्त होता है। तुलसीदास की भाषा परिमार्जित एवं प्रवाहमयी है। इसमें एक ओर यदि मधुरता है, तो दूसरी ओर ओज भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। एक ओर जहाँ सरलता एवं सुबोधता है, वहाँ दूसरी ओर गहन दार्शनिक विचारों के कारण क्लिष्टता है। यही कारण है कि तुलसी की भाषा में यदि एक ओर सामान्य पढ़े–लिखे लोग रस लेते हैं, तो दूसरी ओर मर्मज्ञ पंडित भी भरपूर आनन्द उठाते हैं।

9. अलंकारों का प्रयोग– यद्यपि तुलसीदास ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग बहुलता के साथ किया है, परन्तु उन्होंने अलंकारों का प्रयोग आचार्य केशव की भाँति मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं, उनकी कविता में अलंकार सहज रूप से प्रयुक्त हुए है। तुलसीदास ने सांगरूपक अलंकार के वर्णन में तो कमाल ही कर दिया। रामचरित मानस में ज्ञान भक्ति निरूपण में रूपकों की ऐसी शृंखला है, जैसा अन्यत्र मिल पाना दुर्लभ है।

10. शैली– तुलसी ने अपने काव्य की रचना विभिन्न शैलियों में की है। उनके काव्य में उस समय की अभी प्रचलित षैलियों का समावेश पाया जाता है। जायसी आदि सन्त कवियों की दोहा–चौपाई शैली कबीर आदि नीतिकारों की दोहा शैली, विद्यापति,सूर आदि गीतकार कवियों की गीत–शैली, गंग आदि कवित्यों की कवित्त–छप्पय शैली, एवं इनके साथ ही गांव में प्रचलित सोहर नचारी आदि लोक–गीत शैलियों का सहज समावेश तुलसी ने अपने काव्य में किया है। इतने व्यापक रूप में शैलियों का अपने काव्य में समाहार अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया है।

इस प्रकार तुलसी की काव्यगत विशेषताओं पर संक्षेप में दृष्टिपात करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि काव्य–जगत् में तुलसी जैसा सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न कोई कवि नहीं हैं आधुनिक युग में प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि ने काव्य क्षेत्र में लेखनी का चमत्कार दिखाया अवश्य है, किन्तु तुलसी जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा का स्पष्ट अभाव है। जहाँ प्रसाद ने कुछेक काव्य रूपों का प्रयोग किया है, वहाँ महादेवी ने गीत शैली में काव्य की रचना की है। किन्तु तुलसीदास जैसी सरलता सुबोधता का इन सबों में नितान्त अभाव है जिस कारण तुलसीदास लोकमानस में पूजित, तुलसी का सम्पूर्ण काव्य विशिष्टताओं से आदि से अन्त तक भरा है।

9.5 तुलसीदास के रामचरितमानस महाकाव्य से चयनित दोहे एवं पद

1. अयोध्याकांड से दोहा संख्या – 125 से 131

2. विनय पत्रिका से पद संख्या– 88,91,105,111,115,162,172,174,198,245

1. अयोध्याकांड से दोहा संख्या – 125 से 131

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा।।
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने।।
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मगाए।।
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए।।
बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी।।
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई।।
तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा।।
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी।।
दो0–तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउम।।125।।

यह काव्यांश रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड का है, जिसमें श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी के वाल्मीकि आश्रम पहुँचने पर मुनि उन्हें सादर आश्रम में लाते हैं। मुनि वाल्मीकि रामजी को देख कर आनंदित होते हैं और रामजी उन्हें त्रिकालदर्शी मानकर वनगमन की कथा सुनाते हैं।

अर्थ– मुनि कहुँ राम दंडवतकरू श्रीराम ने वाल्मीकि मुनि को दंडवत प्रणाम किया और मुनि ने आशीर्वाद दिया। रामजी की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल (आनंदित) हो गए और वे उन्हें आदर सहित आश्रम में ले आए। मुनि ने अपने प्राणप्रिय अतिथियों के लिए कंद–मूल और मधुर फल मँगवाए। सीता, लक्ष्मण और रामजी ने फल खाए, फिर मुनि ने उन्हें सुंदर स्थान विश्राम के लिए दिए। मंगलमयी मूर्ति रामजी को देखकर वाल्मीकिजी के मन में भारी आनंद हुआ। तब रघुनाथजी ने हाथ जोड़कर कानों को सुख देने वाले वचन कहे। (रामजी ने कहा) हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं, पूरा विश्व आपके लिए हथेली पर रखे बेर के समान है (सब कुछ जानते हैं)। प्रभु ने यह कहकर रानी कैकेयी द्वारा वनवास दिए जाने की पूरी कथा कह सुनाई।

(रामजी ने कहा) पिता की आज्ञा, माता का हित, भरत का राजा होना और फिर आपके दर्शन होना है प्रभु! यह सब मेरे पुण्यों का ही प्रभाव है।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे।।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई।।
मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं।।
मंगल मूल बिप्र परितोशू। दहइ कोटि कुल भूसुर राशू।।
अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।।
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौ कछु काल कृपाला।।
सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी।।
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू।।
छं0–श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रूख पाइ कृपानिधान की।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनीम
सो0–राम सरुप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नित निगम कहम।।126।।

यह काव्यांश रामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड) से लिया गया है, जिसमें श्री राम, मुनि वाल्मीकि से उनके दर्शन पाकर अपने पुण्य सफल होने की बात कहते हैं। राम जी मुनि से निवास के लिए उचित स्थान पूछते हैं जहाँ रहने से किसी मुनि को कष्ट न हो और वहां वे सीता व लक्ष्मण के साथ पर्णकुटी बनाकर कुछ समय रह सकें। वाल्मीकि जी उन्हें श्रुति–सेतु पालक और जगदीश्वर जानकर कहते हैं कि वे राम के रूप में ही नर–शरीर धारण कर राक्षसों का नाश करने जा रहे हैं।

अर्थ– श्री राम कहते हैं, हे मुनिराज! आपके दर्शन पाकर मेरे सभी पुण्य सफल हो गए। अब आप जहाँ आज्ञा दें और जहाँ किसी मुनि को कष्ट न हो, वहां

मैं सीता और लक्ष्मण के साथ रहूँ।

भावार्थ– वे कहते हैं कि ब्राह्मणों का संतोष ही मंगल का मूल है, लेकिन ब्राह्मणों का क्रोध (उनके वचनों के द्वारा) करोड़ों कुलों को बिना आग के जला देता है। वाल्मीकि जी कहते हैं कि आप श्रुति (वेदों) की मर्यादा के रक्षक हैं। आप ही जानकी जी (माया) के साथ भगवान हैं। श्री राम का स्वरूप वेदों से परे, बुद्धि से ऊपर, अव्यक्त और अकथनीय है, जिसे निगम (वेद) हमेशा नेति–नेति (यह नहीं, यह नहीं) कहकर वर्णन करते हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।
दो0–पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँम।।127।।

यह चौपाइयां गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकांड से ली गई हैं। जब भगवान श्री राम वनवास के दौरान महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पहुँचते हैं और उनसे रहने के लिए स्थान पूछते हैं, तब वाल्मीकि जी उनकी स्तुति करते हुए ये बातें कहते हैं।

भावार्थ– ईश्वर की सर्वोच्चतारू वाल्मीकि जी कहते हैं कि हे राम! आप जगत को देखने वाले हैं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव को भी नचाने वाले (नियंत्रित करने वाले) हैं। जब वे देव भी आपका मर्म नहीं जानते, तो और कौन आपको जान सकता है? कृपा और ज्ञानरू आपको वही जान सकता है जिसे आप स्वयं जना देते हैं (कृपा करते हैं), और आपको जानते ही वह व्यक्ति आपका ही स्वरूप हो जाता है। दिव्य स्वरूप आपकी देह चिदानंदमय (ज्ञान और आनंद से युक्त) है और विकारों से रहित है। आपने संतों और देवताओं के कार्य के लिए मनुष्य रूप धारण किया है और एक साधारण राजा की तरह लीला कर रहे हैं। भक्तों का सुखः आपके चरित्र को देखकर मूर्ख लोग तो मोह में पड़ जाते हैं (कि आप साधारण मनुष्य हैं), लेकिन बुद्धिमान भक्त इन्हें देखकर परम सुख प्राप्त करते हैं। अंत में वाल्मीकि जी मुस्कुराते हुए कहते हैं कि आपने मुझसे पूछा कि मैं 'कहाँ रहूँ?', लेकिन मैं यह पूछने में संकोच कर रहा हूँ कि वह जगह कहाँ है जहाँ आप नहीं हैं? आप मुझे ऐसा स्थान बताइये

जहाँ आप न हों, तब मैं आपको रहने की जगह दिखाऊँ। संक्षेप में, यहाँ वाल्मीकि जी श्री राम के कण–कण में व्याप्त (सर्वव्यापी) होने की पुश्टि कर रहे हैं।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने।।
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी।।
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।।
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।
दो0–जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासुम।।128।।

भावार्थ– मुनि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्रजी रहस्य खुल जाने के डर से सकुचाकर मन में मुस्कुराए। वाल्मीकि जी हँसकर फिर अमृत रस में डुबोई हुई मीठी वाणी बोले हे रामजी! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ, जहाँ आप, सीताजी और लक्ष्मणजी समेत निवास कीजिए। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुंदर कथा रूपी अनेक सुंदर नदियों से निरंतर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुंदर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शन रूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं, तथा जो भारी–भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौंदर्य (रूपी मेघ) की एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत के अर्थात पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौंदर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथजी! उन लोगों के हृदय रूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित निवास कीजिए। आपके यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुण समूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे रामजी! आप उसके हृदय में बसिए।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूशन धरहीं।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी।।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहि दूजा।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।
दो0–सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउम।।129।।

भावार्थ–जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगंधित (पुष्पादि) सुंदर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं, जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य श्री रामचन्द्रजी (आप) के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में श्री रामचन्द्रजी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं, तथा जिनके चरण श्री रामचन्द्रजी (आप) के तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके (राम नाम रूप) मंत्रराज को जपते हैं और परिवार सहित आपकी पूजा करते हैं। जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं, और ये सब कर्म करके सबका एक मात्र यही फल माँगते हैं कि श्री रामचन्द्रजी के चरणों में हमारी प्रीति हो, उन लोगों के मन रूपी मंदिरों में सीताजी और रघुकुल को आनंदित करने वाले आप दोनों बसिए।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी।।
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।।
दो0–स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रातम।।130।।

भावार्थ–जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है– हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए। जो सबके प्रिय और सबका हित करने वाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निंदा) समान है, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते–सोते आपकी ही शरण हैं, और

आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे रामजी! आप उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है, जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं और हे रामजी! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं। हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन रूपी मंदिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही।।
जाति पाँति धनु धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई।।
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा।।
दो0–जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहुम।।131।।

भावार्थ–जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति–निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुंदर मन आपका घर है। जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिए। जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देने वाला घर, सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथजी! आप उसके हृदय में रहिए। स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ–तहाँ (सब जगह) केवलधनुष–बाण धारण किए आपको ही देखता है और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी! आप उसके हृदय में डेरा कीजिए। जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरंतर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है।

2. विनय पत्रिका

पद संख्या–88,91,105,111,115,162,172,174,198,245

कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ।।
जदपि बिषय – सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।

तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो।।
जनम अनेक किये नाना बिधि करम – कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक – नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो।।
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हदै नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो।।

भावार्थः–अरे मन! तूने कभी विश्राम नहीं लिया। अपना सहज सुखस्वरुप भूलकर दिन–रात इन्द्रियों का खींचा हुआ जहाँ–तहाँ विषयों में भटक रहा है। यद्यपि विषयों के संगसे तूने असह्य संकट सहे है और तू कठिन जाल में फँस गया है तो भी हे मूर्ख! तू ममता के अधीन होकर उन्हें नहीं छोड़ता। इस प्रकार सब कुछ समझकर भी बेसमझ हो रहा है। अनेक जन्मों में नाना प्रकार के कर्म करके तू उन्हीं के कीचड़ में सन गया है, हे चित्त! विवेकरुपी जल प्राप्त किये बिना यह कीचड़ कभी साफ नहीं हो सकता। ऐसा वेदपुराण कहते हैं।

अपना कल्याण तो परम प्रभु, परम पिता और परम गुरु रुप हरि से हैं, पर तूने उनको हुलसकर हदय में कभी धारण नहीं किया, (दिन–रात विषयों के बटोरने में ही लगा रहा) हे तुलसीदास! ऐसे तालाब से कब प्यास मिट सकती है, जिसके खोदने में ही सारा जीवन बीत गया।

नाचत ही निसि दिवस मर्यो।
तब ही तें न भयो हरि ! थिर जब तें जिव नाम धरयो ।।
बहु बासना बिबिध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यो ।
चर अरु अचर गगन जल थल में, न स्वाँग कर्यो ।।
देव दनुज मुनि नाग अनुज नहिं जांचत कोउ उवर्यो।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुःख काहू तो न हर्यो ।।
थके नयन पद पानि सुमति बल, संगत सकल बिछुर्यो।
अब रघुनाथ! सरन आयो जन, भव–भव विकल डर्यो ।।
जेहि गुन तें बस होहु रीझि करि, सो मोहि सब बिसर्यो।
तुलसिदास निज भवन–द्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो।।

भावार्थ– कवि कहता है कि यह जीव दिन–रात संसार के नाच (मोह–माया) में ही लगा रहा और इसी में उसका जीवन समाप्त हो गया। जब से उसने 'जीव' का नाम धारण किया, तब से वह भगवान में स्थिर नहीं रह सका।

वह अनेक प्रकार की वासनाओं, लोभ और आडंबर रूपी वस्त्र–आभूषणों से भर गया। उसने चर (चलने वाले) और अचर (स्थिर) आकाश, जल, पृथ्वी आदि सभी स्थानों में अनेक स्वाँग रचे, परन्तु सत्य को नहीं पाया। देवता, दानव, मुनि, नाग कोई भी इस संसार से बच नहीं सका। मेरे असह्य दरिद्रता (आध्यात्मिक गरीबी), दोष और

दुख को भी किसी ने दूर नहीं किया। अब मेरी आँखें, पैर, हाथ, बुद्धि और शक्ति सब थक चुके हैं, और अच्छे लोगों की संगति भी छूट गई है। इसलिए अब मैं भयभीत होकर रघुनाथ (राम) की षरण में आया हूँ। जिस गुण से भगवान प्रसन्न होते हैं, वह सब मैं भूल गया हूँ। इसलिए तुलसीदास विनती करते हैं कि हे प्रभु! मुझे अपने द्वार पर ही रहने का स्थान दे दीजिए।

अब लौं नसानी, अब न नसैहों।
रामकृपा भव–निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं।।
पायो नाम चारु चिंतामनि उर करतें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।।
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुपहिं प्रन करि, तुलसी रघुपति पदकमल बसैहौं।।

भावार्थ– कवि कहता है कि अब तक तो मैं अज्ञान में डूबा रहा, लेकिन अब आगे ऐसा नहीं करूंगा। राम की कृपा से संसार रूपी रात्रि समाप्त हो गई है, अब मैं जाग चुका हूँ और फिर इस अज्ञान में नहीं पड़ूँगा। मुझे राम–नाम रूपी सुंदर चिंतामणि मिल गई है, जिसे मैं अपने ह्रदय से कभी नहीं छोड़ूँगा। मैं अपने मन रूपी सोने को श्रीराम के सुंदर श्याम रूप की कसौटी पर कसूँगा (अर्थात अपने मन को शुद्ध करूँगा)। पहले मैं इंद्रियों के वश होकर उनका उपहास करता था, पर अब मैं स्वयं को उनके वष में नहीं होने दूँगा। तुलसीदास कहते हैं कि मेरा मन रूपी भौंरा अब रघुनाथ के चरण–कमलों में ही सदा बसेगा।

केसव, कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये ।।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न, मरे भीति, दुख, पाइय इहि तनु हेरे।।
रबिकर नीर बसै अति दारुन मगर रूप तेहि माही।
बदनहीन सों ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।

भावार्थ– कवि (तुलसीदास) भगवान से कहते हैं। हे केशव! आपकी इस अद्भुत सृष्टि का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसे देखकर मन ही मन आश्चर्य होता है और वाणी मौन हो जाती है। यह संसार ऐसा है जैसे किसी खाली दीवार पर बिना रंग के चित्र बना दिया गया हो, न चित्रकार दिखता है, न साधन, फिर भी सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता है। यह चित्र (संसार) धोने से मिटता नहीं, और दीवार (माया) नष्ट होने पर ही इसका अंत होता है। जैसे सूर्य की किरणों में जल का भ्रम

दिखाई देता है, जिसमें मगरमच्छ जैसा भयानक रूप दिखता है, वैसे ही यह संसार भ्रममय है। बिना मुख के ही यह सबको निगल जाता है (अर्थात मोह–माया सबको नश्ट कर देती है)। कोई इसे सत्य मानता है, कोई झूठ, और कोई इसे सत्य–झूठ दोनों का मिश्रण मानता है। तुलसीदास कहते हैं कि जो इन तीनों भ्रमों (सत्य, असत्य, मिश्र) को त्याग देता है, वही अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान पाता है।

माधव, मोह–पास क्यों टूटै।
बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यतर ग्रन्थि न छूटै ।।
घष्तपूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिविम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कल्पसत, औंटत नास न पावै ।।
तरु–कोटर महँ बस बिहॅग, तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय विचारहीन मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे ।।
अंतर मलिन, विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध विधि मारे ।।
तुलसिदास हरि–गुरु–करुना बिनु बिमल बिबेक न होई।
बिनु बिबेक संसार–घोर–निधि, पार न पावै कोई ।।

भावार्थ– कवि भगवान माधव से पूछते हैं। यह मोह (माया का बंधन) कैसे टूटे? बाहर से चाहे करोड़ों उपाय कर लें, पर भीतर की गाँठ (अज्ञान) नहीं खुलती। जैसे घी से भरे बर्तन में चंद्रमा का प्रतिबिंब दिखाई देता है, लेकिन आग लगाने और उबालने पर भी वह प्रतिबिंब नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार बाहरी साधनों से मन का मोह समाप्त नहीं होता।

जैसे पेड़ के कोटर (खोखले भाग) में बैठा पक्षी पेड़ काटने पर भी नहीं मरता, वैसे ही बिना विचार के किए गए साधन मन को शुद्ध नहीं कर सकते। यदि मन अंदर से मलिन है और विषय–वासनाओं में डूबा है, तो केवल शरीर को धोने से कोई लाभ नहीं। जैसे साँप को मारने के लिए अनेक उपाय किए जाएँ, फिर भी वह आसानी से नहीं मरता, वैसे ही मन का विकार भी कठिनाई से दूर होता है।

तुलसीदास निष्कर्ष देते हैं कि भगवान और गुरु की कृपा के बिना निर्मल विवेक (सही ज्ञान) उत्पन्न नहीं होता। और बिना विवेक के कोई भी इस संसार रूपी भयंकर समुद्र को पार नहीं कर सकता।

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा को द्रवै दीन पर रामसरिस कोउ नाहीं ।।
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहें प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो सम्पति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।

सो सम्पदा विभीषन कहँ अति सकुच–सहित हरि दीन्ही ।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो ।। 6।।

भावार्थ– कवि तुलसीदास कहते हैं कि इस संसार में राम जैसा उदार (दयालु) कोई नहीं है। बिना किसी सेवा के ही वे दीन–दुखियों पर द्रवित हो जाते हैं। जिस गति (मोक्ष) को योग, वैराग्य और अनेक साधनों द्वारा भी मुनि और ज्ञानी नहीं प्राप्त कर पाते, वही गति भगवान राम ने गिद्ध (जटायु) और शबरी को सहज ही दे दी। जिस संपत्ति (वैभव) को रावण ने अपने दस सिर अर्पित करके भगवान शिव से प्राप्त किया था, वही संपत्ति भगवान राम ने विभीषण को अत्यंत संकोच के साथ दे दी (अर्थात सहज ही प्रदान कर दी)। तुलसीदास अंत में कहते हैं कि यदि तुम सभी प्रकार के सुख चाहते हो, तो राम का भजन करो, वे कृपा के भंडार हैं और तुम्हारे सभी कार्य पूर्ण कर देंगे।

कबहुँक हाँ यह रहनि रहौगो।
श्रीरघुनाथ–कृपालु कृपा तें संत–सुभाव गहौगो ।।
जथालाभ संतोष सदा, काहूँ सौं कछु न चहौंगो।
परहित–निरत निरन्तर, मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।
परुष बचन अति दुसह सवन सुनि तेहि पाबक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देह–जनित चिन्ता, दुख–सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भक्ति लहौंगो।।

भावार्थ– यह पद तुलसीदास जी द्वारा रचित विनयपत्रिका से है, जिसमें वे श्री रघुनाथ (राम) की कृपा से संत स्वभाव पाने की कामना कर रहे हैं। इसमें संतोष, परोपकार, सहनशीलता, मन–कर्म–वचन की पवित्रता और समभाव से ईश्वर की भक्ति में रहने का आदर्ष प्रस्तुत किया गया है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे प्रभु! कब मैं श्री रघुनाथ जी की कृपा से संतों जैसा स्वभाव धारण करूँगा, अर्थात् संत–भाव प्राप्त करूँगा। संतोष और वैराग्यरू जो भी सहज रूप में मिल जाए, उसमें सदा संतोष करना और किसी से भी कुछ न माँगना (याचक न बनना)। मन, कर्म और वचन से निरंतर दूसरों की भलाई में लगे रहना। सहनशीलता अत्यंत कठोर और असह्य वचनों (निंदा) को सुनकर भी, क्रोध रूपी अग्नि में न जलना, अर्थात् शांत रहना। समभाव अपमान से विचलित न होना, मन को सम (शांत) रखना, दूसरों के गुणों का बखान करना और दोष न देखना। देह–त्याग समर्पण शरीर से संबंधित चिंताओं को छोड़कर, सुख–दुःख में समान बुद्धि (समत्व) रखना। अंतिम लक्ष्य इस पथ पर चलते हुए अविचल (अटल) हरि–भक्ति को प्राप्त करना।

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज–बनितनि, भये मुद मंगलकारी ।।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा ऑखि जेहि फूटे, बहुतक कहीं कहीं लीं।।
तुलसी सो सब भीति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो होम सनेह राम पत्र, एतो मतो हमारी।।

भावार्थ– तुलसीदास कहते हैं, जिस व्यक्ति को राम और सीता प्रिय नहीं हैं, उसे करोड़ों शत्रुओं के समान छोड़ देना चाहिए, चाहे वह कितना ही प्रिय क्यों न हो। प्रहलाद ने अपने पिता (हिरण्यकश्यप) को, विभीषण ने अपने भाई (रावण) को, भरत ने अपनी माता (कैकेयी) को त्याग दिया। राजा बलि ने अपने गुरु को, और बृज की गोपियों ने अपने पतियों को छोड़ दिया। और यह सब उनके लिए मंगलकारी ही हुआ। जहाँ तक संबंधों की बात है, वहीं तक उनसे प्रेम रखना चाहिए जहाँ तक वे राम–भक्ति में सहायक हों। जिस अंजन (काजल) से आँख ही फूट जाए, उसे लगाना व्यर्थ है। तुलसीदास कहते हैं कि जो राम से प्रेम करता है, वही वास्तव में प्रिय, पूज्य और प्राणों से भी बढ़कर है, यही हमारा मत है।

मन पछितैहैं अवसर बीते।
दुर्लभ देहपाइ हरिपद भजु, करम, बचन, अरु ही ते।
सहराबाहु दशबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन–धाम सँवारे, अंत चले उति रीते।।
सुत बनिताहि जानि स्वारथरत्त, न करु नेह राबही ते।
अंत्तहुँ तोहि तजैगे पामर। तु न तजै अव ही ते।।
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझौ न काम अनिनि तुलसी कहुँ, विषय–भोग बहु घी ते।।

भावार्थ– कवि मनुष्य को चेतावनी देते हैं, अवसर बीत जाने पर मन पछताएगा। सहस्रबाहु (अर्जुन), रावण आदि बड़े–बड़े राजा भी काल (मृत्यु) से नहीं बच सके। लोग "मैं–मैं" करते हुए धन और वैभव जुटाते हैं, लेकिन अंत समय सब कुछ छोड़कर खाली हाथ चले जाते हैं। तू अपने पुत्र और पत्नी को अपना मानकर उनसे प्रेम करता है, परंतु वे भी अंत में तुझे छोड़ देंगे। इसलिए हे मूर्ख! तू अभी से ही उन्हें त्याग क्यों नहीं करता (अर्थात मोह छोड़ दे)। तुलसीदास कहते हैं कि विषय–भोग (इंद्रिय सुख) अग्नि में घी के समान हैं, वे कभी तृष्णा को शांत नहीं करते, बल्कि और बढ़ाते हैं।

मोहि मूढ़ मन बहुत्त बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो।।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन सम करत मोहबस, बृथहिं मंदमति बारि बिलोयो ।।
करम–कीच जिय जानि सानि चित्त चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब में निज दोष कछु नहिं गोयो।
डासत ही गई बीति निशा सब, कबहु न नाथ। नींद भरि सोयो।।

भावार्थ–तुलसीदास अपने मन को संबोधित करते हुए कहते हैं, हे मूर्ख मन! तूने अपना जीवन बहुत बिगाड़ लिया। शीतल, मधुर और अमृत के समान सहज सुख (भगवान) पास में ही था, फिर भी तूने उसे दूर समझकर खो दिया। मोह वश तूने अनेक प्रकार के व्यर्थ उपाय किए, जैसे कोई मूर्ख पानी को मथकर घी निकालने का प्रयास करे। तेरा हृदय कर्मरूपी कीचड़ से भरा हुआ है, फिर भी तू उसी से अपने मन को शुद्ध करना चाहता है। यह ऐसा है जैसे गंदगी से ही गंदगी को धोना। तू प्यासा होकर गंगा को छोड़कर आकाश को निचोड़ने का प्रयास करता है। अर्थात सही मार्ग छोड़कर गलत उपाय करता है। तुलसीदास अंत में प्रार्थना करते हैं, हे प्रभु! अब मुझ पर कृपा कीजिए, मैं अपने दोषों को छिपाता नहीं हूँ। पूरी रात (जीवन) यूँ ही बीत गई, पर मैं कभी जागा नहीं, अब मुझे जगा दीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. कबीरवाणी–तिवारी पारसनाथ, अनीता प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।
2. कबीर–चंडक राम निवास, नारी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. कबीर–का अनशीलन–वर्मा रामकुमार, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. कबीरवाणी–ज्ञानामश्त–आचार्य रामानुज सरस्वती, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल,–नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी १९९९
6. संत कबीर–डॉ. रमकुमार, साहित्य भवन, इलाहाबाद– १९६६
7. कबीर– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली– २०००
8. संत कबीर और कबीर पंथ– डॉ. सालिक राम, प्रकाशक ओम प्रकाशन रायपुर (छत्तीसगढ़)– १९९७
9. पद्मावत–मलिक मुहम्मद जायसी कृत।
10. जायसी ग्रन्थावली–शुक्ल रामचंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
11. मलिक मुहम्मद जायसी–बीसी पांडेय, विनोद प्रकाशन

12. जायसी ग्रन्थावली–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
13. उत्तर भारत की संत परंपरा–आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
14. गोस्वामी तुलसीदास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
15. तुलसीदास – रामचंद्र तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
16. लोकवादी तुलसीदास – विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
17. तुलसीदास की भक्ति–भावना – (शोध आलेख)
18. त्रिवेणी – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली
19. सूरदास – विकिपीडिया (हिंदी)
20. भारतकोष – सूरदास का काव्य
21. कविता कोष